नवाब-नन्दिनी

लेखक

श्री दामोदर देव शर्मा मुखोपाध्याय

अनुवादक

श्री प्रबोधकुमार मजुमदार

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा — लखनऊ

प्रथम संस्करण जून, १९६२

मूल्य ३ रुपया ५० न० पै०

कम्पोज़—
वर्णमाला टाइप फ़ाउण्ड्री,
रानीकटरा, लखनऊ।

मुद्रक—
अधिकार प्रेस,
लखनऊ।

प्रस्तावना

बँगला के सर्वोपरि उपन्यासकार साहित्यसम्राट् श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के सर्वप्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' से कौन परिचित नहीं ? दुर्गेशनन्दिनी स्वयं समग्रकृति होते हुये भी, पाठकों के मन में एक उत्कण्ठापूर्ण जिज्ञासा छोड़ जाती है। औरों के प्रति न सही, किन्तु भुवन-दुर्लभ रमणीरत्न आयशा के भविष्य की झाँकी जानने के लिये तो पाठक आतुर रहता ही है।

'दुर्गेशनन्दिनी' की प्रधाननायिका—वीरेन्द्रसिंह की कन्या 'तिलोत्तमा' नहीं, वस्तुतः नवाबनन्दिनी आयशा है, इसमें दो राय होना कठिन है। उसी के पवित्र जीवन की सम्पूर्ति का दिग्दर्शन कराने के निमित्त ही, बंकिम बाबू के अति निकट संबंधी श्री दामोदर देव शर्मा मुखोपाध्याय ने प्रस्तुत पुस्तक 'नवाबनन्दिनी' की रचना की है।

'नवाबनन्दिनी' को पढ़कर पाठक 'दुर्गेशनन्दिनी' के आगे का वृत्तांत सविस्तार जान सकेंगे। महाराज मानसिंह के दरबार में कुमार जगतसिंह का अभियुक्त के रूप में विचार एवं कारागार-दण्ड ; विमला के बुद्धिचातुर्य से, प्रच्छन्न वेश में तिलोत्तमा का महाराज मानसिंह के प्रश्रय में पहुँचना और महारानी उर्मिला के स्नेह और कौशल के फलस्वरूप महाराज का तिलोत्तमा पर प्रसन्न हो कर उसे पुत्रवधू स्वरूप में अंगीकार करना ; कुमारी आयशा के अद्भुत प्रयास और प्रभाव से शहंशाह अकबर के यहाँ से कुमार जगतसिंह की अपील की मंजूरी और कुमार की मुक्ति ; पश्चात् पठानों-मुगलों का पुनः

भीषण युद्ध ; सहसा इसी उथल-पथल और रोमाञ्चकारी घटना-क्रम में, नवाब-नन्दिनी आयशा का आत्मोत्सर्ग—उस पवित्र दीपशिखा का निर्वाण आदि विचित्र इतिहास, 'नवाबनन्दिनी' पुस्तक के पन्ने उलटने से ही पाठक-गन अवगत होंगे।

इस प्रकार दामोदर बाबू की कृति यह 'नवाबनन्दिनी' पाठकों के मन को रञ्जन करने वाला एक स्वतः स्वतंत्र-सर्वांगपूर्ण उपन्यास तो है ही, साथ ही 'दुर्गेशनन्दिनी' के पाठकों के कुतूहल-निवारण के लिये भी यह उसका परिशिष्टस्वरूप है। 'दुर्गेशनन्दिनी' को पढ़ने के उपरान्त 'नवाबनन्दिनी' को पढ़िये तो वही रस, और एकमात्र 'नवाबनन्दिनी' का पठन कीजिये तब भी वही सुरस।

'नवाबनन्दिनी' का यह हिन्दी रूपान्तर, श्री प्रबोधकुमार मजुमदार ने, संपूर्ण बंकिम-साहित्य के प्रकाशक, 'श्री प्रभाकर साहित्यालोक, लखनऊ', के लिये प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर, हिन्दी साहित्य की एक कमी की पूर्ति की है।

प्रकाशक

नवाबनन्दिनी

प्रथम खंड—तिलोत्तमा

(१)

विषाद की छाया

गढ़मन्दारन में वीरेन्द्रसिंह का वह क़िला अब भी पहले की तरह आसमान में सिर ऊँचा किये खड़ा है। क़िले का पासवाला आम का बाग अब भी शाखें हिला-हिलाकर हवा से खेल रहा है। वह छोटी सी आमोदर नदी पहले की तरह ही मृदु मधुर स्वर में क़िले की नींव पखारती बह रही है। वसन्त का वही मन्द-मन्द समीर आमों की मंजरियों की सुगन्ध चुराकर लोगों को बेसुध करता जा रहा है। कवियों का प्रिय और वसन्त का अनुचर कोयल, वृक्षों के पत्तों में छुपकर अपने कमोच्च कंठ से तान छेड़ रहा है, नीले आकाश के आँगन में चाँद और तारे उसी तरह बादलों में आँखमिचौनी खेल रहे हैं।

सभी कुछ पहले सा ही है; लेकिन कितने कम समय में कितनी ही घटनाएँ हो चुकीं! उस शैलेश्वर-मन्दिर में युवराज जगतसिंह के साथ विमला और दुर्गेशनन्दिनी तिलोत्तमा की पहली भेंट और पठान-क़िले में विमला के हथियार से नवाब कतलू खाँ की मृत्यु—इस कम समय में ऐसे न जाने कितने काण्ड घटित हो चुके। उस काली रात का—जिस रात में विमला की असावधानी से पठानों ने क़िले पर फतह हासिल कर, दुर्गस्वामी वीरेन्द्रसिंह और जगतसिंह को क़ैद कर लिया था—अब कोई चिह्न हो मौजूद नहीं है। जिस रक्त की धारा से क़िले के विभिन्न स्थान कलंकित हो चुके थे उसका अब

नामोनिशान भी नहीं। जिस हाहाकार कोलाहल से उस दिन दुर्ग लरज उठा था उसकी हल्की सी गूँज भी अब नहीं सुनाई पड़ती। दुर्ग में हर कहीं शोभा और समृद्धि के विभिन्न लक्षण दिखाई पड़ रहे थे, हर कहीं शृंखला और सामंजस्य विराज रहे थे। यह सच है कि सभी कुछ पहले की तरह है किन्तु वह वीर-केशरी वीरेन्द्रसिंह अब न रहे। इसी कम समय में ही विमला विधवा हो गयी और तिलोत्तमा पितृहीना। दुर्ग में सभी में, सभी कुछ लौट आया है, सिर्फ वीरेन्द्रसिंह न रहे और न वह वापस ही आ सकते हैं। जिसने यम के हाथों में अपने को सौंप दिया उसे कभी किसी ने वापस लौटते नहीं देखा।

कितने ही लोग यमालय जा चुके हैं, कितने ही लोग प्रतिदिन उस चिर-निवास के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, कोई भी उस स्थान से कभी वापस नहीं आया और न आ रहा है। उससे संसार का कुछ खास लाभ-हानि भी नहीं, या उससे वसुन्धरा के सुख-दुख की धारा में कोई विशेष कमी-बेशी भी नहीं दिखायी पड़ती। गढ़मन्दारन के अधीश्वर वीरेन्द्रसिंह वापस नहीं लौटे इसलिए उस दुर्ग में किसी को कुछ खास नुकसान पहुँचा हो ऐसा नहीं लगता। रुदन चला जाता है और हास्य आकर उसका स्थान ले लेता है; हास्य जाता है और रुदन उसका स्थान ले लेता है; हास्य-रुदन शायद एक ही डोरे में गुँथे हुए हैं, दोनो ही शायद एक ही गति से निरन्तर विश्व की परिक्रमा कर रहे हैं।

विमला—वह विलासमयी, लावण्यमयी, हास्य-कौतुक से मदमाती विमला विधवा हो गयी है। प्रेमी पुरुष को प्राप्त करने के लिए उसे काफी तकलीफें उठानी पड़ीं, सहधर्मिणी के रूप में गौरव का परिचय छुपाकर दिन बिताने पड़े, उसका वह हृदय-देवता उसे हमेशा के लिए छोड़ गया। बड़ा असह क्लेश है। लेकिन इतने क्लेश में सन्तोष का कोई कारण भी है? क्यों नहीं? उसके वीर पति ने वीरोचित तेजस्विता से हँसते-हँसते प्राण दे दिया। यह वीर-पत्नी के लिए बड़े ही गौरव की बात है। दूसरी गौरव की बात—विमला ने अपने हाथ से पतिहन्ता हृदयहीन शत्रु कतलू खाँ के सीने में तेज खंजर भोंक कर उसे मौत के घाट उतार दिया। और भी विशेष

आनन्द की बात—उसकी प्यारी बेटी सयत्न पालिता तिलोत्तमा की मनोकामना पूर्ण हुई; वह सुशीला सुर-सुन्दरी अब परम गौरवशाली महाराज मानसिंह की पुत्रवधू बन गयी है; उसके गर्भ से जन्मे पुत्र की अम्बरेश्वर बनने की सम्भावना है। कितना अतुलनीय आनन्द है !

इसमें सन्देह नहीं कि तिलोत्तमा, पितृहीना—दुखी तिलोत्तमा, प्रेममय पिता के स्नेहधन से वंचित होकर काफी मनोवेदना भोग चुकी है। लेकिन इस मर्मान्तक वेदना में क्या कोई आनन्ददायक घटना नहीं ? —काफी है। वह पापपंकिल नवाब के जनानखाने में कैद हो गयी थी जहाँ से कोई भी पवित्रता को बेदाग लेकर और धर्म-धन साथ लिये लौट नहीं सकता। तिलोत्तमा ने इसे संभव बनाया था। उसके जीवन का एकमात्र रत्न जगतसिंह दुश्मन के हथियार से घायल हो मृतप्राय होने के बाद भी पुनर्जीवन प्राप्त कर चुका है। वही प्रेममुग्ध, सौन्दर्य-सम्पदा-सौभाग्यशाली वीर पुरुष विवाह के पुण्य-बन्धन में बँध कर सम्पूर्णरूप से तिलोत्तमा का ही बन गया है। कितना अनुपम आनन्द है !

महाराज मानसिंह के इच्छानुसार गढ़मन्दारन स्वर्गीय वीरेन्द्रसिंह की पत्नी और कन्या के हाथों में सौंप दिया गया है। यह सच है कि कुछ दिन के लिए यह दुर्ग पठानों के कब्जे में रहा, पर अब कहीं पर भी पराधीनता का कोई चिह्न नहीं रह गया है।

शाम को इस किले के बीच में अन्तःपुर से लगी छत पर कुवँर जगतसिंह अकेले चहलकदमी कर रहे हैं। उनका मुखड़ा देखने से लगता है कि उन्हें बड़ी उत्कंठा है। ठंडी-ठंडी हवा और दिगन्त तक फैला रमणीक दृश्य कुछ भी मानो उनका अब मनोरंजन नहीं कर पा रहा था। अभी एक महीना भी नहीं हुआ कि वह अपनी प्राण-मन-विनोदिनी सुन्दरी के साथ विवाह-डोर से बँधे हैं। उनकी नव-विवाहिता कामिनी अब भी उनकी निरन्तर सहचरी है, फिर भी वे चिन्तित क्यों ?

दारुकेश्वर नदी के किनारे महाराज मानसिंह अपनी सेना के साथ शिविर लगाकर रह रहे थे, युद्ध अब समाप्त हो चुका था इसलिए वह अपनी छावनी उठाकर अनुचरों के साथ पटना चले गये थे। जगतसिंह ठीक

समय पर जाकर उनसे मिल नहीं सके। अब कुमार जगतसिंह के हाथों में कोई खास काम न था इसलिए युवराज इच्छानुसार विभिन्न स्थानों का विचरण कर रहे थे। यह कहने की जरूरत नहीं है कि उनका अधिकांश समय ही गढ़मन्दारन में प्रेममयी प्रेयसी के संग सुख में बीत रहा है। उनकी सेना भी, खास काम के न होने से, दारुकेश्वर के तट पर आलस्य से दिन बिताने लगी।

जिस छत पर जगतसिंह चहलकदमी कर रहे हैं उसकी एक ओर एक कीमती सेज बिछी हुई है। पर युवराज उसपर न बैठकर छत की एक ओर से दूसरी ओर तक बार-बार टहल रहे हैं।

उसी छत पर एक भुवनमोहिनी सुन्दरी आ पहुँची। अस्तगामी भास्कर की स्वर्णिम किरणों से आभामयी प्रकृति भी उस रूप-लावण्यमयी के आगमन से समुज्वल व शोभामयी हो उठी। वही सौन्दर्य-सम्पदा-युक्त रमणी धीरे और लाजभरे पगों से जगतसिंह के निकट आ मधुर स्वर में बोली, "युवराज मुझे आने में क्या अधिक देर हो गयी ?"

जगतसिंह बोले, "शायद अधिक नहीं, किन्तु प्राणाधिके! जिसका क्षणभर अदर्शन ही असहनीय हो उसका अत्यल्प विलम्ब भी अनन्त लगता है।"

उस लजीली सुन्दरी ने मुस्करा कर सिर झुका लिया। युवराज ने सुन्दरी की पीठ पर बायाँ हाथ रखकर दाहिने हाथ से उसका मुखड़ा उठाया और किसी प्रकार निमंत्रण और आह्वान की प्रतीक्षा किये बिना नवीना के अमृतपगे अधरों का प्रेमपूर्ण चुम्बन कर लिया। लाज और अनुराग, संकोच और लाड़ से रमणी का मुखड़ा लाल हो उठा।

यह सुन्दरी दुर्गेशनन्दिनी तिलोत्तमा है। युवक और युवती को परिणय-सूत्र में बँधे अधिक दिन नहीं हुये, उनका पूर्व परिचय भी बहुत दिनों का नहीं, इस कारण स्वभावतः सुशीला सुन्दरी का संकोच और स्वतंत्रता अब भी पूर्णरूप से विद्यमान है। तिलोत्तमा ने अपना सिर और भी नत कर लिया। आनन्द और अनुराग मिली लाज ने उसके मुखड़े पर अपूर्व शोभा भर दी। मुग्ध जगतसिंह अतृप्त नेत्रों से वह शोभा देखते हुए बोले, "बता

सकती हो सुन्दरी, किस पुण्य की शक्ति से हम लोगों का यह शुभ-मिलन संभव हो सका है ?"

तिलोत्तमा बोली, "किसके पुण्यबल से ? तुम्हारे या मेरे ?"

जगतसिंह बोले, "मेरे। तुम संसार की सार-रत्न हो—यह अनुपम रत्न देवताओं के गले में पड़ता तो यथायोग्य होता। मैं तो तुच्छ क्षुद्र मनुष्य हूँ; यह मिलन अगर किसी पुण्य का परिणाम है तो वह अवश्य ही मेरा है जिसे मैंने पूर्व-जन्म में संचय किया था।"

तिलोत्तमा बोली, "झूठी बात को छुपाना हो तो ऐसी ही मीठी-मीठी बातें करनी पड़ती हैं। किन्तु, क्या, मेरे देवता, तुम जानते नहीं हो कि तुम कौन हो और मैं कौन हूँ ? तुम भुवन-विख्यात अम्बरेश्वर के पुत्र हो; रूप, गुण और वीरता में धरातल पर अतुलनीय ! और मैं ? मैं क्षुद्र गढ़मन्दारन के क्षुद्र नायक की कन्या हूँ—तुम्हारी दासी बनने के योग्य भी नहीं। तुमने कृपा कर मुझे चरणों में जो स्थान दिया है, सच बताना, क्या यह मेरे कोटि-कोटि जन्म का पुण्य-फल नहीं ?"

जगतसिंह बोले, "पुण्य तुम्हारा हो चाहे मेरा, इस झगड़े की अब कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन हृदयेश्वरि ! यह धरातल स्वर्ग की अपेक्षा भी मधुरतर स्थान बनाया जा सकता है, इस नश्वर जगत में तुच्छ मनुष्य भी नन्दनकानन में विचरण करनेवाले देवताओं की अपेक्षा अधिक सुख भोग कर सकते हैं, यह तुम्हें पाने के बाद मैं समझ सका हूँ। तुम मुझे भाग्यवानों में अग्रगण्य बना सकी हो अतः मैं तुम्हारे प्रति चिर आभारी हूँ।"

मुस्कराकर तिलोत्तमा बोली, "मुझे मालूम न था कि संग-दिल तलवार के साधक वीर की वाणी इतना अमृत घोल सकती है। हे गुणाधार, ऋण की बात करते हो, लेकिन क्या तुमने कभी सोचा कि कौन किसके चिरऋण में बद्ध है ? तनिक सोचकर देखो कि तुमने मेरे लिए क्या नहीं किया ? वीरपुत्र तुम स्वयं वीरश्रेष्ठ हो, फिर भी आधी रात गये दूसर के दुर्ग में तुमने चोर की तरह क्यों प्रवेश किया ? इस तुच्छ नारी को केवल एकबार देखने की आशा में ही न ? परम पुण्यवान और धार्मिक होते हुए भी तुमने एक अल्प-परिचिता अविवाहिता कुलकामिनी के कक्ष में प्रवेश किया ;

किस लिए ? इस सौभाग्यवती के साथ दो बातें करने के इरादे से ही न ? तुम भयानक शत्रु के हाथों इतने दिनों तक बन्दी बने रहे, किस लिए ? इस हीन नारी के प्रति तुम्हारा प्रेम-आकर्षण ही तो उसका कारण है। जिसमें चरण-सेवा की भी योग्यता न हो ऐसी नारी को ग्रहण कर प्रत्यक्ष देवता के समान अपने पिता से तुमने अनबन मोल ली, किस लिए ?—इस अधम नारी के प्रति तुम्हारी अनुकम्पा ही तो उसका हेतु है। तो भला बताओ कुवँर, कौन किसका चिरऋणी है ?"

तिलोत्तमा की अन्तिम बातों ने जगतसिंह को व्याकुल कर दिया। वे सुन्दरी से अन्य बातों की चर्चा छोड़कर बोले, "हे प्राणेश्वरि, यह जानता नहीं हूँ कि मेरे भाग्य में क्या लिखा है। लेकिन तुमने बात-बात में पिता से जो अनबन मोल लेने का उल्लेख किया उससे मैं बड़ा ही उत्कंठित हो गया हूँ। इस मामले में मुझे अब और उदासीन बने रहना ठीक नहीं। आओ, हमलोग यहाँ बैठकर अपना कर्त्तव्य निश्चित करें।"

तिलोत्तमा नीरव बनी रही। उसका वह प्रफुल्ल-कमल सा मुखड़ा सूख गया। वह जानती थी कि महाराज मानसिंह की पीठ पीछे यह विवाह हो तो गया किन्तु शायद इसका परिणाम भयंकर हो। अब युवराज के मुख से वैसी ही आशंका की बातें सुनकर तिलोत्तमा के प्राण सूख गये। वह सहमी हुई अपने पति के पीछे-पीछे चली और जाकर चुपचाप उसी आसन के एक किनारे बैठ गयी। जगतसिंह खिसक कर तिलोत्तमा के पास जा बैठा और बायाँ हाथ गले में डालकर उसे उत्कंठा से अंक में भर लिया। फिर निशान्तकाल के शरच्चन्द्र के समान फीका मुखड़ा अपने विशाल वक्ष पर रख लिया। तिलोत्तमा कातर दृष्टि से देवतुल्य पति के मुख की ओर निहारती रही।

जगतसिंह कहने लगे, "सचमुच मेरे पिता मुझ से नाखुश हैं। उन्होंने न तो अपने मुख से अपनी नाराजगी व्यक्त की और न किसी और के ही जरिए अपने दिल की बात मुझ तक पहुँचायी, फिर भी हजारों ऐसे लक्षण हैं जिनसे मुझे उनकी नाखुशी के प्रमाण मिले हैं।"

तिलोत्तमा ने मृदु स्वर में कहा, "फिर भी तुम सावधान क्यों नहीं हुए ?"

जगतसिंह ने सरला का मुँह चूम कर कहा, "सावधान ? सरले, जिसने तुम्हारा यह मुखड़ा देख लिया है, तुम्हारे प्रेमसागर में जो डूब-तैर चुका है, जिसने तुम्हारे पास आत्म-समर्पण कर दिया है, क्या वह किसी विपद के भय से या किसी सर्वनाश को सामने देखकर सावधान हो सकता है ? सावधानी की बातें न करो। मैंने सावधानी की बातें एकबार भी नहीं सोचीं।

तिलोत्तमा ने कहा, "तो अब क्यों चिन्ता कर रहे हो ?"

जगतसिंह ने कहा, "दो कारणों से चिन्ता कर रहा हूँ। मेरे पिता राजपूत वीर हैं। उनके मन में जिस भाव का उदय होगा उसके कार्यान्वयन में उन्हें देरी नहीं लगेगी। उनकी इच्छा के विरुद्ध बात करनेवाला दुनिया में कोई नहीं। स्वयं अकबर बादशाह भी उनकी इच्छा के अधीन हैं—यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। पिता यदि ढिठाई के लिए मुझे प्राणदंड दें तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं।"

तिलोत्तमा चौंक पड़ी। जगतसिंह बोले, "डरो मत, राजपूत वीर मरने से कभी नहीं डरते। जीवन में मुझे कभी मृत्यु से भय न था, लेकिन अब हुआ है। अब मरने पर तुम्हारा साथ छूट जायगा यह सोचना भी मेरे लिए असह है।"

तिलोत्तमा सजल-नयनों में बोली, "प्रेममय, संगीशून्य होने की शंका मुझे नहीं है। तुम वीरश्रेष्ठ हो—बेझिझक मरना जानते हो, वीरपत्नी भी हँसते-हँसते प्राण दे सकती है।"

जगतसिंह बोले, "लेकिन इस समय ऐसी शंका का कोई कारण नहीं है क्योंकि स्वाभाविक पुत्रस्नेह पिता के सहसा ऐसे कठोर कार्य के मार्ग में शायद बाधक बने। लेकिन वे उससे भी कई गुना अधिक कठोर दंड की व्यवस्था कर सकते हैं। सीधे-सीधे प्राण का अन्त कर, सारी यातनाओं का अवसान न कर, वे शायद धीरे-धीरे बड़े ही भयानकरूप से मुझे मृत्यु की राह पहुँचा सकते हैं।"

तिलोत्तमा ने बड़े ही करुण ढंग से कहा, "सो कैसे ?"

जगतसिंह बोले, "वे शायद तुम्हें ग्रहण करने को राजी न हों। वे शायद ऐसी कोई व्यवस्था कर दें जिससे मेरी तुमसे कभी और भेंट न हो सके।"

तिलोत्तमा की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह रुआसी हो क्षुब्ध स्वर में बोली, "मेरी सौतेली मा धर्मपत्नी होती हुई भी अपने पति के घर में दासी के रूप में दिन बिता चुकी है। क्या वही जिन्दगी मुझे भी अपनी ससुराल में न भोगनी पड़ेगी?"

जगतसिंह अपने कपड़े से तिलोत्तमा की आँखें पोंछते हुए बोले, "डरो मत, व्याकुल मत हो। लोगों की बस्ती से परे, दूर समुद्र के किनारे तुम्हें लेकर यदि मैं रह पाऊँ फिर भी मैं अपने को धन्य समझूँगा। लेकिन मेरे पिता बड़े ही शक्तिशाली व्यक्ति हैं; उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करता हुआ कहीं भी जीवित रह सकनेवाला व्यक्ति कौन है? मैं भरसक ऐसा ही करूँगा जिससे सभी शुभ हो। उसके बाद भगवान की जो इच्छा हो वैसा ही होगा।"

तिलोत्तमा चुप बनी रही। उसकी आँखों में अब आँसू न थे—चेहरे पर उदासी न थी। जगतसिंह ने सप्रेम पूछा, "क्या सोच रही हो तिलोत्तमा?"

उसाँस लेकर तिलोत्तमा बोली, "सोच रही हूँ, मृत्यु का पथ तो सदा खुला ही हुआ है तो फिक्र किस बात की?"

नव-विवाहित पति-पत्नी की यह कैसी बेढब यातना थी!

——०——

(२)

छाया-शरीर

जगतसिंह अगले दिन सबेरे घोड़े पर सवार हो अकेले घूमने निकले थे। उस समय उषा के मोहन मधुर आलोक से प्रकृति ने परम सुन्दर वेश धारण कर लिया था। उस समय पूर्व-दिगंगना, रक्ताम्बरी प्रगल्भा नारी सी घूँघट में हँस रही थी, दोयल पक्षी ऊँचे वृक्ष के घने पत्तों की आड़ में बैठा मीठी तान से श्रोताओं को मुग्ध कर रहा था, उस समय कोयल की कूक पपीहे की हूक के साथ मिलकर बहुत दूर तक आनन्द फैला रही थी, उस समय

शान्ति और पवित्रता, माधुर्य और शोभा, प्रीति और आनन्द मानो मूर्त्तिमान सब कहीं विचरण कर रहे थे। उस समय जगतसिंह अपने सफेद घोड़े पर सवार किले के फाटक से बाहर निकले। घोड़ा भी उन शान्तिपूर्ण दृश्यों का आदी था। अतः वह अपने परिचित भार को पीठ पर लिये मानो नाचता हुआ आगे बढ़ने लगा।

सारी रात जगतसिंह और तिलोत्तमा नींद का संतापनाशक आश्रय पाकर भी सुखी नहीं हो सके थे। हवा में कुछ दूर घूमने पर मन को कुछ शांति मिलेगी और चिन्ता का भार कुछ हल्का होगा ऐसा सोच कर युवराज दुर्ग में लोगों के जागने से पहले बिस्तर छोड़ चुके थे। उनके बिस्तर से उठने के कुछ देर पहले ही तिलोत्तमा की आँखें लगी थीं। जगतसिंह ने बड़ी ही सावधानी से अपनी जीवन-सर्वस्वा उस निद्रिता सुन्दरी के बाहुबन्धन से अपने को मुक्त किया और अतृप्त-नयनों से कुछ देर तक उस माधुर्यराशि की ओर देख बड़े ही दुलार से उसके कपोल पर चुम्बन रख दिया। उसके बाद स्वाभाविक रूप से भरे उस शोभामय शरीर को निहार कर उन्होंने एक लम्बी साँस ली और वह प्यारा कमरा छोड़ दिया।

दुर्ग से कुछ दूर आगे बढ़ते ही जगतसिंह के जी में क्या आया कि उन्होंने दुर्ग की जिस दिशा में तिलोत्तमा का शयन-मन्दिर है उस ओर नजर घुमायी। जो कुछ देखा, उससे साथ ही साथ उन्हें घोड़े की लगाम कसनी पड़ी और पलकहीन नेत्रों से उस ओर देखते रहना पड़ा। उस शयनकक्ष के रोशनदान के सामने खुले केश, बिखरे वस्त्रों में तिलोत्तमा खड़ी थी। जगतसिंह कितनी ही बार कितने ही रूपों में उस शोभामयी का दर्शन कर मुग्ध हो चुके हैं, किन्तु इस समय, इन मधुर क्षणों में इस मधुर प्राकृतिक परिवेश की शोभा में, उसे लगा कि माधुरी स्वयं मूर्त्त हो सामने आ खड़ी हुई है।

जगतसिंह के बिस्तर छोड़ने के थोड़े समय के पश्चात् ही तिलोत्तमा की नींद टूट गयी थी और घुड़साल में घोड़ा सजाया जा रहा है यह समझकर व्यस्तता से उस प्रेममय हृदयरत्न को देखने की आशा में खिड़की पर प्रतीक्षा कर रही थी।

जगतसिंह ने दोनो हाथ सीने पर रख कर तिलोत्तमा के प्रति अपना

प्रेम प्रकट किया, पगड़ी का तुर्रा हिलाकर सुन्दरी को जाने का इशारा किया और खुद बिदा ली—हाथों के इशारे में जल्दी लौटने की बात थी। घोड़ा फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। जगतसिंह ने फिर मुँह घुमा कर देखा कि सुन्दरी उसी ढंग से तब भी खड़ी है। जगतसिंह की आँखें उधर पड़ते ही तिलोत्तमा ने गले में आँचल डाल भूमि पर सिर रख उन्हें प्रणाम किया। जगतसिंह ने दोनो हथेली पसार कर शुभेच्छा का ज्ञापन किया और सुन्दरी से कमरे के भीतर चले जाने का इशारा किया। घोड़ा धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा। जगतसिंह ने फिर मुँह घुमा कर देखा कि उस खिड़की के पास तिलोत्तमा रोती हुई आँखें पोंछ रही है। मन बड़ा चंचल हो उठा—आगे बढ़ने को जी नहीं करता। थोड़ा सा घूमने के बाद ही झट लौट आएंगे ऐसा तय कर उन्होंने घोड़े को हल्का चाबुक दिया। चाबुक लगना था कि वह हवा से बातें करने लगा। जगतसिंह ने फिर पलटकर देखा—वह खिड़की अब दिखायी नहीं पड़ रही थी। घुड़सवार ने लम्बी साँस ली और घोड़ा उसी गति से चलने लगा।

जिस पथ के सहारे बिमला के साथ युवराज पहली रात को गढ़मन्दारन आये थे उसी पथ से वे चलने लगे। वही आम का बाग—जिसके बीच किसी खास पेड़ की आड़ में छिपा पठान, बिमला की दी हुई बर्छी से जगतसिंह के हाथों मरा था, वह बाग भी उन्होंने पार किया। इसी जगह पर एक विचित्र वेशधारी व्यक्ति से उनकी भेंट हुई। वह व्यक्ति बेढंगे तरीके से लम्बा और घोर काले रंग का था। नाई के हथियार से उसका सिर केशशून्य था—केवल उचित स्थान पर एक गुच्छा बाल शिखा के रूप में था। मुँह पर मूँछ-दाढ़ी न थी। शरीर का अधोभाग पाजामा से ढँका था और ऊर्ध्वभाग अचकन से। अचकन पर रुद्राक्ष की माला, दोनो पैर नंगे और लम्बी नाक पर तिलक के बदले मिट्टी पुती हुई थी। जगतसिंह को देखते ही बाँह पसार कर इस व्यक्ति ने कहा, "अल्लाहपीर और महाप्रभु सरकार का भला करें।"

जगतसिंह ने हँसी रोककर कहा, "आप ही का नाम गजपति विद्यादिग्गज है न ?"

अचकन और रुद्राक्षधारी पुरुष ने कहा, "जी हाँ। व्याकरणादि समाप्त कर फिलहाल स्मृति का अभ्यास कर रहा था; इसी से देख रहा हूँ मेरा नाम संसार-ख्यात हो गया है। अब कुछ उर्दू भी सीख गया हूँ। लगता है इसबार मेरी प्रसिद्धि ब्रह्मांड भर में फैल जायगी।"

जगतसिंह ने कहा, "आपकी पोशाक ऐसी क्यों है ?"

गजपति बोले, "यवनों के संसर्ग में यवनों की पोशाक ही अच्छी थी। पठान मेरा धर्म नष्ट कर मेरा वेश बदलकर चले गये। और भी बहुत से लोग उनके सम्पर्क में आये थे, किसी का भी धर्म नष्ट न हुआ, सभी देश के लोग बने रहे। अध्यापक स्वामीजी के पास जाकर मैंने भी सलाम किया। उन्होंने कहा, 'इस वेश में तुम मेरे आश्रम में नहीं आ सकते। खास तौर से तुम्हारा अब कोई धर्म नहीं; तुम्हें सनातन शास्त्र का पाठ देने का अब आगे मेरा कोई विचार नहीं है।' तब 'बालानां रोदनं बलम्' यानी मैं रोने लगा। किन्तु 'अमृतं बालभाषितम्' इसलिए अध्यायक जी सन्तुष्ट हो बोले, 'तुम तीन दिन गंगा किनारे वास कर, गंगास्नान कर, मस्तकादि मुंडन कर और केवल एकबार हविष्य भोजन कर मेरे पास आओ तो मैं तुम्हें पाठ दूँगा।' गुरु की आज्ञा का पालन कर इतने दिनों बाद फिर आश्रम लौट रहा हूँ।"

जगत—लेकिन आपके ऐसे वस्त्रों का क्या कारण है ?

गज०— वस्त्राभाव। यवनों ने मेरे वस्त्रों के बदले यही दिया था। फिलहाल इनके उपयोग के अलावा और कोई उपाय नहीं है।

जगतसिंह ने अँगरखे में से एक रुपया निकाल कर दिग्गज की ओर फेंका और कहा, "आप किले में आकर मुझसे मिलें, मैं आपकी सब बातें सुनूँगा।"

गजपति ने रुपया उठाकर कहा, "स्वस्ति श्री भोजराज! आपने क्या इस समय वीरेन्द्रसिंह का स्थान ले लिया है ?"

जगतसिंह बोले, "आप क्या मुझे नहीं जानते हैं ? पठानों के खेमें में आपसे एक दिन मुलाकात भी हुई थी। आप क्या नहीं जानते हैं कि मैंने दिवंगत वीरेन्द्रसिंह जी की कन्या से विवाह कर लिया है ?"

दिग्गज बोले, "बहुत खूब, बहुत खूब। पत्नी और कन्या एक ही बात हुई। दोनों की ही रक्षा करनी पड़ती है। योग्य व्यक्ति के हाथों में ही पत्नी और कन्या की रक्षा का भार देकर वीरेन्द्रसिंह स्वर्ग सिधारे हैं।"

इस व्यक्ति की बातों में वक्त बर्बाद न कर जगतसिंह आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर आगे बढ़ते ही शैलेश्वर मन्दिर दिखाई पड़ता है। जगतसिंह का अभिप्राय वहीं तक जाने का था। युवराज अपने दुखित चित्त को शान्ति देना चाहते थे। वे देवादिदेव के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनसे करुणादान ले दुर्ग लौट जायेंगे। थोड़ा ही आगे बढ़ने पर ही मन्दिर दिखायी पड़ेगा। अतः देवदर्शन तथा देव-चरणों में दुःख-निवेदन के निमित्त जगतसिंह अपने चित्त को संयत और समाहित करने लगे।

सहसा दूर से आते हुए अश्वों के खुरों की ध्वनि ने उनके चित्त की शान्ति बिगाड़ दी। उन्होंने देखा, दूरस्थ मंडलाकार मेघमंडल सी धूल आकाश में उठ रही है। साथ ही साथ अश्वपदध्वनि निकटतर होती आ रही है। उन्होंने और भी देखा कि उनका घोड़ा अपनी स्वजाति-समागम का अनुभव कर पूँछ हिला रहा है, कान खड़े कर लिये हैं और हिनहिनाता हुआ अपनी उपस्थिति भी जता रहा है। जगतसिंह ने फौरन ही देखा, बहुत से वीर उसकी ओर बढ़ रहे हैं।

जगतसिंह विस्मित हुए। शत्रु का आना संभव नहीं। पठान युद्ध-विग्रह त्याग कर उड़ीसा भाग गये हैं। देश में बादशाह के पक्ष के अलावा कोई दूसरा सैनिक नहीं है। वे गढ़मन्दारन के शत्रु नहीं। स्वयं महाराज मानसिंह ने गढ़मन्दारन का अधिकार वीरेन्द्रसिंह के उत्तराधिकारियों के हाथ सौंप दिया है। तो ये लोग कौन हैं? आगन्तुक और भी निकट आये। तब जगतसिंह देख सके कि वे महाराजा मानसिंह के अधीनस्थ सैनिक हैं। सहसा उनका हृदय काँप उठा, चित्त अवसाद से भर गया।

सैनिक निकट आये। वे संख्या में पचास थे, सभी हथियार-बंद, तगड़े और बलिष्ठ। उनसे तनिक अलग हो आगे-आगे एक व्यक्ति घोड़े पर सवार आ रहा था। शायद वही व्यक्ति इस छोटी सी टुकड़ी का सरदार हो। और थोड़ा आगे बढ़ने पर उस नेता की आज्ञा से सब सैनिकों

ने अपने-अपने घोड़े की लगाम संयत की। उसके बाद सभी लोग एक साथ अपनी-अपनी तलवार वक्ष पर धारण कर एकस्वर में बोल पड़े, "जय बादशाह अकबर की जय ! जय महाराजा मानसिंह की जय"।

जगतसिंह फौरन सैनिकों की नाईं वक्ष पर तलवार धारण कर बोल पड़े, "जय बादशाह अकबर की जय ! जय महाराज मानसिंह की जय।" उसके बाद सामनेवाले व्यक्ति से कहा, "क्यों मथुरासिंह ! क्या खबर है ? शाहंशाह का समाचार क्या है ? महाराज कुशल से तो हैं ?"

मथुरासिंह घोड़े से उतरा और बोला, "भगवान की इच्छा से किसी दिशा में भी अमंगल की कोई सूचना नहीं।"

पीछे के एक सैनिक ने मथुरासिंह के घोड़े की लगाम थाम ली। युवराज के निकट आकर मथुरासिंह ने आदर से उनका अभिवादन किया, उसके बाद पगड़ी खोल कर उसमें से उसने एक पंजा निकाला। अत्यन्त विनय से उसने यह निदर्शन युवराज के हाथों में दिया।

पंजा के साथ सैनिकों के आते ही युवराज ने समझ लिया कि उनके सुख और आनन्द के दिनों का अन्त शायद यहीं पर हो। पूछा, "मेरे लिए महाराज का क्या हुक्म है ?"

मथुरासिंह बोले, "युवराज ! मैं आपका अनुगत हूँ, मुझे क्षमा करें। आप जहाँ पर भी जिस हालत में हों वहीं से उसी दशा में आपको हमारे साथ जाना पड़ेगा।"

"कहाँ जाना होगा ?"

"पटना—महाराज के पास।"

"यदि तनिक विलम्ब कर, केवल आज का दिन यहाँ रहकर, जाने की उपयोगी सब व्यवस्था कर जाना चाहूँ तो क्या उसमें कोई एतराज है ?"

मथुरासिंह ने हाथ जोड़कर कहा, "युवराज, यदि आप तनिक भी विलम्ब करें या हिचकें तो आपको बन्दी बनाकर ले जाने का हमें हुक्म मिला है।"

जगतसिंह बोले "यहाँ मेरे सम्बन्धी-कुटुम्बी हैं। क्या उनसे अन्तिम भेंट और विदा भी नहीं ले सकता ?"

मथुरासिंह ने पहले की तरह हाथ जोड़े हुए ही कहा, "मैं दास हूँ। दास का अपराध क्षमा करें। आपको तिलमात्र समय देने का भी आदेश मेरे पास नहीं है।"

जगतसिंह समझ गये कि बहस या विरोध करने का समय नहीं है। सोचा, राजद्रोहियों के लिए जैसा आदेश दिया जाता है उनपर वैसा ही आदेश दिया गया है। उनका भी अपराध राज-द्रोही के समान हुआ है इस विषय में भी उनके मन में कोई सन्देह न था। बोले, "महाराज की आज्ञा लंघन करने का साहस करे ऐसा व्यक्ति भारत में कोई नहीं है, मैं तो बहुत ही तुच्छ सेवक हूँ। फिर भी, मथुरासिंह, मैं तुमसे एक बात पूछ रहा हूँ। यदि मैं अपनी खुशी से न जाऊँ तो तुमने कहा है कि तुम मुझे बन्दी के समान बाँधकर ले जाओगे। यदि मैं तुमलोगों के साथ युद्ध करूँ तो तुमलोगों का कर्त्तव्य क्या होगा, इस पर क्या आदेश दिया गया है, वह मैं जानना चाहता हूँ।"

मथुरासिंह ने कहा, "इन गुलामों के मुँह वे बातें शोभा नहीं देतीं। हम लोगों को आदेश है कि युवराज चाहे मृत हों या जीवित, महाराज के सामने उन्हें उपस्थित करना ही है।"

इसलिए जगतसिंह के प्रति चरम आदेश ही दिया गया है। क्षणभर के लिए भी उनका विरोध करने का साहस या शक्ति उनमें नहीं है। यह संभव है कि महाराज के सामने उपस्थित होने पर उन पर कठोर दंड का विधान ही होगा किन्तु उस पर इस समय विचारने की क्या आवश्यकता है? शायद भगवद्वाक्य के पालन में मुहलत मिल सकती है किन्तु महाराज मानसिंह का आदेश तत्क्षण पालनीय है। जगतसिंह बोले, "चलो मथुरासिंह, निरर्थक देरी से क्या लाभ? मेरी सेना और अनुचरवर्ग दारुकेश्वर नदी के तट पर पड़ाव डाले पड़े हैं। उनका क्या प्रबन्ध होगा?"

मथुरासिंह बोला, "मैं उसका बन्दोबस्त कर रहा हूँ।"

सैनिकों में से एक व्यक्ति को बुलाकर मथुरासिंह ने यथायोग्य आदेश दिया। वह दल छोड़ गढ़मन्दारन की ओर बढ़ रहा है देखकर युवराज बोले, "तुम अगर गढ़मन्दारन जाओ तो वहाँ जो कोई मिले उससे कह देना कि जगतसिंह पिता के आदेश से उनसे मिलने पटना गया हुआ है"। उसके

बाद मथुरासिंह से बोले, "तो सैनिकों को दो हिस्सों में बँट जाने को कहो। मुझे शायद दोनो दलों के बीच में जाना होगा और शायद तुम भी मेरे बगल-बगल चलोगे।"

मथुरासिंह बोला, "युवराज, मैं महाराज का अधम दासमात्र हूँ। आज्ञा-पालन करना ही मेरा कार्य है।"

तत्क्षण मथुरासिंह की आज्ञा के अनुसार सेना दो हिस्सों में बँट गयी और एक हिस्सा जगतसिंह के सामने और दूसरा हिस्सा उनके पीछे चला गया। मथुरासिंह अपने घोड़े पर सवार हो जगतसिंह के बगल में आ खड़ा हो गया। सभी लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे।

तिलोत्तमा कहाँ है? कल शाम को तुम्हारे हृदयदेवता ने जो शंका की थी वह इतनी जल्दी कार्यरूप में परिणत हो जायगी यह कौन जानता था? जगतसिंह ने थोड़ी देर पहले गवाक्ष पर जो ओस से भीगी कमलिनी सी, बादलों से ढके चन्द्रमा के समान, वृन्त-च्युत कुसुम की तरह, सूर्यकिरण से मुरझाये किसलय के समान तुम्हारे मुरझाये सूखे मुखड़े को देखा है, क्या वही भेंट तुमलोगों की अन्तिम भेंट है? विगलित-वेशा नवीना का बालारुण प्रदीप्त उस शोभा का दर्शन, वह रोदन, वह प्रणाम, हाय! क्या वही तुम्हारी प्रेमलीला का अन्तिम अभिनय है?

——:o:——

(३)

अपराध!

खरगोश पर जब कोई विपदा आ पड़ती है और भाग निकलने का रास्ता नहीं देख पाता तो वह आँखें मूँदकर एक जगह पर बिना हिले-डुले पड़ जाता है। आँखें मूँद लेने पर वह कुछ भी नहीं देख पाता और सोचता है कि उसे भी कोई नहीं देख पा रहा है! कुमार जगतसिंह ने जब समझ लिया कि पिता कभी इस विवाह की स्वीकृति नहीं देंगे और इस विवाह के बगैर उनके जीवन का सब सुख-चैन हमेशा के लिए बर्बाद हो जायगा, तो उन्होंने छुप कर शादी की रस्म पूरी कर ली थी। सोचा था कि यह घटना

उनके पिता तक कभी न पहुँच सकेगी; नन्हे खरगोश की तरह आँखें बन्द कर जगतसिंह निश्चिन्त हो गये थे, मन ही मन सोच लिया था कि समुचित समय आने पर और किसी विशेष अवसर मिलने पर वह सारी घटना पिता के सामने रख देंगे। बीती हुई घटना मेटी नहीं जा सकती ऐसा सोचते हुए पुत्रस्नेह की प्रबलता और पुत्र के कातर निवेदन से पिघल कर अवश्य ही उनके सदय पिता सभी बातें सुनेंगे और अवश्य ही उनकी सारी शंकाएँ दूर हो जायेंगी।

जगतसिंह, तिलोत्तमा, विमला, अभिराम स्वामी, ये लोग जो भी, जो कुछ भी सोचकर निश्चिन्त क्यों न हो गये हों, कोई घटना भी महाराज मानसिंह को अविदित न रही। जब जगतसिंह गढ़मन्दारन में, वीरेन्द्रसिंह के दुर्ग में पठानों के हाथ वन्दी हुए, तभी वह खबर मानसिंह को मिल गयी थी। पुत्र की प्रेमलीला, दुर्गाधिपति की आज्ञा के बिना असमय दुर्ग में प्रवेश करना, नाहक असावधानी आदि सभी बातें महाराज को सम्पूर्णरूप से मालूम हो गयी थीं। पुत्र पर उनकी नाराजगी की कोई सीमा न रही। महाराज मानसिंह पहले से ही वीरेन्द्रसिंह और उनके कुटुम्बियों के बारे में जानते थे। उन सभी को वे बिल्कुल तुच्छ व्यक्ति ही मानते थे। ऐसे व्यक्तियों के साथ मौलिक कुटुम्बता रखना भी मानसिंह को अभिमत न था। उस घृणित पविरार की कन्या को पुत्रवधू के रूप में गृहण करना महाराज कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

बहुत से वीरों के सम्मुख जगतसिंह ने गर्व के साथ पिता से कहा था कि पाँच हजार की सेना लेकर वे पठानों को सुवर्णरेखा के दूसरी ओर भगा देंगे। मानसिंह को पुत्र की इस स्पर्धा और साहस से गौरव बोध हुआ था और उन्हें इच्छानूरूप सेना आदि देकर पठानों को भगाने का भार सौंपा था। पुत्र यह गम्भीर भार अपने कन्धे पर लेकर प्रेम से युवती की खोज में लगा हुआ है और चोर की तरह दुसरे के दुर्ग में प्रवेश कर दुर्गस्वामी की कन्या के साथ प्रणय-लीला में मत्त है, ये समाचार उन्हें अप्रसन्न करने के लिए पर्याप्त थे। जब उन्हें यह मालुम हुआ कि वीरेन्द्रसिंह की कन्या के साथ प्रमोदरत अवस्था में जगतसिंह पठानों के हाथ कैद हो गये हैं तभी पुत्र

पर उनका क्रोध सीमा पार कर गया। इसीलिए तत्काल पठानों को ध्वंस करने को यह उद्योगी न हुए। उस समय उन्होंने ऐसी सन्तान का कल्याण-चिन्तन भी अवैध समझा।

विमला के अस्त्राघात से कतलू खाँ की मृत्यु हुई। मृत्यु के समय उसने जगतसिंह से सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। जगतसिंह मुक्त हो गये। मुक्ति के बाद उन्होंने पिता से भेंट की और पठाना की प्रार्थना के अनुसार सन्धि का प्रस्ताव रखा। मानसिंह जानते थे कि शायद उन्हें जल्द ही दिल्ली रवाना होना पड़े और उनका सहकारी सैयद खाँ भी बरसात से पहले काफी फौज इकट्ठा नहीं कर सकेगा इसलिए फिलहाल यथापूर्व युद्ध चलने की कोई संभावना नहीं। कई तरह सोच विचार कर वे फिलहाल सन्धि के लिए सम्मत हुए। विपुल उपहार आदि लेकर पठान मंत्री ख्वाजा इशा और नये नवाब सुलेमान खाँ और उसमान खाँ ने महाराज मानसिंह से मुलाकात की। महाराज ने उनके प्रति सम्मान आदि प्रदर्शन कर उन्हें विदा किया। मानसिंह के आदेश से राजपूत सेनाएँ पटना जाने के लिए तैयार होने लगीं। जगतसिंह पर महाराजा ने कोई विशेष कार्य का भार न सौंपा। उनके प्रति अवज्ञा दिखाना ही महाराज का उद्देश्य था।

ऐसी बात नहीं कि जगतसिंह अपने पिता का क्रोध भाँप न सके हों फिर भी वह घोड़े के लगाम से लगी ब्राह्मण की लिपि * का अनुरोध रखने के लिए रवाना हो गये। पिता से आज्ञा लिये बिना, और उनके चरणों में कोई समाचार निवेदन किये विना ही उन्होंने उस बार गढ़ मन्दारन में तिलोत्तमा से विवाह कर लिया। विवाह में उनके अनेक मित्र-बन्धु निमंत्रित होकर आये, आयशा और उनके आज्ञाकारी लोग भी उपस्थित हुए और उत्सव और आनन्द काफी मात्रा में मनाया गया। किन्तु प्रधान कर्त्तव्य निभाने में जगतसिंह उदासीन बने रहे। महाराज मानसिंह से विवाहस्थल पर उपस्थित होने की प्रार्थना नहीं की गयी, उनकी आज्ञा या आशीर्वाद प्राप्त करने का भी कोई यत्न न हुआ। सारे शुभकार्य पिता की अनुपस्थिति में ही सम्पन्न हुए किन्तु कोई बात भी महाराज से छुपी न रही। उनकी खीझ और बढ़ गयी।

---

* देखो 'दुर्गेशनन्दिनी' द्वितीय खण्ड, अठारहवाँ परिच्छेद।

लेकिन उसे उन्होंने वाक्यों में व्यक्त न किया बल्कि किसी राजकीय कार्य के परामर्श में उन्हें वह बुलाने से विरत रहे, कोई मामूली कार्य-भार भी न सौंपा। उनकी गतिविधि तथा कार्यादि के सम्बन्ध में भी आलोचना करना उन्होंने छोड़ दिया। महाराज मानसिंह ने हृदय की भट्ठी में पुत्र के प्रति असन्तोष की आग जलाये रखा। वही आग समय पर क्षुद्र जगतसिंह को भस्मसात् कर सकती है यह बात उस प्रेममुग्ध सौन्दर्य-दर्शन-रत युवराज के मन में कभी आयी ही नहीं।

दारूकेश्वर-तट से महाराज का खेमा उठकर पटना की ओर चला। ऐसी बात नहीं है कि जगतसिंह इस व्यवस्था के बारे में न जानते हों, फिर भी, न तो वह समय पर पहुँच कर पिता या सेना से मिले ही और न राजकार्य में नियुक्त कर्मचारी होते हुए उनके कार्य में उन्होंने किसी प्रकार की सहायता दी। उनके अधीनस्थ सेना दारुकेश्वर के तट पर पड़ी रही। जगतसिंह और उनकी सेना को छोड़कर बाकी सभी पटना गये। महाराज मानसिंह का क्रोध सीमा को पार कर जा चुका था। ऐसा उद्दंड, राजकार्य में उदासीन सैनिक, पुत्र होने पर भी राजदंड के योग्य है ऐसा ही उन्होंने निर्णय किया।

क्या जगतसिंह का चित्त अपने पिता की नाखुशी के डर से एकबार भी अवसन्न या व्याकुल नहीं हुआ ? यह कैसे बताऊँ कि एकबार भी नहीं हुआ ? बहुत बार जगतसिंह पिता की नाराजगी का भाव अनुमान कर चिन्तित हुए हैं। बहुत बार उन्होंने, इस नाखुशी का परिणाम अपने लिए भयंकर होगा, ऐसा सोचा भी है। जगतसिंह का अपराध अवश्य ही घोर है, किन्तु ऐसी दशा में पड़ने पर किसका अपराध हल्का हो सकता है ? जिस समय खेमा उठाया जा रहा था उस समय जंगल की टूटी इमारत में तिलोत्तमा की जो दशा थी, उसे छोड़कर, उस प्राणप्यारी सुन्दरी की सेवा त्याग कर, कोई भी दूसरे किसी कर्तव्य के पालन में ध्यान नहीं दे सकता है। उसके बाद विवाह पिता के बिना सम्मति के हुआ। खासतौर से वीरेन्द्रसिंह के वंश के साथ विवाह-सम्बन्ध में महाराज कभी सम्मति न देंगे यह जानकर गुप्तरूप से विवाह-संस्कार सम्पन्न करना बहुत बड़ा अपराध हुआ है। लेकिन जिस सुन्दरी के लिए हृदय उन्मादी हुआ है, जिसे प्राप्त न करने पर जीवन-धारण की आवश्यकता

ही समाप्त हो जाय, जिसके चिन्तन के अलावा किसी और की सुधि ही न रह गयी, उसी प्रिय वस्तु की प्राप्ति के उत्साह में प्रमत्त मन भला ऐसा पथ क्यों-कर न ग्रहण करे जिसमें काँटे ही काँटे हों।

वास्तव में जगतसिंह ने किसी सुन्दरी से मिलने की वासना से अपना कार्य परिचालित नहीं किया था। भयानक आँधी की चपेट से बचने और आश्रय लेने के लिये शैलेश्वर मन्दिर में उन्होंने प्रवेश किया था। वहाँ उस समय उनकी भावी मनमोहिनी विराज रही थी यह उन्हें मालूम न था। उसके बाद दर्शन और दर्शन के उपरान्त पागलपन। जगतसिंह ने यह पागलपन छोड़ने के लिए बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु छुटकारा न मिला। हृदय के ऐसे प्रबल अनुराग और ऐसे प्रबल आकर्षण की रेखाओं को मिटा देना कब और किसके बस की बात रही है? उसके बाद जगतसिंह उस मनमोहिनी का परिचय पाने के लिए एक पखवारे के बाद उसी स्थान पर फिर पहुँच गये थे। उसके परिचय से उनका दिल टूट गया। तभी वह समझ गये थे कि उनके भाग्य में कभी इस सुन्दरी का संगलाभ न होगा। वीरेन्द्रसिंह की कन्या के साथ मानसिंह के पुत्र का विवाह असंभव है। इस स्थल पर जगतसिंह ने एक विशेष भ्रमात्मक कार्य किया। उन्होंने केवल एकबार—जीवन में अन्तिम बार मात्र उस सुन्दरी से मिलकर चिर-विदा लेने की इच्छा प्रकट की। यह भ्रम उनकी अनुभवशून्यता के कारण हुआ। ऐसी मुलाकात में प्रेम सौगुना बढ़ जाता है, यह बात निराश प्रेमिकों की समझ में नहीं आती। अदर्शन से प्रेम-लालसा पर समय का पर्दा चाहे पड़ भी जाय किन्तु दर्शनरूप ईंधन के कारण प्रेमानल धधकने ही लगता है। यह बगैर समझे ही अनभिज्ञ प्रेमिक एक अन्तिम दर्शन के लिए पागल सा हो उठता है। यह अन्तिम दर्शन ही बहुधा सर्वनाश का कारण बन जाता है। जगतसिंह के भाग्य में भी ऐसा ही हुआ।

बुलावा पाकर जगतसिंह विमला के साथ गढ़ मन्दारन गये थे। दुर्गस्वामी की सम्मति के बिना दुर्ग में प्रवेश करने की इच्छा उनकी न थी। विमला ने जब उनके कानों में अपना आत्मपरिचय कह सुनाया तभी उन्होंने दुर्ग में प्रवेश किया था। किन्तु बातों-बातों में इस समय विमला ने जिन दो एक वाक्यों का

प्रयोग किया था उन्हें सुनकर जगतसिंह को क्रोध या चित्त-विकार आना चाहिए था। जब उन्होंने विमला को सुचरित्रा कहकर सम्बोधित किया तो विमला ने टोक कर अपने को दुश्चरित्रा कहा था। कोई नारी अपने को दुश्चरित्रा कहे तो उसका बड़ा घृणित अर्थ ही व्यक्त होता है। जब दुर्ग में प्रवेश करने के गुप्तद्वार का जिक्र आया तो विमला ने कहा, जहाँ चोर वहीं सेंध। इस बात से भी युजराज को विराग उत्पन्न होना चाहिए था क्योंकि 'चोर और सेंध' शब्दों से गुप्तप्रेम और गुप्त-उपाय ही सूचित होता है। कुलनारी के लिए ऐसी उक्तियों का प्रयोग अनुचित है ऐसा सोचना ही राजकुवँर के लिए उचित होता। उन्होंने इन वाक्यों को रहस्य-प्रवणा विमला की सरल उक्तियाँ ही समझा और उस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया था। वास्तव में सत्य भी यही था।

अन्तिम भेंट हुई। ऐसी आखिरी मुलाकात में जो हुआ करता है वही यहाँ भी हुआ। दोनों ही एक दूसरे के हाथों में अपने को सौंप कर हमेशा के लिए अटूट प्रेम-डोर में बँध गये। उनकी प्रेम-घटना का इतना भर ही इतिहास है। जगतसिंह वीर सैनिक पुरुष तथा सम्राट् के कर्मचारी थे; इसलिए बेवक्त उन्हें ऐसी प्रेमलीला में प्रमत्त नहीं होना चाहिए था। लेकिन सभी घटनाएँ उनके विरुद्ध हो गयी थीं। प्रणय-रंग-मंच पर वे अभिनेता के रूप में खड़े होने के लिए प्रार्थी न थे, घटनावली ने उन्हें असम्भावित ढंग से उस मंच पर स्थापित कर दिया था। उस मदिरा का नशा चढ़ जाने पर कौन ऐसा वीर है जो उसकी हुकूमत से पार पा सकता है ?

क्या मानसिंह इतनी बातें जानते थे ? शायद कोई भी मामला उनसे छुपा हुआ न था; फिर भी वे अपने पुत्र पर क्रोधित हुए। उन्होंने सोचा था, पहले अपने प्रभु का कार्यसाधन, उसके बाद अपना सुख, प्रमोद या स्वार्थ का चिन्तन—ऐसा ही कर्त्तव्यनिष्ठ वीर का उद्देश्य होना चाहिए। न्यायी, कर्त्तव्यपरायण अम्बरेश्वर ऐसा सोचकर ही जगतसिंह पर बेहद नाराज हुए थे। धीरे-धीरे विभिन्न प्रकारों से वह विराग दिन ब दिन बढ़ने लगा, यह पहले ही बयान कर चुका हूँ।

उसके बाद प्रभु की सम्मति के बिना करीब महीने भर खेमे से काफी दूर ठहरना जगतसिंह के लिए, मानसिंह की नजरों में, अक्षम्य अपराध सा लगा।

विराग की चरम सीमा पर पहुँचकर मानसिंह ने इस अपराधी को, जीवित या मृत, अपने सामने हाजिर करने का हुक्म दिया। पार्श्वचर पदस्थ व्यक्ति महाराज के क्रोध का अनुभव कर सिहर उठे।

जगतसिंह शैलेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट ही वन्दी हुए थे। जिस स्थान पर उनसे प्रेमाभिनय का आरम्भ हुआ था, वहीं उसकी यवनिका भी गिरी।

——)०:-*-:०(——

(४)

प्रेम का पुरस्कार

पटना शहर में महाराज मानसिंह बहादुर के दरबार-गृह में आज जनता की बड़ी भीड़ है। आज निश्चित समय पर वहाँ एक कल्पनातीत काण्ड होनेवाला है। जल्द ही वहाँ एक विशेष प्रतिष्ठित तथा पदस्थ राजकर्मचारी के अपराध का न्याय होगा। हथियारबन्द रक्षक चारो ओर अपने-अपने स्थानों पर खड़े हैं। हजारों सैनिकों की अभिलाषा के अनुसार उन्हें न्याय-सभा में उपस्थित होने की सम्मति मिली थी और वे घुड़सवार और पैदल सैनिक हजारों की संख्या में वहाँ उपस्थित थे। नगरनिवासी भद्र-अभद्र जन-समूह को भी आज इस सभा में आने का निषेध नहीं था इसलिए न्याय-कार्य शुरू होने के बहुत पहले से ही जनसमागम से उस विशाल दरबार-गृह का कोना-कोना भर गया था।

उचित समय पर नगाड़े बजने लगे। नगाड़ों का बजना बन्द होते ही स्तुति-गायकों ने मंगल गीत गाया। उसके बाद नकीब ने आवाज़ लगायी। समागत दर्शक उत्कंठा से महाराज के आने का रास्ता देखने लगे। उसी क्षण अम्बरेश्वर महाराज मानसिंह ने धीर और गंभीर डग भरते हुए एक विशेष द्वार से सभा में प्रवेश किया। साथ सी साथ उनके अनुचर सेनापति, सभासद आदि का भी प्रवेश हुआ। सभी का चेहरा उत्कंठा से भरा हुआ था। आज न जाने क्या भयानक घटना हो जायगी यह सोचकर सभी लोग भय से व्याकुल थे। महाराज मानसिंह ऊँचे मंचपर

अपने निश्चित् आसन पर बैठ गये। सेनापति तथा अन्य सभासद अगल-बगल नीचे आसनों पर बैठे। समागत लोगों ने देखा कि महाराज के चेहरे पर स्थिरता तथा धीरता के लक्षण विराज रहे हैं।

जन-समागम से सभा का कोना-कोना भर जाने पर भी वहाँ असामान्य शान्ति और स्तब्धता विराज रही थी। किसी के मुँह में कोई शब्द नहीं। पास के व्यक्ति से भी बात करने का किसी में साहस न था। खुलकर साँस लेने की हिम्मत भी बहुतों को नहीं पड़ रही थी। सभी चिन्तित थे, सभी मुरझाये से थे।

महाराज ने आसन ग्रहण कर अकम्पित गम्भीर स्वर में आज्ञा दी, "कैदी लाया जाय।"

सभा में सभी विचलित हो उठे। सभी का विषादभरा चेहरा और काला पड़ा गया, सभी उत्सुक नयनों से प्रवेशद्वार की ओर आँखें गड़ाये रहे। सधे पदक्षेप से प्रहरियों द्वारा घिरा हुआ बन्दी सिर झुकाये उस सभागृह में पहुँचा। सभी लोग करुण नेत्रों से उस बन्दी के मुँह की ओर देखते रहे। वह बन्दी कुवँर जगतसिंह थे।

बन्दी के सामने खड़े होते ही महाराज मानसिंह पूर्ववत् दृढ़स्वर में बोले, "बन्दी जगतसिंह! तुम बहुत से अपराधों के अपराधी हो। तुम्हारे अपराधों को मैंने दो हिस्सों में बाँटा है। तुम्हारे कुछ अपराध पारिवारिक हैं और कुछ राजकीय। आज तुम्हारे सभी अपराधों का यथायोग्य न्याय कर तुम्हे दंड दिया जायगा। तुम्हारे राजकीय अपराधों की गंभीरता के बावजूद न्यायकर्त्ता की सुविधा के लिए पहले तुम्हारे पारिवारिक अपराधों पर विचार आरम्भ किया जायगा।"

जगतसिंह का झुका हुआ सिर और झुक गया। एक वृद्ध मुगल पार्षद अपना आसन छोड़ उठ खड़ा हुआ और यथायोग्य विनय के साथ महाराज का अभिवादन कर बोला, "दास का अपराध क्षमा हो। दास सविनय निवेदन करना चाहता है कि पारिवारिक अपराध की आलोचना सभी लोगों को सुनने की क्या जरूरत है? क्यों न हम सभी दूसरी जगह चले जायँ?"

मानसिंह बोले, "नहीं—किसी को भी इस स्थान से जाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि, बन्दी के पारिवारिक अपराधों के साथ उसके राजकीय अपराधों का सम्बन्ध है और एक के न्याय पर दूसरे का न्याय निर्भर है।"

मुगल फिर अपने आसन पर बैठ गया। सभी लोग पत्थर के बुतों के समान अपनी-अपनी जगहों पर स्थिर रहकर महाराज का आदेश सुनने के लिए प्रतीक्षा करने लगे।

महाराज बोले, "सुनो बन्दी! इसके बाद तुमसे जो भी प्रश्न किया जायगा, यदि तुम उसका सही-सही उत्तर न दोगे तो तुम्हारा अपराध अधिक गंभीर माना जायगा।"

जगतसिंह ने गर्व के साथ उत्तर दिया, "यह सावधानी बिल्कुल अनावश्यक है। जगतसिंह झूठ बोलना जानता ही नहीं—प्राणभय से भी वह झूठ कहने में असमर्थ है।

मानसिंह ने पूछा, "तुम पठानों के द्वारा वीरेन्द्रसिंह के अन्तःपुर में रमणियों के साथ एक ही कमरे में पकड़े गये और कैद हुए थे या नहीं?"

जगतसिंह ने जवाब दिया, "हाँ।"

मानसिंह ने पूछा, "पठानों के हाथ बन्दी अवस्था में तुमने नवाब कतलू खाँ की गोद ली हुई बेटी आयशा के दिल में प्रेमलालसा जगायी थी या नहीं?"

जगतसिंह ने कहा, "महाराज! इस सवाल का जवाब कुछ लम्बा होगा—क्षमा करेंगे। नवाबपुत्री आयशा मेरी परम शुभेच्छु हैं। आज जो यह अभागा सैकड़ों अपराधों का अपराधी बनकर आपके न्याय की प्रतीक्षा में खड़ा हो सका है सो केवल उस नवाब-पुत्री आयशा के गुण के कारण। जब मैं अस्त्राघात से घायल हो ज्वर-विकार से बेहोश था तब नवाब-नन्दिनी आयशा ने मा की नाईं, बहन की नाईं और सहेली की नाईं यत्न से मेरी अथक सेवा कर मुझे भला-चंगा किया है। उस देवी की मैं भक्ति करता हूँ, हृदय से मैं उसका आदर करता हूँ और उसे निश्छल कुटुम्बी ही मानता हूँ। उसके समान देवबाला के प्रति प्रेमनयनों से दृष्टिपात करने को भी इस

अधम में हिम्मत नहीं। पूजनीया के अलावा किसी अन्य रूप में सोचने की मुझमें प्रवृत्ति भी नहीं है। लेकिन कहते हुए दिल फटा जा रहा है कि एक असम्भावित घटना के द्वारा मैं अचानक जान सका कि वह गुणवती नवाब-नन्दिनी इस अयोग्य व्यक्ति से प्रेमासक्त है। उस सदय-हृदया नवाब-तनया के हृदय में न जाने कैसी-कैसी यातनाएँ समायी हुई हैं यह सोचकर मुझे असीम कष्ट हो रहा है। उसे प्रणयोन्मत्त तो करना दरकिनार, यदि मैं उसके अथाह प्रेम का तनिक भी प्रतिदान दे सकता तो मेरे सुख, आनन्द तथा सौभाग्य की सीमा न रहती। उसके हृदय में प्रेम उत्तेजित करना तो दूर की बात, यदि उसके हृदय से प्रेमाकर्षण का चिह्नमात्र धोने में मुझे असाध्य-साधन भी करना पड़ता तो मैं कभी पीछे न हटता।"

मानसिंह ने फिर पूछा, "वर्त्तमान पठान नवाब उसमान खाँ के साथ कभी तुम्हारा द्वन्द्वयुद्ध हुआ था या नहीं?"

जगतसिंह बोले, "हाँ महाराज! आयशा का प्रेम ही उसका कारण है। नवाब बोले, 'इस संसार में आयशा के प्रणयाकांक्षी के रूप में दो व्यक्तियों को स्थान नहीं हो सकता इसलिए लड़कर तुम मरो या मैं।' मैंने उसे स्पष्टरूप से बता दिया कि मैं आयशा का प्रणयाकांक्षी नहीं हूँ, इसलिए लड़ने की कोई जरूरत नहीं। उन्होंने कहा, 'इससे क्या? आयशा तो तुम्हारी प्रणयाकांक्षिणी है इसीलिए तुम वध्य हो।' इन बातों से नवाब इन्कार नहीं कर सकते। वे मुझे पदाघात न करते तो मैं कभी उनके साथ युद्ध न करता।"

मानसिंह, "तुम नवाब-पुत्री को बार-बार खत भेजते हो कि नहीं?"

जगतसिंह, "बार-बार नहीं भेजा, एकबार मात्र लिखा था।"

मानसिंह, "तुम बिना कारण आयशा से मिलने गये थे या नहीं?"

जगतसिंह, "गया था। इस देश से विदा लेते समय उससे आखिरी मुलाकात का प्रार्थी बन कर गया था।"

मानसिंह, "तुमने कभी उसे निमंत्रित भी किया?"

जगतसिंह, "केवल एकबार।"

मानसिंह, "तुमने भेंट करना चाहा तो आयशा ने इसे अनुचित समझकर तुम्हें लौटा दिया था या नहीं?"

जगतसिंह, "ऐसे ही किसी कारण से वह मुझसे नहीं मिलना चाहती थीं, यह बात सत्य है।"

मानसिंह ने घृणाभरी हँसी के साथ कहा, "अब भी कहना चाहते हो कि तुम नवाब-पुत्री के प्रति आसक्त नहीं हो? तुमने कभी उसके प्रेम में उत्साह नहीं भरा है? वही तुम्हारे प्रति अनुरागिणी है?"

जगतसिंह बोले, "जी हाँ महाराज! यह बात मैंने पहले भी कही है, अब भी कह रहा हूँ। विश्वास करना न करना महाराज की इच्छा है।"

मानसिंह ने दृढ़स्वर में पूछा, "वीरेन्द्रसिंह की कन्या तुम्हारी उपपत्नी है कि नहीं?"

जगतसिंह विचलित हो उठे, उनके सारे शरीर में मानो बिजली दौड़ गयी। स्थिर स्वर में उन्होंने कहा, "महाराज! आप भूपाल हैं, शासन-पालन के कर्ता हैं, प्रभु हैं और मेरे पिता हैं, इसलिए प्रत्यक्ष धर्मस्वरूप हैं। आपने जो प्रश्न किया है उसका समुचित उत्तर देने में मैं असमर्थ हूँ। लेकिन यदि कोई दूसरा गलती से या मजाक में भी यह प्रश्न करता तो अब तक मैं उसका सर्वनाश किये बिना न रहता। वीरेन्द्रसिंह की कन्या मेरी सहधर्मिणी है—पवित्र मंत्रानुष्ठान द्वारा गृहीत धर्मपत्नी है"।

मानसिंह ने भीषण उत्तेजित कंठ से कहा, "नराधम, राजपूत-कुल-कलंक घृण्य कीट! यह पापवचन मेरे सामने कहते हुए तेरी जीभ नहीं गिर गयी, क्षोभ और लज्जा से तेरा प्राण आन्दोलित नहीं हुआ? वीरेन्द्रसिंह की कन्या तेरी धर्मपत्नी है? जो वीरेन्द्र वारिवाहक के रूप में मेरे पवित्र अन्तःपुर में प्रवेश कर मेरी एक दासी का सर्वनाश कर चुका हो, जिस वीरेन्द्र ने मेरी धमकी से एक व्यभिचारिणी क्षुद्र नारी की विमला नाम की बेटी से शादी कर ली थी, वह पापात्मा तेरा ससुर है, और वही शूद्रकन्या विमला तेरी धर्मपत्नी की विमाता है। किसकी बात बताऊँ? तेरी यह धर्मपत्नी एक दोगली नारी के पेट से जन्मी है। और वह परम संन्यासी—जो शशिशेखर के रूप में गृहस्थजीवन में काफी अनर्थकर चुकने के उपरान्त अब अभिराम बन गया है, तेरी धर्मपत्नी

का मातामह है। वह प्रवास में पड़ोसी की पत्नी का गर्भ बनाकर भगोड़ा बन गया था, काशी में शास्त्रों का पाठ करने के उपरान्त भी वह सहायता करनेवाली शूद्रकन्या का सर्वनाश कर चुका है। वही महापुरुष अब परम ज्ञानी है। तेरे विवेक को धिक्कार है। तूने इन हीन और घृणित लोगों को कुटुम्ब मानकर एक तुच्छ जमींदार की कन्या से विवाह कर लिया। तू अगर उसे अपनी उपपत्नी के रूप में स्वीकार करता तो शायद तेरा अपराध मैं क्षमा कर सकता था। पिता की असम्मति से, पिता से आशीर्वाद या अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना ही जो पुत्र ऐसे निकृष्ट वंश के साथ सम्बन्ध जोड़ सकता है वह पिता का परित्यज्य है। आज से जगतसिंह मेरा पुत्र नहीं। तू यदि कहीं भी अपना परिचय मानसिंह के रूप में दे तो तुझे जीवन-दण्ड मिलेगा।

सभा में उपस्थित सभी लोगों ने मूक-भाव से डरते-डरते यह आज्ञा सुनी। महाराज कहने लगे, "इसके बाद अब तेरे राजकीय अपराध। तू बादशाह का एक विशेष कर्मचारी और भारप्राप्त सेनापति होते हुए भी बेझिझक चोर की नाईं रात को दुर्गस्वामी के अनजाने दूसरे के दुर्ग में दाखिल हुआ था।"

जगतसिंह निरुत्तर बना रहा—सिर झुकाये रहा। मानसिंह बोले, पाँच हजार सेना लेकर और पठानों को खदेड़ने की जिम्मेवारी लेकर, तूने अपने कार्य की उपेक्षा क्यों की और अपने सुख के प्रयास में नारी प्राप्त करने के फेर में पड़ा रहा।"

जगतसिंह खामोश। मानसिंह ने फिर पूछा, "पठानों के हाथ से मुक्त होने के बाद तूने अपनी सेना समेत मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा क्यों नहीं की?"

जगतसिंह के मुँह में कोई जवाब नहीं। मानसिंह ने फिर कहा, "पूरी सेना जब अपने सेनापतियों के साथ पड़ाव उखाड़ कर यात्रा कर रही थी, तू मेरी आज्ञा के अनुसार उस समय भी क्यों नहीं आकर मिला?"

जगतसिंह नीरव बना रहा। मानसिंह ने फिर कहा, "किसी प्रकार विदा लिये बिना और बादशाह के कार्य में लगा न रहकर तू स्वाधीन बना क्यों समय बिता रहा था?"

जगत अब भी मौन था। मानसिंह चिल्लाये, "बोल दुष्ट, ऐसे कर्त्तव्यज्ञान-शून्य व्यक्ति के लिए कौन सी सजा होनी चाहिए। प्राणदंड ही तेरी योग्य सजा है।"

वही मुगल सभासद फिर से खड़ा हो अत्यन्त विनय के साथ महाराज को सलाम करते हुये बोला, "अगर हुजूर अभय दें तो एक निवेदन करूँ।— युवराज आपका पुत्र—

मानसिंहने वज्र-गंभीर स्वर में कहा, "कौन कहता है कि यह अभागा कुत्ता मेरा पुत्र है? मेरा पुत्र होता तो कभी ऐसा राजद्रोही, प्रभु का अपमान करनेवाला और कर्तव्य से जी चुरानेवाला न होता। पुत्र का सम्बन्ध त्याग करने के लिए ही मैंने पहले पारिवारिक अपराध का न्याय किया है, उस न्याय के साथ-साथ उस अभागे के साथ पुत्रत्व के सम्बन्ध का अन्त हो गया है।"

मुगल बोला, "अच्छी बात, आप धर्म के रक्षक हैं, सोच कर देखिए, युवराज बिल्कुल तरुण वय का है।"

महाराज कुछ देर तक सिर झुकाये कुछ सोचते रहे, उसके उपरान्त बोले, "सुन दुष्ट, प्राणदंड के अलावा कोई उचित दंड तेरे लिए मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है। फिर भी तेरी कम उम्र के अनुरोध पर आज तेरे लिए आजीवन कारावास की व्यवस्था हुई। रक्षकगण, इस अभागे के कपड़े खोल लो, इसे मेरे सामने और इस सभा के समक्ष जंजीरों से बाँधो और उसके बाद इस नराधम को सबके सामने कारागार ले जाओ।

तत्क्षण आज्ञा का पालन हुआ। जगतसिंह ने घृणित कैदी की पोशाक पहन ली। लोहे की जंजीरों से उनके हाथ-पैर बाँधे गये। चारों ओर अस्पष्ट उसाँसें और हाहाकार फूट पड़े। सेनापतियों ने सिर झुका लिया। बूढ़ों की आँखें भर आयीं। रक्षकों के साथ कैदी चला गया। सभा समाप्त हुई।

——)o(——

(५)

सन्देशवाहक

दारुकेश्वर-तट जाने के लिए जिस सैनिक को आज्ञा मिली थी और मथुरासिंह की टोली छोड़कर जिसने अकेले गढ़मन्दारन की ओर घोड़ा बढ़ाया था, उससे थोड़ी दूर आगे जाते ही, उसे विकट वेशधारी गजपति विद्यादिग्गज दीख पड़ा। थोड़ी देर पहले ही घुड़सवार जगतसिंह से बातें कर उसे एक चाँदी का सिक्का मिल गया था। फिर एक घुड़सवार वीर देखकर उसे अनायास ही यह लगा कि आज उसका सुप्रभात है। इस व्यक्ति के साथ थोड़ी बहुत बातें करने पर शायद कुछ फायदा हो जाय। ये घुड़सवार की ओर मुड़ कर दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोले, "अल्ला महादेव हुजूर का भविष्य बनाये रखें।"

घुड़सवार सैनिक इस अजीब वेशधारी व्यक्ति के मुँहसे अजीब भाषा में विचित्र आशीर्वाद सुनकर विस्मित हुआ। वह इस व्यक्ति से बातें करने के लिए धीरे-धीरे घोड़ा चलाने लगा, दिग्गज बगल में चलने लगे। अश्वारोही ने पूछा, "आप कौन सी जाति के हैं?"

दिग्गज चिन्तित से हो गये। थोड़ी देर के बाद जवाब दिया, "स्वामीजी से बगैर पूछे इस सवाल का सही जवाब नहीं दे सकता हूँ।"

घुड़सवार ने पूछा, "यह कैसी बात है? जाति के बारे में दूसरे से बिना पूछे नहीं बता सकते?"

दिग्गज बोले, "मैं तो ठीक ही हूँ किन्तु मेरी जाति क्या है वह अभी तय नहीं हुई है।"

सैनिक ने सोचा, यह आदमी पागल है, इससे बातें करके वक्त मजे में काटा जा सकता है। उसने कहा, "बड़ी विचित्र बात है! कैसे क्या हो गया?"

दिग्गज बोले, "मैं ब्राह्मण था, इसके बाद, सुनता हूँ कि मैं मुसलमान बन गया था। इसके बाद हिन्दू बनने के लिए जो-जो करना पड़ता है सो

सब कुछ किया। अब जाति के बारे में मुझे क्या कहना होगा, जब तक स्वामीजी उसका निर्णय नहीं कर देंगे तब तक बता नहीं सकता हूँ।"

सैनिक को यह बात समझ में आ गयी, उसने पूछा, "यह स्वामी जी कौन हैं?"

"मेरे अध्यापक।"

सैनिक ने विस्मय से पूछा, "आपका अध्यापक? आपकी अवस्था तो कुछ कम नहीं देख रहा हूँ। क्या आप अभी तक विद्यार्थी हैं?"

दिग्गज बोले, "उम्र मेरी बहुत कम है। आसमानी ने कहा है कि मैं अब भी बालक हूँ। यह बात कभी झूठी नहीं हो सकती।"

सैनिक ने फिर पूछा, "आसमानी कौन है?"

दिग्गज ने आँखें बन्द कर कुछ देर तक सोचा। उसके बाद बोला, "मालूम नहीं वह कौन है?"

"आसमानी औरत है या मर्द?"

दिग्गज ने फिर थोड़ी देर चिन्ता करने के बाद कहा, "ठीक नहीं बता सकता। शायद औरत है।"

सैनिक की समझ में आया कि इस आदमी की अक्ल जरा मोटी हैं। ऐसा आदमी मिलने पर सभी को हँसी मजाक करने का जी करता है। उसने फिर पूछा, "आपने कैसे यह निश्चय किया कि आसमानी औरत है?"

दिग्गज बोले, "यह औरतों की तरह कपड़ा पहनती है, सिर पर जूड़ा बाँधती है, गहने भी पहनती है। ये सब लक्षण देख कर मैंने निश्चय किया है कि वह औरत है।"

सैनिक ने पूछा, "उसके मुह पर दाढ़ी मूँछ है या नहीं?"

"नहीं।"

"इससे भी समझ में आता है कि आसमानी औरत है।"

दिग्गज ने तनिक सोच कर कहा, "नहीं उससे सही-सही पता नहीं लगता है। बंगाल के अध्यापकों के दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। इन उड़ीसा देश के मर्दों की दाढ़ी-मूँछ तो होती ही नहीं, तिस पर सिर पर जूड़ा बाँधने लायक लम्बे-लम्बे बाल।"

"आपने अच्छी तरह से यह सोच कर देखा है कि आसमानी कहीं कोई अध्यापक तो नहीं है।"

दिग्गज ने कहा, "महाशय, आपने बात कोई बुरी नहीं कही। मेरे पहलेवाले अध्यापक के साथ आसमानी की शक्ल कुछ-कुछ मिलती-जुलती है। इसके अलावा आसमानी का आचरण कुछ-कुछ अध्यापकों सा है।"

सैनिक ने कौतूहल से पूछा, "सो कैसे ?"

"वह मुझे बराबर धमकाती रहती और प्यार भी खूब करती है। मैं क्या करूँ या न करूँ उसका आदेश वही देती है। मुझसे बहुत सा काम करा लेती है। मेरे साथ बहुत सी सुख-दुख की बातें भी करती है।"

"आपको पाठ-नहीं पढ़ा देती ?"

"नहीं। शायद यह मेरा ही कसूर है। मैं उसे देखते ही सब कुछ भूल जाता हूँ, पढ़ने-लिखने की बातें याद ही नहीं पड़तीं। पाठ पढ़ने का समय ही नहीं मिलता।"

सैनिक ने कहा, "मैं समझ गया हूँ कि आसमानी औरत है। आप इतनी देर मेरे साथ मजाक कर रहे थे। यह आसमानी आपकी प्रेमिका है।"

दिग्गज उछल पड़े। इतनी जोर से और इतने ऊँचे उछले कि उनके गले से रुद्राक्ष की माला निकल कर अलग जा गिरी। वे उसे न उठाकर सैनिक के पास गये और बोले, "क्या कहते हैं आप ? मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ, लेकिन क्या दूसरे लोग भी ऐसा ही सोचते हैं कि वह मेरी प्रेमिका है ?"

सैनिक ने जरा हँसकर जवाब दिया, "बेशक लोग ऐसा सोचते होंगे। वर्ना मैं दो बातें सुनते ही कैसे समझ लेता कि वह आपकी प्रणयिनी है ?"

दिग्गज व्यस्त सा हो माला उठा लाया और सैनिक के निकट जा उसने पूछा, "आप क्या दैवज्ञ हैं ? आप यह बात ठीक-ठीक बता रहे हैं न ? अब मैं दुर्ग में जाकर बेझिझक उसे प्रेमिका कहकर सम्बोधित कर सकता हूँ न ?"

सैनिक बोला, "मैं ठीक बता रहा हूँ कि वह आपकी प्रेमिका है। आप बड़े मजे में प्रियतमा कहकर उसे दुलारें। मैंने बहुत दिनों तक गुरू के पास सामुद्रिक शास्त्र का अध्ययन किया है। आपका चेहरा देखते ही मैं समझ

गया कि आपकी एक मनोमोहिनी है। उसके नाम का प्रथम अक्षर 'आ' और अन्तिम अक्षर अभी तक ठीक नहीं कर पा रहा था, लेकिन आपके निकट आने पर अब स्पष्ट देख रहा हूँ कि आपकी प्रेमिका के नाम का अन्तिम अक्षर 'नी' है।

दिग्गज ने बड़े आनन्द से कहा, "इतने दिनों में भगवान ने मेरी ओर मुँह उठाकर देखा है। आपके समान दैवज्ञ के मुँह से सुनकर मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि निःसन्देह आसमानी मेरी प्रेमिका है। अच्छा, आप तनिक मेरे माथे की ओर भलीभाँति देखिए जहाँ मेरी प्रेमिका के नाम के अक्षर लिखे हैं, उसके इर्द-गिर्द कोई दूसरे अक्षर हैं या नहीं—तनिक अच्छी तरह से देखिए।"

गजपति ने अपना माथा अच्छी तरह से पोंछ डाला। सैनिक बोला, "हैं,लेकिन 'आ' और 'नी' जितना साफ है वैसा और कुछ नहीं है, वे सब यूँ ही हैं।

गजपति बोला, "आपने मेरा बड़ा उपकार किया। आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"अभी तो फिलहाल मैं गढ़मन्दारन जाऊँगा। उसके बाद दूसरी ओर जाना है।"

"गढ़ मन्दारन में तो आप आ गये हैं। इस बाग के दूसरी ओर ही गढ़ है। वहाँ किससे काम है ?"

सैनिक बोला, "काम कुछ खास नहीं। बस किले में एक खबर पहुँचाना है।"

गजपति बोला, "तो आइए मेरे साथ। मैं पहले दुर्ग ही जाऊँगा। वहीं मेरी आसमानी रहती है। उससे मुलाकात किये बगैर कहीं नहीं जाऊँगा।"

सैनिक बोला, "दुर्ग में क्या सभी के साथ आपका परिचय है ?"

गजपति ने सगर्व कहा "विशेष प्रकार से। दुर्ग के जो इस समय मालिक हैं वे मेरे अध्यापक अभिराम स्वामी हैं, दुर्ग में जो सर्वमयी हैं वह मेरा घृत-भंडार हैं, और दुर्ग में जिसकी कोई तुलना नहीं वही मेरी शुरू में 'आ' और अन्त में 'नी' है।"

सैनिक ने कहा, "अगर ऐसी बात है तो आप मेरा एक मामूली सन्देश दुर्ग में पहुँचा दें, बड़ी कृपा होगी। आपकी शुरू में 'आ' और अन्त में 'नी' के मार्फत समाचार भेजने से भी काम बन जायगा।

गजपति बोला, "बड़े मजे में। आपके लिए मैं प्राण दे सकता हूँ। आपने जब इतना बता दिया है कि आसमानी मेरी प्रेमिका है तभी से मेरी हिम्मत और भरोसे में इतनी वृद्धि हो गयी है कि क्या बताऊँ ? मैं अभी जाकर सन्देशा दूँगा। बात क्या है वह आप बताइए।"

सैनिक बोला, "आप कृपया बता दीजिएगा कि कुवँर जगतसिंह बन्दी हो गये हैं।"

गजपति काँप उठे, बोले, "क्यों बन्दी हुए ? किसने बन्दी किया ?"

सैनिक बोला, "क्यों बन्दी हुए यह हम नहीं जानते हैं। महाराज मानसिंह के आदेश से ही हम लोगों ने उन्हें बन्दी बनाया है"।

दिग्गज ने तनिक सोचा। सोचा, युवराज जब बन्दी हो गये हैं, तब बाकी सब लोग भी बन्दी नहीं होंगे यह कौन बता सकता है ? वीरेन्द्रसिंह जब बन्दी बने थे तो दुर्ग के सभी लोग बन्दी बन गये थे। व्यर्थ ही गंगास्नान, गंगातट पर निवास और तीर्थदर्शन कर आया, शायद फिर मुसलमान बनना पड़े। जिन लोगों ने युवराज को बन्दी बनाया है यह भी उन्हीं में से एक है। यह पहले आ गया है, बाकी बाद में आ रहे हैं। इस समय इसका साथ छोड़कर भागना ही कल्याणकर है। मुँह से उसने कहा, "आपका समाचार मैं दुर्ग में पहुँचा दूँगा। आप अब जहाँ जा रहे हैं जा सकते हैं।"

दिग्गज धीरे-धीरे खिसकने लगा। सैनिक ने उसे रोक रखने के लिए कोई उत्साह न दिखाया। कुछ देर खिसकने के बाद दिग्गज दौड़ने लगे। रह-रह कर पीछे देखते, फिर दौड़ने लगते। भागने में वे बड़े निपुण थे। एक दिन विमला के साथ रात में आते वक्त भूत के डर से भी गजपति इसी तरह सिर पर पैर रख कर भागे थे।

सैनिक ने इस पर गौर न किया। जिसका जब पलड़ा हल्का पड़ता है, तब सभी लोग उसकी उपेक्षा करते हैं। जगतसिंह बन्दी हैं, इसलिए उसकी आज्ञा पालन न करने पर कोई डर का कारण नहीं, यह वह सैनिक समझता था। इसलिए उनका सन्देश पहुँचाने दुर्ग तक जाकर वक्त बर्बाद करने की जरूरत उसने महसूस नहीं की। और इस दशा में युवराज का समाचार गढ़

मन्दारन में देना उचित है या नहीं यह भी उसकी समझ में न आया। शायद यह समाचार पहुँचाने की वजह से वह महाराज के न्याय में अपराधी और दंड का अधिकारी बन जाय। आगा-पीछा सोचने के पश्चात् उसने खास तकलीफ उठाकर सन्देश पहुँचाने की आवश्यकता न समझी गजपति विद्यादिग्गज को सन्देशवाहक बनाकर और दुर्ग में सब लोगों से बताने को कहकर वह अपने धर्मसंकट से मुक्त हो गया।

गढ़ की सीमा का पथ चारों ओर फैल गया था। एक रास्ता गढ़ के भीतर गया है और दूसरा शैलेश्वर मन्दिर की ओर, तीसरा बर्दवान की ओर तो चौथा पुरीधाम की ओर गया है। सैनिक गढ़ के भीतर जिस रास्ते गया था उससे न लौटकर पुरीधाम वाले रास्ते की ओर चला। उसका घोड़ा कोड़ा खाकर सरपट भागने लगा।

——)*(——

(६)

प्रेम-मदिरा

गजपति विद्यादिग्गज बेतहाशा दौड़ते-दौड़ते दुर्ग में आ पहुँचा और किसी ओर न जाकर सीधे आसमानी से मिलने के उद्देश्य से जनानी-ड्योढ़ी के फाटक पर आकर दम लिया। जानानी ड्योढ़ी में प्रवेश करने का साहस या अधिकार होता तो शायद वह वहाँ भी घुस जाता। वैसे अजीब भेष में और अत्यन्त व्यस्तरूप में सहसा उसे उस स्थान पर आते देखकर द्वाररक्षक ने बुरा माना और उसे वहाँ से चले जाने के लिए कहा।

दिग्गज बोला, "भाई, खफा क्यों हो रहे हो? मेरे पास एक बड़ा ही गुप्त समाचार है। वह अभी बता देना जरूरी है।"

द्वारपाल ने कहा, "जरूरी खबर है तो तुम मुझे बताते क्यों नहीं?"

"तुम्हें बतलाने वाली बात नहीं है वह। एक ही व्यक्ति के कानों में वह बात कही जा सकती है। तुम्हारे दाढ़ी-मूँछ है, काँछ लगाकर धोती पहनते हो, जूड़ा नहीं है। तुम क्या मेरे अध्यापक हो जो मैं तुम्हें सन्देश दूँ?"

"नहीं तो क्या तुम अन्दर जाकर मालकिन के कान में कहोगे ? तुम यहाँ से अब खिसको ।"

गज०—मुझे तुमने पहचाना नहीं ? मैं यहीं का आदमी हूँ यह तुम बिल्कुल भूल गये ?

द्वार०—तुम कभी यहाँ के आदमी नहीं रहे । यहाँ कौन है जिसे मैं नहीं पहचानता ? और, यहाँ का कोई आदमी होता तो कभी अन्तःपुर के फाटक के पास आकर शोरगुल मचाने की हिम्मत न करता । तुम अवश्य ही किष्किन्धा से आए हो ।

गज०—तब तो तुम मुझे जरूर नहीं जानते हो । गढ़-मन्दारन में मुझे न पहचानने वाला भी व्यक्ति है यह बड़े आश्चर्य की बात है । तुम अभिराम स्वामी को नहीं जानते ?

द्वार०—उन्हें क्यों न जानूँ । तुम पागल तो नहीं हो । उनसे तुम्हारा क्या रिश्ता ?

गज०— वे मेरे अध्यापक हैं । मैं उनका प्रधान विद्यार्थी हूँ ।—

द्वारपाल ने कुछ सोच कर पूछा, "तो तुम्हारी पोशाक इस तरह की क्यों है ?"

गज०— वह बहुत सी बातें हैं भाई । किसी और दिन तुम्हें बताऊँगा । इस ड्योढ़ी के भीतर मेरी आसमानी है । उसी तक जरूरी खबर पहुँचाना है ।

द्वार०— आसमानी है तो जरूर, लेकिन वह तुम्हारी कौन होती है ?

गज०— इस सिलसिले में भी ढेर सारी बातें हैं जिन्हें अभी बताने का समय नहीं । या तो तुम उसे बुला दो, नहीं तो मुझे उसके पास जाने दो और नहीं तो यहीं से मुझे चिल्लाकर उसे पुकारने दो ।

द्वार०— ठहरो, मैं किसी आदमी के मार्फत आसमानी के पास खबर भेजने की कोशिश कर रहा हूँ ।

दिग्गज बोला, "मैं ठहर नहीं सकता हूँ, जो कुछ करना है झटपट करो । मेरा सन्देश बहुत जरूरी है । देर करने में मुसीबत आ जायगी ।"

द्वारपाल ने मन ही मन सोचा, यह गढ़मन्दारन का आदमी जरूर है । इसे यों ही भगा देना ठीक नहीं । वह बोला, "जरा ठहरो, मैं कोशिश कर रहा हूँ ।"

द्वारपाल के साथ गजपति का यह सब बहस-मुबाहसा चल ही रहा था कि अन्तःपुर की एक छुपी हुई खिड़की के बगल में पर्दे की आड़ से एक अधेड़ उम्र की विधवा खड़ी-खड़ी इस नवागत का हाथ-मुँह हिलाना साफ-साफ देख रही थी हाल कि उसे कोई भी न देख रहा था।

वह विधवा विमला है। विमला के शरीर की वह चमक और कोमलता अब नहीं रही, चम्पई रंग की मनोहारिता अब उनमें न थीं, होठों पर पान की लाली नहीं, आँखों में काजल नहीं, उनमें मदन के तीर के समान चितवन नहीं, केश में वह घना कालापन नहीं और न उसकी वह वेणी ही। शरीर पर भी कहीं आभूषण न थे, सोने के डोरे से बने वस्त्र उनके शरीर पर न थे, वक्ष पर मोतियों से गुथी अँगिया भी न थी। विमला की पहली सी शोभा और समृद्धि कुछ भी नहीं। उम्र से न भी हो ऊपर से देखने में विमला बूढ़ी हो गयी थीं। उनका जो अलौकिक लावण्य और शोभामय यौवन लोगों को कालविजयी सा लगता था, वह अब ध्वस्त, शुष्क और मलिन हो गया था। उनके हाथ-पैर दुबले हो गये थे, शरीर कातर और अवसादपूर्ण, गति कम्पित और विचलित, हावभाव संयत और सावधान। विलासमयी विमला अब शुभ्र वस्त्रधारिणी थी। हास्य और कौतुकमयी विमला के होंठ अब धूप से तपे फूल की कली के समान मुरझाये से हो गये थे। हास्य और आनन्द उस प्रिय निवास से हमेशा के लिए विदा ले चुके थे, हँसी-मजाक, व्यंग-विद्रूप भी हमेशा के लिए उससे अलग हो चुके थे। हाय रे शोक! इस संसार में निरन्तर तुम कैसे अजब-अजब रूप धारण करते रहते हो।

विमला द्वार के पास आये उस व्यक्ति को पहले ही अपने रसिकराज के रूप में पहचान गई थी। विमला की समझ में कुछ देर तक यह नहीं आया कि जिसके साथ भागकर विदेश जाकर पति-पत्नी के रूप में रहने का उन्होंने विचार किया था, जिस रसिकश्रेष्ठ ने उसे 'घृतभांड' नाम देकर अपनी रसज्ञता का सुन्दर परिचय दिया था और जिस भुवनमोहन पुरुष के साथ प्रेम में प्रतिद्वन्द्विता के कारण आसमानी से आये दिन कलह-कलाप लगा रहता था, यह सामने ऊट-पटांग वेश में खड़ा व्यक्ति वही नटवर गजपति विद्यादिग्गज है। विमला ने एक लम्बी साँस ली। लगा कि निर्दोष आनन्द के दिन फिर सेवापस न आयेंगे।

इसी बीच एक साँवली, ज़रा दोहरे बदन की प्रौढ़-अवस्था की कामिनी विमला के पीछे आकर खड़ी हो गयी। वही आसमानी थी।

आसमानी बोली, "मथुरा की बाट जोह-जोह कर क्यों अपनी आँखें फोड़ रही हो, गुइँया ? वह नटखट नटवर गजपति फिर न लौटेगा।"

विमला बोली, "इस प्रेम के बन्धन को तोड़ कर अलग किये रहना क्या कुब्जा का काम है ? मेरा श्यामसुन्दर मदनमोहन फिर आ गया है।"

आसमानी, "सच ! हाय ऐसा दिन कब आयेगा ?"

विमला बोली, "आकर देखो न।"

आसमानी को खींचकर विमला अपने स्थान पर ले आयी और खुद तनिक खिसककर खड़ी हो गयी। उसके बाद बोली, "वह देखो, है न वही मनचोर नागर ? आसमानी ने जरा देखकर हँसते-हँसते कहा, "हाय अम्मा ! यह तो वह भोंदू बाँभन ही है। इतने दिनों के बाद यह कहाँ से आ टपका ? हाय अम्मा, उसने कैसी पोशाक पहन रखी है ?''

विमला ने हँसते-हँसते आसमानी की ठोढ़ी पकड़कर कहा, "ऐ विरह से दुखी राधे, सभी बातें क्या भूल गयी हो ? गोपिकाओं के प्राणप्रिय अब मथुरा के राजा हैं। यह राजवेश है।"

आसमानी बोली, "हटो भी, पहले यह बताओ कि यह मुआ इतने दिनों बाद कहाँ से आ टपका ?"

विमला बोली, "यही तो मैं भी सोच रही हूँ। तुम किसी ढंग से पता ता लगाओ कि गजपति क्यों आया है और दरवान के साथ हंगामा क्यों मचा रखा है।"

आसमानी चली गयी और नीचे की मंजिल से लछमिनिया नाम की नौकरानी को बुला लायी।

उसके बाद उसे साथ लेकर फाटक के पास के एक खाली कमरे में दाखिल हो गयी। कमरा अँधेरा था, वहाँ बैठने की कोई जगह न थी। आसमानी ने वहीं खड़े हो लछमिनिया से कहा, "दरवाजे पर जो घुटा सिर वाला एक आदमी खड़े-खड़े बातें कर रहा है पता लगा आओ कि वह चाहता क्या है।"

लछमिनिया ने कहा, "तुम खुद क्यों नहीं जातीं ?"

आसमानी बोली, "मेरा नागर जो ठहरा वह; मैं इस समय रूठी हुई हूँ, सो जाऊँ कैसे ?"

लछमिनिया बहुत दिनों से दुर्ग में है। वह आसमानी की बहुत सी बातें सुनती रही है। हँसी-मजाक और विनोदशास्त्र में भी वह बिल्कुल अनाड़ी भी नहीं। सोचा, यह भी खूब मजाक है। मुँह से बोली, "मरी कहीं की, अगर तेरा नागर मैं छीन लूँ तो ?"

आसमानी बोली, "क्या मजाल ! तू तो तू है, खुद मालकिन आकर मेरा कुछ न बिगाड़ सकीं। दया कर मैंने उन्हें एक दिन चन्द्रावली बनने दिया था। मानिनी राधिका मैं ही हूँ और मैं ही रहूँगी।"

लछमिनिया की उम्र कुछ ज्यादा नहीं; शायद आसमानी से दो-एक साल कम हो। उसके शरीर का रंग आसमानी से उजला है, इसलिए वह एकबार अपनी देह की ओर देखकर आसानी से ही आसमानी का सर्वनाश कर सकती है ऐसा सोच कर बोली, "इतना गरूर भी कुछ अच्छा नहीं, आखिर रोकर धरती ही गीली करनी पड़ेगी। मुझे क्या, लो मैं चली जाती हूँ।"

लछमिनिया जब दरवाजे के पास आयी तब गजपति गिड़गिड़ाकर दरवान से कह रहा था, "भाई क्यों तुम मुझे तकलीफ दे रहे हो ? अगर तुम मुझे आसमानी से नहीं मिलने दोगे तो मैं यहीं पर गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगा। इससे तुमपर गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्री-हत्या, भ्रूणहत्या सभी कुछ का पाप लगेगा।"

द्वारपाल ने पूछा, "इतने पाप क्यों लगेंगे ?"

दिग्गज ने कहा, "देखो बचपन से ही मेरे अध्यापक मुझे बैल कहते आये हैं इसलिए गोहत्या, समझे ? मैं ब्राह्मणकुल का दीपक हूँ इसलिए ब्रह्महत्या होगी यह तो आसानी से ही समझ रहे होगे। और मुझे डर बहुत सताता है इसलिए मेरा एक सहपाठी कहता है कि मैं स्त्री हूँ, मुझमें कोई साहस नहीं; और मैं अनायास ही रो पड़ता हूँ इसलिए भी लोग कहते हैं कि मैं स्त्री हूँ; अतः स्त्रीहत्या, समझे ? एकबार मछली खरीदने बाजार गया

था, एक मछलीवाली सामने पटिया पर मछली काट कर ढेरी लगाये बैठी थी। पटिया पर दस-बारह ढेरियाँ लगी थीं। मैं एक पैसा फेंककर सभी ढेरियाँ अपने अंगौछे में डालने लगा तो वह बोली, 'क्या करते हो महाराज ?' मैं बोला, 'क्यों मछली ले रहा हूँ।' उसने कहा, 'एक पैसा दिया है, एक ढेरी लो, ज्यादा क्यों ले रहे हो ?' मैंने कहा, 'क्यों, एक पैसे में सब ढेरियाँ नहीं ?' मछलीवाली ने मेरे बदन पर पानी का छींटा मारा, मछली छीन ली और कहा, 'हाय, कुछ जानता ही नहीं, मा के पेट में है।', इसलिए भ्रूणहत्या हुई, समझे ?''

ऐसे ही समय लछमिनिया उस जगह पहुँच कर बोल पड़ी, ''क्यों जी रसराज, पहचान पाते हो ?''

दिग्गज सिर खजलाने लगा, इधर-उधर देखने लगा। उसे याद नहीं पड़ा कि इस सुन्दरी से कभी उसकी जान-पहचान भी थी या नहीं। लेकिन एक औरत ने उसे रसराज कहकर पुकारा और वह उसे पहचान भी न सका यह बड़ा ही अरसिक सा आचरण होगा। बोला, लगता है कि तुम्हें पहचानता हूँ पर पहचान नहीं पा रहा हूँ। सुन्दरी, भला तुम कौन हो ?

तब लछमिनिया ने मुँह लटकाकर कहा, ''अच्छा, यह बात याद रहेगी। मैं जानती हूँ कि बेवफा मर्दों पर बगैर समझे बूझे दिल दे देने पर आखिर में रोना पड़ता है। मेरा दिल-दिमाग चुरा कर अब ऐसी बातें कर रहे हो ?''

बहुत सोचने के बाद भी दिग्गज को मन प्राण चुराने की बात याद न पड़ी;—बोला, ''मैंने जिन्दगी में कभी पत्थर का बना, टूटा हुआ आबखोरा तक नहीं चुराया ! मैं चोर नहीं हूँ यह बात गढ़ मन्दारन के सभी लोग जानते हैं। तुम जबर्दस्ती मुझे चोर कहो तो मैं क्यों मानूँ ? तुम जरा तलाश करके देखो, तुम्हारा दिल-दिमाग कहीं दूसरी जगह पड़ा होगा—मैंने उसे कभी नहीं लिया।''

लछमिनिया ठंडी साँस भरती हुई बोली, ''अन्त में सभी लोग ऐसी ही बातें करते हैं; अच्छी बात है, तो मैं अब चली।''

दिग्गज बोला, ''जाना मत सुन्दरी, जाना नहीं। मैं तुम्हें बेशक पहचानता हूँ। तुम पहचनवा दो तो मैं पहचान लूँगा। यदि मुझे चोर

कहने पर तुम्हें सन्तोष हो तो मैं चोर ही हूँ। अब तुम मेहरबानी करके मेरा कुछ भला कर दो।

लछमिनिया—बताओ, क्या करना है ?

दिग्गज ने हाथ जोड़कर कहा, "आसमानी से एक जरूरी बात कहनी है। तुम दया करके उसका उपाय कर दो। लछमिनिया बोली, "मुझे क्या गर्ज पड़ी है। तुम आसमानी से ही प्यार करते हो, हम लोगों को भूल बिसर गये हो, पहचान भी न सके। अब मैं उस आसमानी को तुम्हारे पास बुला दूँ ? हाय रे मेरी फूटी किस्मत !"

लछमिनिया चली जा रही है यह देखकर गजपति ने कातर ढंग से उसके वस्त्र का सिरा पकड़ लिया और कहा, "दुहाई तुम्हारी, खफा न हो, मेरे गले पर पैर रख कर मुझे मार मत डालो, एकबार मिहरबानी कर आसमानी को बुला दो। मैं तुम्हारा ही दास हूँ। हमेशा तुम्हारा जरखरीद दास बनकर रहूँगा।"

लछमिनिया बोली, "तुम्हें क्या अपनी ये बातें याद रहेंगी ? हमेशा मेरे गुलाम बनकर रहोगे, जो बताऊँगी, सो करोगे, कभी हुक्मअदूली नहीं करोगे, इतना कसम खाओ तो मैं आसमानी को बुलाये देती हूँ।"

तब दिग्गज बोले, "मैं अपनी चुटिया छूकर, रुद्राक्ष की माला छूकर, कहो तो, तुम्हारे उन लाल-लाल पैरों को छूकर कसम खाता हूँ कि मैं तुम्हारा आज्ञाकारी दास या वफादार गुलाम हूँ और इन बातों में कभी कोई फर्क नहीं आयेगा।"

तब लछमिनिया ने हँसकर कहा, "तो आओ।"

लछमिनिया के साथ दिग्गज फाटक में से अन्दर दाखिल हुआ। दरवान ने अब की बार कोई एतराज नहीं किया। उस अँधेरे कमरे के पास आकर लछमिनिया ने इशारे से दिखा दिया, इस कमरे में आसमानी है।

गजपति ने कमरे के भीतर सिर डाल कर कहा, "अरे! यह तो बड़ा अँधेरा कमरा है।"

लछमिनिया ने कहा, "भीतर जाओ, तुम्हारे घुसते ही कमरे में उजाला फैल जायगा।"

दिग्गज ने अन्दर घुसते ही आसमानी को देखा। खुशी से वह उछल पड़ा। हँसी से उसका मुख एक कान से दूसरे कान तक फैल गया। आसमानी बोली, "क्यों रे भूत, इतने दिन कहाँ था?"

आसमानी को देखते ही गजपति का कवित्व और पांडित्य उफनने लगता। इतने दिनों के बाद प्रेमिका को देखकर एक श्लोक के द्वारा उसका सम्भाषण करना उचित है ऐसा विचार कर वह बोल पड़ा, "या देवी सर्व-भूतेषु नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।"

ब्राह्मण ने आसमानी को प्रणाम किया। आसमानी ने कहा, "हाय रे तकदीर! मुझे क्या प्रणाम करना चाहिए?"

रसिकराज ने कहा, "चाहिए क्यों नहीं? जब पैरों पर सिर रगड़ना पड़ता है तो प्रणाम कौन सी बड़ी बात है?"

आसमानी बोली, "तुम्हें इतना रसिक किसने बना दिया! इतने दिन रहे कहाँ?"

दिग्गज ने कहा, "ये बातें बाद में होंगी। अब तुम मेरे साथ आओ यहाँ बहुत सी विपदाएँ हैं।"

आसमानी बोली, "कैसी विपदा? तुम मुझे साथ लेकर कहाँ जाओगे?"

दिग्गज बोला, "मेरी जहाँ खुशी होगी वहीं तुम्हें ले जाऊँगा। बताओ, तुम मेरी प्रेमिका हो कि नहीं?"

आसमानी बोली, "वह बात क्या बार-बार मुँह से कहनी पड़ती है? मैं तुम्हारी कौन हूँ यह सभी लोग जानते हैं।"

गजपति बोला, "ठीक ही कहा है। यह बात सभी लोग जानते हैं। एक देश-विख्यात पंडित ज्योतिषी के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। वे भी यह बात जानते हैं। तब तुम मेरे साथ क्यों नहीं चलोगी?"

आसमानी बोली, "कौन कह रहा है कि मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी मैं तुमसे जितना प्यार करती हूँ तुम कभी मुझसे उतना प्यार नहीं कर सकते।"

गजपति बोला, "किसने तुमसे यह बात कही? जिसने यह कहा हो वह झूठा है, हमलोगों में मनमुटाव पैदा करने के लिए उसने बेशक ये झूठी

बातें फैलायी हैं। मैं तुमसे प्यार करता हूँ उसका प्रमाण मेरे शरीर पर ही लिखा है। ज्योतिषी जी ने मेरा माथा देखकर कहा कि उसपर तुम्हारे नाम का पहला अक्षर 'आ' और अन्तिम अक्षर'नी' लिखा है। ऐसा प्यार क्या किसी ने कभी कहीं देखा है?"

आसमानी बोली, "यह सब झूठ है। तुम अगर मुझसे तनिक भी प्यार करते तो इतने दिन मुझे छोड़कर कभी परदेस न रहते।"

गजपति बोला, "आसमानी प्राणेश्वरी, मेरे माथे पर तुम्हारा नाम लिखा है। इस पर अगर विश्वास न हो, तो तुम आँखें खोलकर देख लो।"

दिग्गज ने काफी झुक कर आसमानी की आँखों के सामने अपना माथा रखा, पूछा—"देख रही हो?"

आसमानी ने कहा, "देख तो रही हूँ लेकिन जो अक्षर तुम बता रहे हो वह तो मुझे नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। मैं देख रही हूँ कि तुम्हारे माथे पर साफ-साफ अक्षरों में लिखा है 'गधा'।"

गजपति बोला, "ऐसा भी हो सकता है क्योंकि मैं तुम्हारा गधा ही तो हूँ। तुम मुझे चराती हो, घुमाती हो, बोझ ढुलाती हो, मुझसे जो तुम्हारे जी में आता है वही कराती हो। अब देरी में कोई फायदा नहीं। झटपट मेरे साथ चली चलो। यहाँ भयानक विपदा है!"

"कैसी विपदा?"

"वीरेन्द्रसिंह वाला मामला फिर आ धमका है।"

"सो कैसा?"

"युवराज कैद हो गये हैं।"

आसमानी चौंक पड़ी; डरते हुए पूछा, "किसने कहा?"

दिग्गज बोला, "जिन लोगों ने कैद किया है उन्हीं लोगों ने।"

"किन लोगों ने कैद किया है?"

"महाराज मानसिंह के आदमियों ने।"

"कहाँ कैद किया है?"

"रास्ते में।"

आसमानी चिन्तित हो उठी। यह उसने अनुमान कर लिया कि यह

बात असम्भव नहीं। फिर भी उसने पूछा, "तुम सच तो कह रहे हो न?"

दिग्गज ने सीने पर हाथ रख कर कहा, "तुमसे झूठ कहने पर मुझे नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी। मैंने यह बात अच्छी तरह से जान ली है। अब तुम सोच क्या रही हो? जब युवराज बन्दी हो गये हैं तब उस बार की तरह इस बार भी दुर्ग के सभी लोग बन्दी बना लिये जायँगे। मुझे तुम्हारे लिए ही फिक्र है। आओ, यही मौका है कि हम दोनो भाग निकलें।"

आसमानी का मन उस समय बड़ा चंचल हो उठा था। विमला को यह खबर पहुँचाने के लिए वह बहुत ही व्याकुल हो उठी। गजपति को उस समय विदा करना जरूरी था। बोली, "अच्छी बात। भाग जाना ही उम्दा सलाह है। तुम अभी जाओ, बिस्तर-बन्द ठीक-ठाक कर शाम के वक्त हम भाग चलेंगे।"

दिग्गज बोला, "प्राणेश्वरी, इतनी देरी करने की हिम्मत मुझे नहीं पड़ रही है। अगर इसी बीच मुसीबत आ धमकी तो?"

आसमानी बोली, "उसका उपाय मैं कर लूँगी, तुम अब जाओ। अपने आश्रम में रहना। मैंने सुना है कि दिन के डेढ़ बजे महाराज के लोग इस दुर्ग को घेर लेंगे।

दिग्गज काँपते-काँपते दरवाजे के पास आकर बोला, "तो क्या कहती हो? तो—खैर तुम जो हो सकता है सो करना, मैं अब जाता हूँ।"

आसमानी बोली, "तुम भागो, मैं ऐन वक्त पर तुम्हारे पास जा पहुँचूँगी।"

गजपति एक छलाँग में कमरे से बाहर हो गया। वहाँ लछमिनिया खड़ी थी। वह बोली, "क्यों प्यारे, मुझे कहाँ छोड़े जाते हो?"

उसने गजपति के अचकन का किनारा पकड़ लिया। दिग्गज बोला, "छोड़े नहीं जा रहा हूँ, अभी आऊँगा। अब तुम छोड़ो, छोड़ो भी—"

अचकन का एक टुकड़ा लछमिनिया के हाथों में रह गया। गजपति भाग चला।

——:o:——

(७)

नासमझी

गजपति विद्यादिग्गज की लायी हुई खबर फौरन हो किले के कोने-कोने में फैल गयी। जगतसिंह की इस विपदा का सन्देश पा कुटुम्बियों के मन में उत्कंठा छा गयी। दिग्गज को निकट बुलाकर अभिराम स्वामी ने विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे, लेकिन वह ज्यादा कुछ न कह सका। अन्त में सही बात का पता लगा लाने के लिए एक विश्वासी सैनिक को पटना के लिए रवाना कर दिया। इसी बीच दूसरे लोग भी अपना-अपना कर्त्तव्य निश्चय करने में लग गये।

शाम के बाद अभिराम स्वामी की कुटिया में दो औरतें पहुँचीं। सभी के मुँह पर विषाद और चिन्ता की कालिमा छायी हुई थी। सभी लाग नीरव थे।

पहले विमला बोलीं, "अब क्या उपाय है ?"

अभिराम स्वामी बहुत देर तक सिर झुकाये सोचते रहे, उसके बाद बोल पड़े, "तुम्हें याद है विमला, शैलेश्वर मन्दिर में युवराज से तुमलोगों की पहली भेंट होने के बाद जब तुम मेरे साथ सलाह-मशविरा करने आयी थीं ? उस दिन की सारी बातें क्या तुम्हें याद हैं ? ज्यादा दिन की बात नहीं, इसी कुटिया में यहाँ पर खड़े होकर तुमने मेरे साथ परामर्श किया था।"

विमला बोली, "याद है। उस दिन की सारी बातें ही याद पड़ रही हैं।"

मैंने उस समय कहा था, "इस विवाह-में मानसिंह राजी क्यों होंगे ? तुमने उसके जवाब में कहा था, 'युवराज स्वाधीन हैं।' यह बात तुम्हें याद है ?"

विमला ने सिर झुकाकर कहा, "जी।"

अभिराम स्वामी बोले, "इसी स्वाधीनता का यह नतीजा है। युवराज कभी स्वाधीन नहीं। उनके पिता को धन-सम्मान, पद, प्रतिष्ठा, शक्ति और धाक में अद्वितीय व्यक्ति कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। पिता

के खिलाफ स्वाधीन ढंग से काम करने का जगतसिंह को कोई अधिकार नहीं है। उसके बाद मानसिंह के साथ प्रभु-भृत्य का सम्बन्ध है। इसलिए वे स्वाधीन नहीं हैं। फिर सुनो, वे सम्राट् के काम में नियुक्त हैं। उस कार्य में रहते हुए उन्हें किसी भी विषय में स्वाधीनता नहीं मिल सकती।

विमला बोली, "यह बात अब समझ में आ रही है। लेकिन उस समय यह बात समझ भी लेती तो क्या हो सकता था। वह प्रेम-प्रवाह रोकना हमारे बस में नहीं था।"

अभिराम स्वामी ने जरा घृणा की हँसी हँसते हुए कहा, "विमला तुम बालिका भी नहीं हो और ऐसे मामले में अनभिज्ञ भी नहीं हो, वक्त रहते तुम्हें सावधान होना चाहिए था। मैंने समझा दिया था कि इस वासना को अँकुवा निकलने से पहले ही विनष्ट कर देना होगा। लेकिन तुमने मेरी बातों की बिलकुल परवाह न की। अब इसका नतीजा कुछ भयानक सा हो रहा है। मालूम नहीं, आगे कहाँ तक क्या होगा?"

विमला बोली, "आप तिलोत्तमा को अच्छी तरह नहीं जानते। मैं निरन्तर उसके साथ रहती हूँ। मैंने तभी अच्छी तरह से समझ लिया था कि ऐसा मिलन न होने पर तिलोत्तमा चिरदुःखिनी बन जायगी।"

अभिराम स्वामी बोले, "यह बात उस समय भी मेरी समझ में नहीं आयी थी, अब भी नहीं आ रही है और बाद में भी समझ में आयेगी इसकी संभावना भी नहीं देख रहा हूँ। प्रथम दर्शन पर—दैव से रास्ते में सहसा एकबार मात्र दर्शन से जो प्रेम उपजेगा वह कभी प्रगाढ़ नहीं हो सकता। वह केवल लालसा-जन्य क्षणिक मोहमात्र है। उसका जोश भी बड़ा प्रबल होता है और वह मनुष्य को भले-बुरे के ज्ञान से बेसुध कर देता है। लेकिन यदि उस समय कोई योग्य व्यक्ति पतवार सँभालनेवाला मिल जाय तो सभी विपदा और भय दूर हो जाते हैं। असंगत और असम्भव प्रवृत्ति के स्रोत का रास्ता साथ ही साथ रोक न देने पर वह बढ़ कर दोनो तटों को बहाकर भी ले जाता है। तुम इन सब मामलों में अनुभवी हो, इसलिए तुम्हारे ऊपर इसका भार छोड़कर मैं निश्चिन्त था।"

विमला ने सिर झुकाकर जवाब दिया, "मैंने भरसक अच्छा ही प्रबन्ध

किया है। जिससे सब कुछ सुखमय तथा आनन्दमय हो उसी की व्यवस्था की है।"

अभिराम स्वामी बोले, "हमारे इस घोर विपद और संकट के समय अप्रिय अतीत प्रसंग की चर्चा न करना ही उचित है। फिर भी, जब यह बात छिड़ ही गयी है, तो दो-एक बातें अगर इस सम्बन्ध में बता दी जाँय तो कोई हानि नहीं। इस मामले में शुरू से अभीतक तुमने जो-जो सुव्यवस्थाएँ की हैं, उनका कोई भी अंश मुझसे अविदित नहीं है। मैं उसमें हर कहीं तुम्हारी बेवकूफी, असावधानी और बुद्धिहीनता का ही परिचय पा रहा हूँ।"

विमला सिर झुकाये चुप रही। स्वामी कहने लगे, "सत्य सदा अप्रिय रहा है। इस क्लेश के समय अप्रिय सच्ची बातें कहकर मैं तुम्हारा दिल नहीं दुखाना चाहता। जो हो चुका है अगर उसके पलटने का कोई जरिया होता तो इस चर्चा से फायदा भी था लेकिन अब उस अतीत पर विचार करना केवल क्लेश का कारण होगा।"

विमला बोली, "मैं तन-मन से बराबर तिलोत्तमा का हित ही करती आ रही हूँ। तिलोत्तमा ही मेरा दूसरा जीवन है। मेरे जीवन के सभी सुख नष्ट हो गये हैं; उसे अब एक दिन भी पास रखने की कोई जरूरत नहीं है; फिर भी अभी तक जो जीवित हूँ वह केवल इसलिए कि तिलोत्तमा को सुखी देखकर संसार छोड़ सकूँ। यही मेरा संकल्प है। मेरे ही भाग्य के दोष से तिलोत्तमा सभी वांछनीय सुखों की अधिकारिणी बन कर भी फिर से अपार समुद्र में पड़ गयी है, शोक और चिन्ता से मृतप्राय हो गयी है। मेरा यह क्लेश कौन समझेगा? किसे मैं अपने दिल का हाल बताऊँ? जिसकी चिन्ता में मैं इतना व्याकुल हूँ, मेरे ही अविवेक और बुद्धिदोष से उसका अहित कैसे हो गया यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। अप्रिय होने पर भी वह सुनने के लिए मैं व्याकुल हूँ। आप समझा दीजिए कि मैंने कहाँ और कैसे अनुचित काम किया?"

अभिराम स्वामी बोले, "आगे-पीछे की सब घटनाएँ तुमसे अविदित न थीं; तुम्हें जानना चाहिए था कि मानसिंह के पुत्र के साथ वीरेन्द्र की कन्या

का विवाह कभी नहीं हो सकता । यह जानते हुए तिलोत्तमा को स्पष्टरूप से और सादी-सीधी भाषा में इस आशा से हाथ धो लेने की सलाह देना तुम्हारे लिए उचित था । वह सलाह नाकाम भी होती तो क्या ? अपना कर्त्तव्य पालन करना ही तुम्हारे लिए उचित था, क्योंकि तुम्हीं विमला की सौतेली मा और अकेली रक्षाकर्त्री हो । तुमने एकबार भी अपने उस कर्त्तव्य का पालन नहीं किया । पन्द्रह दिन के बाद फिर युवराज से मिलने जाते समय एकबार प्रसंगवश तुमने यह बात कही थी लेकिन वह भी दृढ़ता के साथ नहीं । पहले ही दिन यह बात तिलोत्तमा को अच्छी तरह से समझा देना चाहिए था । तुमने ऐसा नहीं किया । क्या यह ऐसा नहीं है ?"

विमला खामोश रही । अभिराम स्वामी कहने लगे, "युवराज शैलेश्वर-मन्दिर में तुमलोगों का परिचय न पाकर चले ही जाते, किन्तु एक पखवारे के बाद फिर से उसी स्थान पर भेंट कर परिचय-प्रदान करने की व्यवस्था करना तुम्हारे लिए ठीक नहीं था। वही पहली भेंट यदि अन्तिम भेंट होती तो बेहतर होता, स्वेच्छा से दूसरी भेंट का वादा करके तुमने अनुचित किया । मैं जानता हूँ कि तुम और आसमानी मेरे शिष्य गजपति के साथ हँसी मजाक किया करती हो, लेकिन वह बर्बर इन सब हँसी-मजाक को निरा मौखिक ही नहीं समझता । उस गजपति को साथ लेकर आधी-रात को शैलेश्वर मन्दिर में जाना तुमलोगों के लिए ठीक न था । वह साधारण ज्ञान से शून्य व्यक्ति तुम्हारे प्रति अनुरक्त है । उस दिन तुम लोगों ने विविध प्रकार के वाक्य और आचरण से उसका अनुराग बढ़ाया था; रास्ते में संगीत आदि लालसावर्द्धक मामलों की भी कोई कमी नहीं थी । वह पशुतुल्य मूर्ख शायद तुमलोगों पर किसी प्रकार का अत्याचार कर भी बैठता । यह सब आचरण कुल-कामिनियों के लिए बहुत निन्दनीय है । क्यों, ये सब बातें सच्ची हैं या नहीं ?

विमला बहुत ही लजित हुई । उसने कोई जवाब न दिया । स्वामी जी कहने लगे, "मन्दिर में युवराज से भेंट के समय जब तुम्हें पता चला कि वे तिलोत्तमा के प्रति अत्यन्त अनुरक्त हैं तब उनकी कातर प्रार्थना सुनकर तिलोत्तमा से आखिरी भेंट कराने में सम्मत होना तुम्हारे लिए उचित नहीं था। उसी स्थान पर उस मामले का अन्त करना ही ठीक था। ऐसा

न कर तुम उस राजपुत्र को साथ ले आयीं और अपनी शक्ति और अधिकार की बातें भूल कर तुमने बहुत से अनुचित आचरण किये। उस लड़ाई-हंगामे के जमाने में, दुर्गस्वामी के अनजाने, एक युवक मुगल-सेनापति को तुम अनायास दुर्ग के भीतर ले गयीं। तुम दुर्गस्वामी की विवाहिता पत्नी हो, यह बात सत्य है किन्तु इस कारण तुम्हारे ऐसे आचरण के लिए तुम्हें कोई अधिकार न था। नारियों को ऐसी स्वतंत्रता कभी शोभा नहीं देती और बहुधा वह अनघट का कारण बन जाती है। इस क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ है। इस विषय में क्या तुम्हारे पास कोई जवाब है ?"

विमला पहले की तरह नीरव बनी रही। अभिराम स्वामी बोले, "उसके बाद तुमने जो कुछ किया है, वैसा कोई भी जननी, विमाता, दासी, परिचिता नारी, यहाँ तक कि कोई वेश्या भी करने का साहस न करती। तुमने अनायास ही अविवाहित कन्या के सुसज्जित और सुवासित रुद्धद्वार-कक्ष में उसके प्रति अत्यधिकरूप से आसक्त, तरुण वय के राजपुत्र का प्रवेश कराया। स अपराध—इस स्वतंत्रता, इस निर्बुद्धिता की याद आते ही दिल धड़कने लगता है। तुम्हारी असावधानी के ही कारण उस दिन दुर्ग पठानों के हाथ में चला गया और उसी के कारण तुम विधवा हुईं और साथ ही साथ न जाने कौन-कौन से अनर्थ हो गये। विमला, मैं तुझे डाँट नहीं रहा हूँ। डाँट-फटकार और शिकायत का यह समय नहीं। लेकिन सोचकर देखो, इस मामले में पहले से आखीर तक तुम्हारा आचरण कतई ठीक नहीं हुआ है।"

तब विमला रोते-रोते पिता के चरणों पर गिर पड़ी और बोली, "मैं समझ रही हूँ कि मैंने बड़ा अन्याय कार्य किया है, अब उसका कोई भी प्रतिकार सम्भव नहीं। इस समय हमलोगों के सामने क्या उपाय है उसकी व्यवस्था कर आप हमारी रक्षा कीजिए।"

अभिराम स्वामी ने विमला को हाथ से पकड़कर उठाया और कहा, "उपाय की चिन्ता मैं दिनभर करता रहा। मैंने जो दूत भेजा है उसके लौट आने तक मेरे लिए कोई खास रास्ता निश्चित करना असम्भव है। केवल बेवकूफ गजपति के मुँह थोड़ा सा समाचार सुनकर कोई मामला साफ-साफ समझ में नहीं आ रहा है। महाराज का क्रोध कितना प्रबल है यह जान

सकूँ तो यह निश्चय किया जा सकता है कि हम लोगों का कर्त्तव्य क्या होना चाहिए।"

विमला—दूत कितने दिनों में लौट सकता है ?

अभि०—कल भी आ सकता है। अगर उसे पटना तक जाना पड़ा तो आठ-दस रोज भी लग सकते हैं।

विमला—आठ-दस रोज की प्रतीक्षा में तो न जाने कैसी-कैसी विपदाओं का सामना करना पड़े। तिलोत्तमा आज ही मृतप्राय हो गयी है; आठ-दस रोज तक अगर ऐसी ही यातना भोगनी पड़ी तो क्या वह जिन्दा रहेगी ?

अभि०—तिलोत्तमा को तुम साहस और ढाढ़स बँधाओ। मैं कल सबेरे मिलकर उसे शान्त करने की कोशिश करूँगा।

विमला—महाराज से युवराज का पिता-पुत्र सम्बन्ध है। पिता ने क्रोध में आकर पुत्र को कैद कर लिया है यह बात तो सत्य है लेकिन क्या पुत्र के मुँह से विनय-वचन सुनकर वे क्षमा न कर देंगे ?

अभि०—क्योंकर ऐसी आशा करूँ ? वीर का क्रोध पुत्र या नाते के बोध से भी शायद शान्त न हो।

विमला—इस क्रोध का क्या परिणाम हो सकता है ? आपको कैसी आशंका है ?

अभिराम स्वामी तनिक देर सोचने के बाद बोले, "तुमलोग नारी हो—सब बातें समझने या जानने की कोशिश न करना ही तुमलोगों के लिए बेहतर होगा।

विमला—अगर खास कुछ अनिष्ट होने की आशंका हो तो अविलम्ब उसका निवारण करना ही उचित होगा। महाराज मानसिंह आपका काफी आदर करते हैं। क्या आपको इसी समय बाप-बेटे का मनमुटाव दूर करने के लिए मध्यस्थ नहीं बन जाना चाहिए ?

अभि०—मेरी बिचवई से इस मामले में सिवाय हानि के लाभ नहीं। तुमलोग बेशक यह ख्याल करती हो कि महाराज मानसिंह विशेषरूप से मेरा आदर करते हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि वे आदर-भक्ति करना तो दूर की बात, दिल ही दिल मुझसे नफरत करते हैं। हम में से किसी के लिए उनके

मन में आदरभाव नहीं। इस मामले में स्वतंत्ररूप से अन्य व्यक्ति के द्वारा ही कोशिश करनी पड़ेगी और वह कोशिश मानसिंह से भी श्रेष्ठतर व्यक्ति के पास करनी होगी। आज रात काफी हो गयी है, तुमलोग दुर्ग में वापस जाओ। कल सबेरे फिर मुझसे भेंट होगी।

विमला और आसमानी उठीं और भक्तिपूर्वक अभिराम स्वामी के चरणों में प्रणाम कर वहाँ से प्रस्थान कर गईं।

——:*:——

(८)

विरहिणी

दूत लौट आया है। पटना तक जाकर युवराज की दुर्दशा का सारा ब्योरा जानकर दूत लौट आया है। दुर्ग के सब लोग शोक और दुःख से मुरझा से गये हैं।

जिस दिन दूत यह खबर लेकर लौटा, उसी दिन उसके मुँह से सारी बातें विस्तार से सुनकर अभिराम स्वामी दुर्ग की व्यवस्था में एकचित्त हो गये। उनकी अनुपस्थिति में सारा काम सुचारुरूप से चलता रहे उसका प्रबन्ध कर उसी दिन वे तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। लोगों के समक्ष उन्होंने तीर्थयात्रा का ही प्रचार किया, इसलिए आमलोगों ने ऐसा ही समझा। लेकिन विमला ने कुछ और ही समझा, वह जान गयी कि अभिराम स्वामी इस शोचनीय मामले के किसी उपाय की चेष्टा में ही दुर्ग छोड़ रहे हैं।

तिलोत्तमा—ऐ मर्माहता दुखियारी तिलोत्तमा, क्या तुममें यह भयानक गाज अपने सीने पर रोकने की शक्ति नहीं है? यह कठोर यातना धीरज के साथ सहने का क्या तुममें बल नहीं? इस विपद की आँधी के थपेड़े से क्षुब्ध समुद्र को क्या तुम शान्त ढंग से पार नहीं कर सकोगी?—नहीं। तिलोत्तमा इस चोट से एक दम उदास हो गयी थी; इस तीव्र यातना ने उसे हरप्रकार से व्यथित और कातर बना दिया, इस अपार समुद्र को पार करने की शक्ति,

साहस और उद्योग उसमें नहीं है। विरहिन दुखियारी नतमस्तक धरती पर पड़ी हुई है।

यह वही कक्ष है जिसमें हृदयेश्वर के साथ अचिंत्यपूर्व उपाय से शुभेच्छु विमला की अनुकम्पा से तिलोत्तमा की पहली भेंट हुई थी, जिसमें उस सरल-मना सुर-सुन्दरी ने सदा के लिए अपने को जगतसिंह के हाथों में सौंपा था, जिसमें विमला और तिलोत्तमा यम-समान पठानों के हाथ में कैद हो गयी थीं। अनेक प्रकार के सुख और दुःख की स्मृति भड़काने वाले उसी कक्ष में आज तिलोत्तमा लेटी हुई थी। निकट ही वह पलंग था, जिस पलंग के किनारे की पाटी पर, एकदिन असावधानी से बहुत सी बातें लिखते-लिखते उसने जगतसिंह का नाम लिख डाला था और अपनी असावधानी से लजाकर सिर झुकाये उसने बार-बार उस पलंग की पाटी को धोया और पोंछा था फिर भी उसे लग रहा था कि उसके हृदयेश्वर का नाम वहाँ स्पष्टरूप से अंकित है। वही पलंग है जिस पर प्राणेश्वर जगतसिंह का गला बाहों में बाँधकर कितने सुखों की कल्पना में तिलोत्तमा विभोर हो जाती थी, कैसे-कैसे आनन्दसागर में वह तैरती रही। उसके बगल में वही पलंग। दस दिन पहले भी प्राणनाथ के बगल में लेटे-लेटे उत्कंठा से रात काटती रही और उषा के शीतल पवन के स्पर्श से जब हल्की नींद आ गयी तो उसके बाहों का बन्धन तोड़कर प्रातःकाल वे उठकर चले गये थे। उसी वांछित सुखमय पलंग के बगल में तिलोत्तमा धरती की शय्या पर लेटी थी।

खिड़की से घुड़सवार वीर पति के साथ वह आखिरी भेंट, वह बिदा, वह रोना, वह प्रणाम। दस दिन हो गये वह वापस न लौटे। लौटने की कोई सम्भावना भी नहीं। वे जंजीरों में जकड़े हुए बन्दी हैं—आजीवन उन्हें इसी दशा में कारागार में काटना पड़ेगा। महाराज मानसिंह की यह आज्ञा—पिता के हुक्म से पुत्र को यह कठोर दंड। कौन है जो इस व्यवस्था को पलट सके? भारतवर्ष में किसमें इतनी हिम्मत है कि मानसिंह के खिलाफ कोई बात करे?

हाय! तिलोत्तमा, चन्द दिनों का यह सुख? शैलेश्वर मन्दिर में जगतसिंह के मनमोहन रूप का वह प्रथम दर्शन। उसके बाद एक पलबारे

तक अत्यन्त दुश्चिन्ता में समय काटना। एक पखवारे के बाद हृदयवल्लभ से भेंट और साथ ही अनहोनी विपदा से मुठभेड़। पठानों के घर पर रहना। सतीत्व, धर्म, जीवन और पवित्रता नष्ट होने का निरन्तर भय। अनोखे उपाय से उसमान की अँगूठी की सहायता से मुक्ति पाना। कारागार में युवराज का वह कठोर वाक्य, "वीरेन्द्रसिंह की कन्या ! यहाँ क्यों ?" आयशा की मेहरबानी से रिहाई, साथ ही साथ विजातीय मनःक्लेश के हेतु भयानक पीड़ा—मरणासन्न दशा। फिर अभिराम स्वामी के आह्वान से जगतसिंह को दया आना—अनुग्रह—चरणों में स्थान देना; इतना कष्ट—असहनीय यातनाएँ भोगने के उपरान्त उस वाञ्छित पुरुषरत्न के साथ पवित्र चिर-मिलन। लेकिन हाय ! वह कितने दिन का सुख था। सुख के प्रथम सोपान पर ही यह बाधा। अनेक कष्ट और प्रयास से पाया हुआ रत्न सीने से लगाते न लगाते यह भयानक दुर्दशा। वह प्यारा महल अचानक जल कर खाक हो गया। निर्दोष तिलोत्तमा तीर से घायल हिरनी की नाईं छटपटा रही है। हाय ! चार दिन की यह चाँदनी !

तिलोत्तमा न खाना खाती और न सोती। न चोटी न कंघा, खुले काले बाल धूल में लोट रहे हैं; वह सोने सी मूरत धरती पर लोट रही है, देह भर में धूल, बदन पर कोई आभूषण नहीं और न आँखों में आँसू। तिलोत्तमा सिर नीचा किये हुए धरती के बिस्तर पर लेटी हुई है।

तिलोत्तमा सोच रही है, संसार में बहुत सी विपत्तियाँ आती हैं किन्तु विपत्तियों के निवारण भी तो संभव हैं। बैठे-बैठे रोना, सोच-सोच कर दिन बिताना, लेटे-लेटे शोक की यातना सहना, इसमें किसका क्या भला है ! ऐसी चिन्ता से क्या लाभ ? यथासाध्य उपाय के लिए सोचना चाहिए। इसके बाद ऐसा ही करूँगी।

तिलोत्तमा उठ कर बैठ गयी। पुकारा, "कौन है यहाँ पर ?"

एक दासी फौरन वहाँ उपस्थित हुई। तिलोत्तमा बोली, "जिस पेटी में मेरा दावात-कलम कागज रहता है उसे लाओ।"

दासी ने लिखने के सामान से भरी वह पेटी लाकर तिलोत्तमा के सामने

रखी और पूछा, "बदन पोंछ दूँ ? बाल सवाँर दूँ ? चिलमची, देग, पानी ले आऊँ क्या ? क्या कपड़े बदलेंगी ?"

तिलोत्तमा बोली, "अभी जरूरत नहीं। अम्मा कहाँ हैं ?"

तिलोत्तमा विमला को मा कहकर पुकारती है। वीरेन्द्रसिंह की मृत्यु के बाद विमला का असल परिचय सबको मालूम हो गया था। दासी के रूप में रहने पर भी वह वीरेन्द्रसिंह की विवाहिता पत्नी थी यह चारो ओर प्रचारित हो गया था। कतलू खाँ के हाथों से मुक्ति पाकर गढ़मन्दारन लौट आने के बाद से सभी उन्हें रानी मा कहकर सम्बोधित करने लगे थे। विमला नाम से उसे बुलाने की हिम्मत किसी को नहीं पड़ती थी। स्वयं तिलोत्तमा भी उसे मा सम्बोधन के अलावा किसी अन्य नाम से न बुलाती। तिलोत्तमा ने पूछा, "अम्मा कहाँ हैं ?"

दासी ने जवाब दिया, "वे ऊपर के बरामदे पर बैठी आसमानी के साथ कुछ सलाह-मशविरा कर रही हैं। क्या उन्हें बुला दूँ ?"

तिलोत्तमा बोली, "नहीं। तुम अब जाओ। अम्मा से कहना कि उन्हें अभी मेरे पास आने की जरूरत नहीं। थोड़ी देर बाद मैं ही उनसे मिलने चली जाऊँगी।"

आनन्दित हो दासी वहाँ से चली गयी। चार दिन के बाद आज तिलोत्तमा उठ कर बैठी, बोली, लिखने का सामान लेकर बैठी, शायद कुछ लिखेगी-पढ़ेगी भी। शुभ लक्षण हैं। विमला को यह शुभ-सन्देश बताने के लिए वह दौड़ गयी।

तिलोत्तमा कागज कलम और दावात लेकर खत लिखने लगी। बहुत देर के बाद खत लिखना खत्म हुआ। उसने उसे लिखने के बाद पढ़ा :—

"नवाबनन्दिनी,

बड़ा ही कठोर समाचार देने के लिए तुम्हें यह खत लिख रही हूँ। याद है तुम्हें ? उस दिन विवाह की रात को तुमने भूमंडल के जिस सर्वश्रेष्ठ पुरुष को दिल में रखने की सलाह दी थी, मेरी तकदीर के फेर से वही आज कैदी हैं—लोहे की जंजीरों से बँधे—कैदखाने में। महाराज मानसिंह ने कई मामलों से नाराज हो उस गुणमय को जिन्दगीभर के लिए कैदी बना दिया है।

"मुसीबत में पड़ने पर लोग नाते-रिश्तेदारों को सबसे पहले याद करते हैं। तुम्हारे साथ मेरा दो दिन का परिचय है। किन्तु इतने में ही मैं समझ गयी हूँ कि तुमसे नजदीकी रिश्तेदार मेरा कोई और नहीं। ऐसा समझने के कारण ही यह दुखद समाचार तुम्हें भेज रही हूँ।

"सुलह हो जाने के कुछ दिनों के बाद ही तुमने युवराज को एक खत लिखा था। वह खत युवराज बड़ा ही कीमती दस्तावेज समझकर सावधानी और जतन से रखे हुए हैं। उन्होंने वह खत मुझे बार-बार पढ़कर सुनाया है। अब भी वह खत जवाहिरातों की पेटी में मेरे पास पड़ा है।

"उस खत की एक जगह पर लिखा है कि 'अगर कभी दिल दुखे तो आयशा को याद करना।' राजकुँवर इस वक्त अनन्त कष्ट भोग रहे हैं। साथ ही इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वह बार-बार आयशा को याद कर रहे हैं।

"युवराज तुम्हारे प्रियतम हैं, शायद यह बात अब तुम किसी से भी छुपाना न चाहोगी; कितनी ही बेलें आम का सहारा लेती हैं; कौन किसे भगाये ? एक ही आश्रय में बहुत से आपस में गुँथ कर नाचते हैं, सुख का घर बसा लेते हैं।

"मैंने यह समझ लिया है कि तुम औरतों में सिरमौर हो—इस दुनिया में तुम्हारी बराबरी करनेवाली कोई दूसरी नहीं। मेरी किस्मत है कि तुम जैसी देवी से मेरी भेंट हो गयी। तुम निष्काम प्रेम की सजीव मूर्त्ति हो।

"जब जी चाहे तभी तुम्हें खत लिखें" तुमने युवराज को इसकी इजाजत दे रखी थी। इस हालत में अगर उन्हें मौका मिलता और सहूलियत होती तो वे अवश्य ही तुम्हें लिखते इसमें भी कोई शक नहीं।

"इस मौजूदा संकट में तुम क्या करोगी या नहीं करोगी इसकी चर्चा मैं नहीं कर रही, और न उस विषय में कोई सुझाव ही दे रही हूँ। दुनिया में जो लोग राजपुत्र के कल्याण की कामना करते हैं उनमें शायद तुम सबसे आगे हो। इस कारण तुम्हें यह खबर भेजना मेरा कर्त्तव्य है। मैंने उसी कर्त्तव्य-पालन के लिए यह खत लिखा है।

"दूसरी कोई सुख-दुख की खबर बताने का यह मौका नहीं।

"अगर जरूरी समझो तो जब मर्जी हो मुझे खत लिखना, भेंट-मुलाकात

की भी जरूरत पड़ सकती है। इस बारे में तुम जो भी प्रबन्ध करोगी मैं उसी के अनुसार मौका निकाल लूँगी।

तुम्हारी
दुखियारी तिलोत्तमा।"

खत पढ़ कर तिलोत्तमा ने उसपर नाम लिखा "नवाबनन्दिनी आयशा।" और एक किनारे लिखा "गढ़मन्दारन से"। नियम के अनुसार खत पर मुहर लगायी गयी, डोरे से बाँधा गया। उसके बाद उस खत को हाथ में लिये हुए खड़ी हो गयी और कमरे में दो बार चहलकदमी की। सहसा एकबार ठहर कर मन ही मन बोल पड़ी, "कर्त्तव्य स्थिर हो गया है, कल ही से अनुष्ठान शुरू हो जायगा।"

जो लोग सदा से शान्त, सुधर, निरीह और दूसरों के आज्ञाकारी होते हैं वे कभी-कभी किसी विशेष दशा में पड़कर स्वाधीनता, स्वतंत्रता, तेज, क्रियाशीलता, एकाग्रता तथा दृढ़-प्रतिज्ञा का परिचय देते हैं। इतिहास और समाज में ऐसे अनोखे उदाहरण कम नहीं। सहसा मानव-चरित्र में ऐसा परिवर्तन क्यों होता है यह मनोविज्ञान का विषय है। धीरा, विनम्र-प्रकृति सदा दूसरों के भरोसे चलनेवाली तिलोत्तमा सहसा दृढ़संकल्प हो गयी।

चिट्ठी हाथ में लिये हुए तिलोत्तमा कमरे से बाहर निकल आयी।

———:*:———

(६)

नया नवाब

उड़ीसा के स्वर्णगढ़ के दुर्ग में पठानों ने इस समय राजधानी की स्थापना कर ली थी। ख्वाजा सुलेमान खाँ और ख्वाजा उसमान खाँ—परलोकवासी नवाब कतलू खाँ के ये दोनो पुत्र और दत्तक कन्या आयशा आदि अन्तःपुर की महिलाएँ अब निश्चिन्त रूप से स्वर्णगढ़ में रह रहे थे। युद्ध, मुगलों से विग्रह फिलहाल सब बन्द हो गया था।

स्वर्गवासी नवाब कतलू खाँ के दो पुत्र इतिहास में ख्यात हुए । सुलेमान और उसमान; दोनो में कहीं राज्य के बारे में झगड़ा न खड़ा हो इसी डर से महाराज मानसिंह के सन्धि के अनुसार, राज्य-संचालन का भार, वृद्ध वजीर ख्वाजा ईसा के हाथों में अर्पित हुआ था। प्रौढ़ और अनुभवी मंत्री अपना कर्त्तव्य बड़ी ही सावधानी के साथ पूरा करते चले आ रहे थे। उनकी कुशलता के कारण किसी ओर से भी असन्तोष प्रकट करने का कोई अवसर नहीं मिल रहा था। सभी कुछ सुचारु ढंग से हो रहा था।

सभी कुछ अच्छे ढंग से चलने पर भी मनुष्य का चित्त दुराकांक्षा के प्रबल चपेट में पड़कर कभी-कभी बड़ी यातना भोगता है और जानबूझकर असन्तोष उत्पन्न कर बहुत से अनागत क्लेशों को बुला लाता है। नवाब कतलू खाँ के दोनो पुत्रों की प्रकृति बिल्कुल अलग-अलग ढंग की है। बिना रोक-टोक के अच्छी शराब और सुन्दरियों के संसर्ग में वक्त बिता सकने में ही जीवन की सब आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, सुलेमान का ऐसा ही ख्याल था। वह अपनी वासनाओं के अनुरूप पदार्थों से घिरा निश्चिन्त हो वक्त काट रहा था। उसका छोटा भाई उसमान इन सब इन्द्रियसुखों के पीछे भटकना बड़ा ही नीच कार्य समझता था। मनुष्य-जीवन और वीर हृदय पाकर पठान नरपति के वंश में जन्म लेकर और तलवार चलाने में दक्षता प्राप्त कर शराब से बेहोश कामिनियों के बीच जीवन बिताना उसमान की दृष्टि में घोर नीचता थी।

उसमान बड़े ही मानसिक क्लेश से दिन गुजार रहे थे। मुगल इस समय भारत के सम्राट् हैं। लेकिन यह बात स्वीकार करते हुए भी उसमान का दिल दुख उठता था। वे सोचते कि दिल्ली के तख्त पर पठान ही सुल्तान थे; कुतुबुद्दीन ने अपने ही बाहुबल से हिन्दुओं से सल्तनत छीनी थी और बड़ी ही धाक और प्रताप से राज्य प्रतिष्ठित किया था। मुगल-वंशज बाबर ने अपने बाहुबल से पठान नरपति को हटाकर दिल्ली के तख्त पर अपना कब्जा कर लिया। लेकिन इससे मुगल ही इस हिन्दुस्तान के न्यायपूर्ण और निर्विरोधी शाहंशाह हों ऐसा विचार करने का कोई कारण नहीं है। पठानों का हक मुगलों से पहले का है। तकदीर के फेर से पठान अब हीन दशा में

पहुँचगये हैं, भाग्य-चक्र के घूमने से उनकी दशा अब उन्नत नहीं हो सकती —ऐसी बात भी नहीं है। हीनदशा में सन्तुष्ट रहना या उसके निवारण के लिए कोई उपाय न करना—इसे उसमान कायरता समझता था।

वर्त्तमान सन्धि की व्यवस्था से इस वीर का हृदय एक दिन के लिए भी प्रसन्न न हुआ। महाराज मानसिंह के द्वारा हाल में जो सन्धि हुई है उसे तोड़ा नहीं जा सकता—ऐसा उसमान का विचार न था। वह सोचता था कि कब कौन सी सन्धि चिरस्थायी हुई है ? वर्त्तमान सन्धि की शर्तों के पीछे चाहे पठानों की दुर्बुद्धि रही हो या मुगलों की चालाकी, उसका टूटना असंभव नहीं। नवाब कतलू खाँ की मृत्यु, चारो ओर फैली विशृंखला, युद्ध के लिए मानसिंह का विशाल आयोजन आदि अनेक कारणों से सन्धि की विवशता उठानी पड़ी। लेकिन वे सब कारण हट जाने पर भी सुलह बनी ही रहेगी, ऐसा संभव नहीं।

उसमान के हृदय में असन्तोष घर कर रहा था इसमें कोई सन्देह नहीं। उसके हृदय में निरन्तर अशान्ति का प्रबल कारण थी आयशा। सौन्दर्य की उस प्रतिमा ने उसके जीवन का सब कुछ हर लिया था। उसके जीवन की सुख-शान्ति उस सुन्दरी की कृपा में निहित है; लेकिन वह भूलोक-दुर्लभ नारी उसकी नहीं, वह अपने हृदय में उसके लिए तनिक भी जगह नहीं रखती। जिस दुराकांक्षा की प्रबलता से उसमान का हृदय निरन्तर उन्मत्त है, जिस दुराशा की अदम्यता से वह भारत का सिंहासन पाने की कल्पना में प्रमत्त होने में भी कुंठित नहीं, उन सभी वासनाओं को आयशा की क्षणभर कृपादृष्टि के बदले लुटाने को तैयार है। फिर भी वह सुन्दरी जरा भी गौर करने को तैयार नहीं। निराश प्रेमी की यह अन्तर्ज्वाला असहनीय होती है।

कौन है वह आयशा ?—कतलू खाँ की पाली हुई कन्या। आयशा स्वर्गीय नवाब साहब की कश्मीरी बेगम साहबा की भतीजी है। आयशा छः महीने की थी कि उसकी मा इस संसार से विदा हो गयी। पत्नी वियोग से विधुर पति ने उस शिशुकन्या को अपनी सहोदरा के पास भेज दिया। थोड़े समय बाद आयशा का पिता भी काल-कवलित हो गया।

लेकिन मा-बाप के अभाव में अनाथ आयशा किसी कष्ट में न पड़ी। नवाब कतलू खाँ ने इस असामान्य रूप-लावण्यवती कन्या को बड़े ही स्नेह की दृष्टि से देखा। बेगम साहबा के दूसरी कोई सन्तान न थी। वह इस सुकुमारी को अपनी कन्या सी पालने लगीं। नवाब साहब की और भी बहुत सी पुत्र-कन्याएँ थीं फिर भी आयशा के प्रति उनकी ममता इतनी बढ़ने लगी कि आयशा औरों की अपेक्षा अधिक कृपा और अनुग्रह पाने लगी। आपलोग आयशा को नवाब की कन्या के रूप में ही जानते थे। स्वयं आयशा भी अपने को कश्मीरी बेगम के पेट से जन्मी नवाब की बेटी के रूप में ही समझती थी।

उसमान और आयशा करीब-करीब हमउम्र थे। नवाब की जनानी ड्योढ़ी में वे बच्चे एकसाथ खेलते-कूदते बढ़ने लगे। आयशा का हुस्न बेमिसाल होने लगा, उसकी सीख और हिम्मत शोहरत हासिल करने लगी। उसकी बुद्धि और धार्मिक प्रवृत्ति असाधारण बनने लगी। धीरे-धीरे उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसमान उस सुन्दरी के प्रति अनुरक्त हो गये। बचपन का वह प्यार जवानी के आते ही एक दूसरी शक्ल में बदल गया। उसमान जाने-अनजाने धीरे-धीरे आयशा का गुलाम बनने लगा।

नवाब कतलू खाँ अपनी मृत्यु से बहुत पहले ही आयशा को काफी धन-सम्पत्ति दे गये थे जिससे उसकी गुजर-बसर आराम से हो सके। आयशा जितनी धनशालिनी हो गयी थी कतलू खाँ की किसी सगी बेटी के पास भी इतनी सम्पत्ति न थी। कतलू खाँ ने और कश्मीरी बेगम ने भी अपने-अपने जीवन-काल में ही यह साफ-साफ समझ लिया था कि उसमान उसके प्रति अनुरक्त है। दरअस्ल आयशा उसमान के सुख-दुख में जिस प्रकार दिल से हमदर्दी जाहिर करती थी इससे यह अनायास ही लगता था कि उसमान का दिल हरनेवाली यह मोहिनी भी उसमान को अपना दिल दे चुकी है। लेकिन आयशा का अनुराग भ्रातृप्रेम की सीमा के पार नहीं जा सका। उसमान को वह स्नेहमय अग्रज के रूप में ही अविचलित ढंग से प्यार करती रही-यह बात कोई समझ नहीं सका। नवाब और बेगम ने सोचा था कि आयशा के पास अपनीही काफी सम्पत्ति रही, इसके बाद अगर उसमान उससे शादी कर ले तो आयशा का

सुख-सौभाग्य सम्पूर्ण होगा। लेकिन ऐसे ही समय, पतिहन्ता से प्रतिशोध लेने के लिये दग्ध विमला द्वारा कत्ल होकर नवाब साहब संसार छोड़ कर चल बसे।

आयशा का प्रेम कितना गहरा है यह उसमान को ज्ञात था। उसमान जैसे ही अपना आन्तरिक प्रेम प्रकट करना चाहता कि आयशा स्पष्ट शब्दों में उसे अपने दिल का सच्चा भाव बता देती। आयशा के मुँह से वे बातें उसमान के दिल में तीर सी जा बिंधती। वह खामोशी से उस असह यातना को भोगता रहता।

इसी यातना से तड़पता उसमान एकदिन तिपहर को स्वर्णगढ़ दुर्ग के एक बड़े कक्ष में अकेला बैठा था! एक ओर दुराकांक्षा का प्रबल दंशन और दूसरी ओर निष्फल प्रेम की असह कचोट! असह क्लेश में उसमान को अपना जीवन भार-स्वरूप लगने लगा था। सहसा नकीब का एलान सुनायी पड़ा। उसमान उठकर कमरे के दरवाजे तक गया। लम्बी दाढ़ियों वाले पगड़ी पहने वजीर ईसा खाँ वहाँ आ पहुँचे। उसमान ने उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शन किया। वृद्ध ईसा खाँ ने भी नियमानुसार उसमान का शाही-सम्मान किया। दोनो आसन पर बैठ गये। उसमान ने पूछा, "किस इरादे से आपका यहाँ आना हुआ? नयी खबर क्या है?"

वजीर ने कहा, "जगतसिंह की कैद वाली खबर तो शायद नवाब साहब को मिल ही गयी होगी?"

उसमान बोले, "वह खबर मुझे मिली है लेकिन उससे हमलोगों का क्या फायदा-नुकसान है?"

वृद्ध बोले, "मेरे ख्याल से कुछ तो है। हाल में महाराज मानसिंह ने हमलोगों के साथ जो सुलह की है और जिस सुलहनामे के मुताबिक दोनो ओर के लोग काम कर रहे हैं, उसके बारे में मुझे पता चला है कि यह सुलह अकबर बादशाह को मंजूर नहीं। मानसिंह की यह सन्धि अकबर टाल नहीं सकते—यह तो सच है लेकिन चूँकि यह उनके मन के मुताबिक नहीं हुई है इसलिए वे इसे तोड़ने का मौका ढूँढेंगे यह निश्चित है।

उसमान ने कहा, "जगतसिंह की कैद के साथ इस मामले का क्या रिश्ता है? आपका अन्दाजा क्या है?"

मंत्री बोले, "मेरा तो अन्दाजा है कि दोनों में कोई रिश्ता है। जगतसिंह जब हमारे पास कैद थे, तब शायद हमलोगों के आचरण से उनको कोई खास असन्तोष का कारण न हुआ हो। मेरा ख्याल है कि वे हमारे ऊपर नाराज नहीं हैं। सभी बातें मैं बताना नहीं चाहता हूँ लेकिन मुझे लगता है कि वे हमलोगों से दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहते—इसका कोई दूसरा कारण हो सकता है।"

क्या सोचकर मंत्री ने अपनी बात का आखिरी हिस्सा कहा—यह उसमान की समझ में आ गया। जगतसिंह के प्रति आयशा की आसक्ति का स्मरण कर ही ईसा खाँ ने ऐसी बात कही, यह समझने में उसमान को देर न लगी। उनके दिल पर एक ही समय सौ बिच्छू डंक मार गये। बड़े ही कष्ट से हृदय का भाव संयत कर उसमान ने कहा, "आपका अभिप्राय यही है न कि जगतसिंह हमारे अनुकूल रहने पर और अकबर के पास हमारे बारे में हितकारी अभिमत प्रगट करने का अवसर पाने पर यह सन्धि बनी रहेगी। जगतसिंह यदि कैदखाने में पड़ा रहा तो हमलोगों के हित में कोई प्रयास नहीं कर सकेगा। क्यों क्या यही आपका अभिप्राय है या और कुछ?"

वृद्ध ने संकोच से कहा, "गुलाम का ऐसा ही ख्याल है।"

उसमान बोला, "आप प्रवीण हैं, अनुभवी हैं और हमारे पिता-तुल्य हैं। इसलिए आपको तिरस्कार करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि इस सन्धि से हमलोगों को कौन सा फायदा हुआ है? अपनी बाहों की ताकत से, शरीर का खून बहा और शाही खजाने का धन खर्च कर मैंने करीब-करीब सारे बंगाल पर कब्जा कर लिया था। अभी उस दिन की तो बात है कि धारपुर के युद्ध में विजय पा सारा मिदनापुर और बर्दवान की सीमा तक का प्रदेश हमारे कब्जे में आ गया था। सन्धि के कारण हमें अपना नवविजित राज्य छोड़ना पड़ा है। ऊपर से जगन्नाथ का मन्दिर और सारा पुरी जिला भी हमें मुगलों के हाथ में दे देना पड़ा है। ऐसी सन्धि बड़ी ही शर्म और घृणा की बात है। अकबर यदि इसे तोड़ डाले तो मुझे कोई क्षोभ का कारण दिखायी नहीं पड़ता।"

वृद्ध ने जरा चुप रह कर कहा, "मैं इस बारे में जहाँपनाह से कोई बहस नहीं करूँगा, लेकिन मेरी गुजारिश सिर्फ इतनी है कि फिलहाल हम कमजोर हैं।"

उसमान बोले, "सच है कि इस वक्त हम मानसिंह के खिलाफ खड़े होने लायक ताक़तवर नहीं। लेकिन आप यह कमी पूरी करने की क्या कोई कोशिश कर रहे हैं?"

मंत्री बोले, "आपसे यह छुपा न होगा कि अन्दरूनी राजकार्य के तरह-तरह के अच्छे इन्तजामों की ओर मुझे इतना दिमाग देना पड़ रहा है कि कुछ और सोचने की फुर्सत ही नहीं।"

उसमान बोले, "आप राजकाज लेकर ही फँसे रहे। इस प्रवीण वृद्धावस्था में लड़ाई-फसाद आपको नहीं जँचेगा यह तो ठीक ही है। इस समय आपके लिए सन्धि और शान्ति ही सबसे वांछित दशा है। आप मुझे क्षमा करें, मैं मौजूदा सुलह को अपमानजनक ही मानता हूँ। मौका पाते ही यह घृणित सन्धि पैरों के नीचे कुचल कर मुगलों के खिलाफ लड़ाई के मैदान में जाने में मैं हिचकूँगा नहीं। उसके लिए जिन तैयारियों की आवश्यकता है आगे से मैं उसका इन्तजाम करूँगा और सभी इन्तजाम पक्का हो जाने पर आपको सारे हालात बता दूँगा।"

ईसा खाँ ने कहा, "इस बारे में मैं कुछ भी न कहूँगा। अभी फिलहाल मेरा वक्तव्य कुछ और है। महाराज मानसिंह जल्दी ही पुरी आयेंगे।"

बहुत खूब। काफिर भद्दे लकड़ी के टुकड़े को ईश्वर मान कर पूजा करते हैं। मुगलों का साला मानसिंह भी क्या ईश्वर-पूजने के लिए पुरी आ रहा है?"

मंत्री—संभव है। वे विशेष समारोह के साथ आएँगे।

उसमान—उनकी मर्जी। जब सन्धिसूत्र से हमने पुरी छोड़ दिया है, तब वहाँ बंगाल का सूबेदार मानसिंह आवे या बाँकुड़ा की गरीब प्रजा भिक्षा करने चली आवे, हमें उससे क्या मतलब?

मंत्री—हमारा उससे कुछ मतलब है। महाराज को पुरी जाना हो तो हमारे इलाके में से होकर उन्हें काफी दूर जाना पड़ेगा।

उसमान—वे मजे में जावें। राजपथ खुला है। वे क्यों, सभी लोग उस रास्ते से मजे में जा सकते हैं।

मंत्री—उस समय हमलोगों का कुछ कर्त्तव्य है।

उसमान—क्या ?

मंत्री—यदि वे हमारे इलाके में दाखिल होते हैं ता हम उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन के लिए विवश हैं।

उसमान के चेहरे पर मानो बादल छा गया, पूछा, "क्यों ?"

मंत्री—हम लोग उनके साथ सन्धि-सूत्र से बँधे हुए हैं। उनका सम्मान न करने पर बादशाह का अपमान होगा। मानसिंह बादशाह के प्रतिनिधि हैं।

उसमान—किस प्रकार का सम्मान दिखाना होगा ?

मंत्री—हमारे इलाके की सरहद तक आपको उनके साथ रहना पड़ेगा।

उसमान ने आसन छोड़ दिया और कुछ देर कमरे में चहलकदमी करते रहे। उसके बाद सहसा वृद्ध मंत्री के सामने खड़े होकर बोल पड़े, "मुझसे ऐसी बेइज्जती बर्दाश्त नहीं। यह सच है कि मानसिंह एक जगद्विख्यात वीर है, मानसिंह की बाहुशक्ति के कारण ही अकबर का इतना गौरव है, मानसिंह अकबर का कुटुम्बी है, लेकिन यह भी सच है कि मानसिंह एक कर प्रदान करनेवाला राजा और अकबर का दास है। हमलोग इस समय दुर्बल हैं, पर हैं एक स्वाधीन नरपति—अकबर के समकक्ष। घटनाओं के फेर से हम कमजोर बेशक हो गये हैं फिर भी अब तक हम अकबर के साथ युद्ध ही करते आये हैं। जय-पराजय की बात छोड़ दीजिए लेकिन किसी कारण से भी कभी हम किसी के पदानत नहीं हुए। अब भी हम उड़ीसा के स्वाधीन राजा हैं। इस दशा में अकबर के एक प्रतिनिधि का जूता ढोते हुए उसके साथ-साथ घूमने को मैं कतई तैयार नहीं हूँ।"

मंत्री ने कहा, "इस सम्बन्ध में महाराज का एक पत्र है।"

अपने अंगरखे से एक पत्र निकाल कर उन्होंने उसमान के हाथ में दिया। पत्र का सारांश यों था—"महाराज मानसिंह स्वधर्म-पालन हेतु

पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्रा करेंगे। उन्हें उम्मीद है कि उड़ीसा के नवाबों के इलाके में प्रवेश करने पर दोनो नये नवाब उनसे मिलेंगे।" पत्र ईसा खाँ के नाम से लिखा था।

उसमान ने पत्र पढ़ने के बाद उसे मंत्री को लौटा दिया, बोले, "इस पत्र का जैसा जवाब देना मैं उचित समझता हूँ वह मैं कल आपको बता दूँगा। मानसिंह का यह साहस सचमुच खीझ पैदा करनेवाला है।

ख्वाजा ईसा खाँ ने कहा, "मैं अब विदा ले रहा हूँ। विदा लेते समय मैं नवाब को एक बात की याद दिला देना चाहता हूँ।"

"बताइए।"

"महाराज मानसिंह ने मुगल-पठानों में जो सन्धि रची थी वह जगतसिंह के प्रयास से ही हुई थी। यह बात हमें याद रखना चाहिए। एक बात और, इस सन्धि के अनुसार हमें उत्कल में अवश्य ही स्वाधीन अधिकार मिला है लेकिन हमें बादशाह की अधीनता भी स्वीकार करना पड़ी है, महाराज मानसिंह के शिविर में जाकर उन्हें सम्मान दिखाना पड़ा है, काफी नजराना चढ़ाकर उन्हें खुश करना पड़ा है और उनकी दी हुई खिलअत पहनकर हमें सम्मानित होना पड़ा है। हम लोग विधि के अनुसार महाराज मानसिंह के सामने अपनी अधीनता प्रगट कर और सम्पूर्णरूप से बादशाह की पराधीनता स्वीकार कर उड़ीसा की स्वाधीनता का भोग कर पा रहे हैं। ये सब बातें इतनी जल्दी न भूलने से ही बेहतर होगा।"

उसमान ने कहा, "वह बात मैं एकबार के लिए भी नहीं भूल सका हूँ। वह कलंक मेरे दिल में बिंधा पड़ा है। लेकिन यह कुयश जल्द ही दूर होगा।"

ख्वाजा ईसा खाँ उठते हुए बोले, "जितने दिनों तक हालत कुछ बदलती नहीं उतने दिनों तक महाराज मानसिंह को बादशाह का प्रतिनिधि जानकर समुचित सम्मान देने को हम विवश हैं। अगर ऐसा न हुआ तो फिर बादशाह के साथ विरोध अवश्यम्भावी है। हमलोग इस समय किसी प्रकार का विरोध करने में असमर्थ हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अपना कर्त्तव्य ठीक कीजिएगा यही मेरा निवेदन है। मेरी सेहत ठीक नहीं,

बीमारी और बुढ़ापा, दोनो से मैं कातर हूँ। शायद मैं अब बहुत दिनों तक जिन्दा भी नहीं रहूँगा। जितने दिन हूँ नवाबों की दशा में परिवर्त्तन की दुआ माँगता रहूँगा। अच्छा, अब, इजाजत!"

समुचित शिष्टाचार के बाद वृद्ध मंत्री धीरे-धीरे वहाँ से प्रस्थान कर गये।

—):*:(—

(१०)

पूर्वकथा

धीरे-धीरे चिन्तित उसमान उस कक्ष से निकल गया। मानसिंह का पत्र उसे आदेशसूचक परवाना सा लगने लगा। उसने सोचा कि पठानों ने पराधीनता अवश्य मान ली है लेकिन उससे क्या पठानों का ही हित हुआ है? क्या मुगल इस सन्धि से उपकृत नहीं हुए हैं? हम लोगों के साथ युद्ध में क्या मानसिंह को नुकसान नहीं पहुँच रहा था? स्वर्गीय नवाब ने धारपुर के युद्ध में मानसिंह को पराजित कर, उनके पुत्र जगतसिंह को बन्दी बना लिया था और बंगाल में विष्णुपुर तक कब्जा कर लिया था। हमलोग चाहते तो जगतसिंह को चंगुल में पाकर उसको खत्म भी कर सकते थे। फिर से युद्ध का प्रबन्ध करने में मानसिंह का काफी समय लग जाता। उसी दरम्यान उन पर फिर से हमला बोल देने पर शायद हम सारे बंगाल पर कब्जा कर सकते थे। कौन बता सकता है? सहसा नवाब बहादुर की मृत्यु हो गयी। हमलोग इस आकस्मिक विपद से कातर और अवसन्न हो गये।

उस समय युद्ध करना उचित नहीं—ऐसा जानकर ही सन्धि की गयी। पठानों ने भयवश तो सन्धि की नहीं। लड़ाई में भी उन्होंने कोई अयोग्यता न दिखायी थी और न मुगलों की सेना का ध्वंस करने से ही हाथ समेटा था। मानसिंह के पुत्र को सही-सलामत पिता के शिविर में जाने देकर उन्होंने शराफत का नमूना पेश किया था। ऐसे मौके पर उन लोगों के प्रति कठोर आदेश का प्रचार कर और वश्यता स्वीकार करवाने में उनके प्रति अशिष्ट

आचरण कर मानसिंह ने कुछ भला काम नहीं किया। ऐसा पत्र न लिखकर यदि वे लिखते "नये नवाब हमारे रिश्तेदारों में शुमार हो गये हैं। उड़ीसा में रहते समय उनसे भेंट हो तो बड़ी खुशी होगी।" तब तो हमलोग भेंट नजराने के साथ उनसे मुलाकात करते और उनके साथ प्रेम बढ़ाने की कोशिश करते।

ऐसी ही तरह-तरह की चिन्ताओं से पीड़ित उसमान के पैर अपने आप अन्तःपुर की ओर चल पड़े। उसमान सोचने लगा, "नहीं, ऐसा नहीं होगा, मेरा अग्रज तो विषयादि में लीन ही है। वह कहीं नहीं जायगा और मैं भी नहीं जाऊँगा। इस पत्र से कोई एक उच्चपदस्थ कर्मचारी मानसिंह से, उनके हमारे इलाके में प्रवेश करते समय, मुलाकात करेगा। जरूरत पड़ने पर रसद आदि का भी प्रबन्ध कर देगा। भेंट-नजराना कुछ भी न दिया जायगा।

अनमना उसमान सोचते-सोचते आगे बढ़ने लगा। किस ओर, कहाँ और किस अभिप्राय से वह जा रहा है यह ख्याल न रहा। गर्वित मानसिंह के पुत्र को हाथों में पाने के बाद भी उसका नाश न करना गलत काम हुआ। आयशा उसके प्रति अनुरागिनी है किन्तु वह आयशा के प्रति आसक्त नहीं, लेकिन इससे उसका क्या लाभ ? उसके जीवित रहते आयशा कभी उसे भूल न सकेगी। उसके मरने पर ही शायद आयशा उसे भूल सके और तभी उस सुन्दरी के हृदय में मेरे लिए स्थान हो सके। जगतसिंह मेरा दुश्मन है, उसे कैद करने के बाद भी मैंने जिन्दा छोड़ दिया है, द्वन्द्व-युद्ध में घटनावश उससे मैं पराजित हो गया हूँ। लेकिन इस कारण क्यों मैंने उससे दुश्मनी छोड़ दी है ? नहीं—नहीं—कभी नहीं। जगतसिंह मेरा पक्का दुश्मन है। वह अगर नजरों में न पड़ता तो आयशा कभी उस पर फिदा न होती। वह जब तक मरेगा नहीं तब तक आयशा का उसके प्रति अनुराग बिल्कुल नहीं घटेगा। छल-कपट से हो, चाहे शक्ति से, किसी तरह से जगतसिंह का विनाश करना ही मेरा व्रत है।

'उसमान !'—सहसा पासवाले कक्ष से रमणी-कंठ से पुकार सुन पड़ी, "उसमान !"

उसमान की चिन्ताओं की सभी गाँठें टूट गयीं। जिस ओर से आवाज आ रही थी उस ओर आँखें घुमा कर देखा, नजदीक ही एक प्रौढ़ वयस की सजीव देवी-प्रतिमा खड़ी है। वही नवाब कतलू खाँ की कश्मीरी बेगम थीं—उसमान की सौतेली मा और आयशा की मा। देखते ही बड़े अदब के साथ उसमान ने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। बेगम साहबा बोलीं, "तुम्हारी ही बात मैं इस समय सोच रही हूँ। आज तुम्हारे पास खबर भिजवाऊँगी ऐसा सोच रखा था। तुम्हारी मा से मैंने कह रखा था कि जैसे ही तुम अन्दर आओ, तुम्हें मेरे पास भेज दें।"

उसमान ने सविनय पूछा, "क्या आज्ञा है!"

बेगम साहबा ने उद्विग्न ढंग से कहा, "ऐसे खड़े-खड़े कैसे बताऊँ। बड़ा ही कठिन विषय है; तुम्हें धीरज धर कर सुनना पड़ेगा। अपने पेट की सन्तान के सिवा बेगम के कमरे में दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता यही जनाना-महल का कानून है। मैं तुम्हें अपने पेट की सन्तान के समान जानती हूँ, मेरे कमरे में बैठकर चन्द जरूरी बातें सुनने में तुम्हें कोई एतराज तो नहीं है?"

उसमान ने जरा चिन्तित ढंग से कहा, "आप मेरी सौतेली मा होनेपर भी अपनी सगी मा के समान हैं, इसी दृष्टि से आपका सम्मान भी करता हूँ। ड्योढ़ी में प्रवेश करना ही कानून के खिलाफ है लेकिन आपका हुक्म मिलने पर मुझे कमरे में भी दाखिल होना पड़ेगा।"

बेगम साहबा बोलीं, "आओ बेटा, मैं तुम्हें इजाजत दे रही हूँ, इसमें कानून तोड़ने का अपराध नहीं लगेगा। और बेटा, इस समय कानून कायदे के तुम्हीं मालिक हो। आओ।"

सिर झुकाये हुए उसमान ने कमरे में प्रवेश किया और आसन ले लिया। बेगम साहबा निकट ही एक कालीन पर बैठती हुई बोलीं, "आयशा के बारे में एक बात बताऊँगी।"

उसमान का दिल जरा तेजी से धड़कने लगा, बोला, "फ़र्माइए।"

बेगम साहबा ने कहा, "तुम्हें ज्ञात हो या न हो कि चाचा की छोड़ी

हुई प्रभूत धन-दौलत की आयशा वारिस बन चुकी है। उसकी दौलत एक राजा की दौलत के बराबर है।"

उसमान—बहुत दिन पहले ऐसी एक बात जरूर सुनायी पड़ी थी लेकिन अब वह भलीभाँति याद नहीं पड़ती।

बेगम—बहुत दिन पहले की ही बात है। दस साल हो गये जब आयशा के चाचाजान का इन्तकाल हुआ था। आयशा को अपनी सारी जायदाद की अकेली वारिस बनाकर पंजाब के सूबेदार ने तुम्हारे पिता के पास खबर भेजी और आयशा की ओर से कब्जा लेने के लिए कहा। स्वर्गीय नवाब साहब आयशा को छोड़कर एकदिन के लिए भी न रह सके, आदमी भेजकर उन्होंने सब जायदाद का इन्तजाम कर लिया था। हमारी ओर से जो व्यक्ति उस जायदाद की देखभाल कर रहे हैं, उनका कहना है कि आयशा अब बालिग़ है। इस समय अगर वह खुद हाजिर न हुई तो उसकी जायदाद जब्त कर ली जायगी इस की आशंका है। अब सारे प्रबन्ध के मालिक तुम हो। इस हालत में क्या करना है सो बताओ।

उसमान—यह सब खबरें आपको किस प्रकार मिलीं?

बेगम—वजीर साहब के पास दूत आया है।

उसमान—मैं जानता हूँ कि आयशा बड़े घराने की बेटी है। आपके भाई कौन सा काम करते थे?

बेगम—मेरे भाई पंजाब के सेनापति थे। और जिस भाई की जायदाद आयशा को मिली है वह जागीरदार थे। आयशा की मा सूबेदार की बेटी थीं।

उसमान—तो यह समझना चाहिए कि आयशा की मा मुगल और बाप पठान थे। ऐसी विपरीत घटना कैसे संभव हुई मा?

बेगम—एक बात में इसका जवाब दिया जा सकता है। बड़े ही शर्म की बात है, बच्चों के सामने अपने प्रेम-प्रणय की बातें करते हुए शर्म से सिर झुक जाता है। तुम्हारे पिता पठान थे और मैं मुगल-कन्या—ऐसी घटना कैसे हो गयी बेटा?

उसमान—यह बात तो समझ में आ गयी, लेकिन आयशा अब

स्वर्गवासी कतलू खाँ की बेटी हो गयी है। पठान-कन्या को, खासतौर से कतलूखाँ की बेटी को, मुगल सुबेदार क्योंकर जायदाद दखल करने देगा ?

बेगम—उसमें कोई दिक्कत न होगी। आयशा के पिता अकबर बादशाह के खास प्रिय व्यक्तियों में से थे, उन्होंने इस बारे में बादशाह से फरमान लिखा लिया था। उस हुक्म को टालना किसी के बूते का नहीं। आयशा भी अकबर की परिचिता है। बादशाह के दरबार और जनाने-महल में बहुत से लोग आयशा को जानते हैं।

उसमान—अब आप क्या करना चाहती हैं ?

बेगम—मेरी कोई इच्छा नहीं, तुम जैसी भी व्यवस्था करोगे वैसा ही होगा। लेकिन तुमको बता देना चाहती हूँ कि आयशा पंजाब जाने के लिए व्याकुल हो गयी है।

उसमान—क्यों ?

बेगम—उसकी सेहत आजकल कुछ ठीक नहीं। इसबार बंगाल से आने के बाद, पिता की मृत्यु के कारण शोक से हो चाहे किन्हीं और कारणों से, आयशा सदा चिन्ताकुल रहती है। देख रही हूँ कि आयशा को खाने से विराग हो गया है, वेश-भूषा पर कोई ध्यान नहीं देती और हमेशा उदास रहती है। उसका शरीर भी सूखता और मुरझाता जा रहा है। आयशा कह रही है कि चन्द दिनों के लिए पंजाब जाने की इजाजत मिले तो उसे सुख मिल सकता है। शायद, स्थान बदलने से उसके शरीर को कुछ फायदा पहुँच सकता है।

उसमान—बड़ी ही चिन्ता की बात है। आयशा की जायदाद का बन्दोबस्त जैसे भी हो, किया जा सकता था। लेकिन आयशा खुद ही यह जगह छोड़नेवाली है! अम्मा, आयशा यह महल छोड़कर कहीं चली जायगी तो सबकुछ अँधेरा हो जायगा।

बेगम—तुम आयशा से बहुत प्यार करते हो। स्वर्गवासी नवाब की और मेरी कितने दिनों की यह तमन्ना रही कि तुमलोगों का शुभमिलन देख कर नयनों को तृप्त करूँ। नवाब बहिश्त चले गये, अभागिन अब भी जिन्दा है। वह तमन्ना अब भी पूरी न हो सकी। कैसे क्या हुआ मालूम नहीं;

देख रही हूँ कि उधर आयशा का ऐसा हाव-भाव है इधर तुम भी हमेशा गमगीन ही बने रहते हो, हमेशा अनमने और चिन्तित रहते हो। जनाने-महल में भी नहीं आते हो। जिस आयशा को हर समय देखना चाहते थे, उसकी भी कोई खबर नहीं लेते। तुमलोगों का यह हाव-भाव मेरे मन को बहुत दुखा रहा है।

उसमान—अम्मा, मेरा कोई कसूर नहीं है, मैं आयशा के लिए जिन्दगी न्योछावर कर देने को हमेशा तैयार हूँ। लेकिन, क्या बताऊँ, आयशा ने दिल में आग जला दी है, जिस आग में वह खुद जलेगी, मुझे जलायेगी और आपको भी उसकी जलन भुगतनी पड़ेगी। खैर, वह बात अभी रहने दीजिए। आयशा की तबीयत खराब है यह सुनकर बड़ी फिक्र हो गयी। आयशा कहाँ है ? मैं उससे मुलाकात करना चाहता हूँ।

बेगम—घड़ीभर पहले यहीं थी। शायद अभी बगीचे-वाले कमरे में गयी हो। पंजाब जाने के बारे में तुम्हारी क्या राय है, कब बताओगे ?

उसमान—मैं आयशा से मिलकर उसका इरादा जान लूँ फिर आपसे बातें करूँगा। अभी मैं बिदा लेता हूँ।

उसमान उठा और विमाता के चरणों पर यथारीति झुक कर बगीचे की ओर चलने लगा।

——)-*-(——

(११)

काला-नाग

उद्वेग-विष से जर्जर और मायूस उसमान ने बगीचे में प्रवेश किया। कहाँ है आयशा ? तालाब के किनारे सोपानों पर उसका प्रिय विश्रामस्थल है। लेकिन वहाँ पर भी आयशा नहीं है। लताकुञ्ज में शिलासन पर भी आयशा अक्सर अकेली बैठती है, लेकिन नहीं, वहाँ भी हुस्न की बेल नहीं है। चम्पक के नीचे प्रस्तर-आसन पर भी कभी-कभी आयशा बैठी

विश्राम करती है, लेकिन नहीं, वहाँ भी वह चम्पकवदनी कमसिन शोभायमान नहीं। विशाल मौलश्री के नीचे भी कभी-कभी आयशा अकेली बैठी रहती है, लेकिन नहीं, वहाँ भी तो वह अतुल पुष्प प्रस्फुटित नहीं। गुलाब के बगीचे में भी कभी-कभी आयशा जाकर फूल चुनती है, लेकिन नहीं, वहाँ भी फूलों की शोभा हरनेवाली वह सुन्दरी नहीं है। आखिर, आयशा गयी कहाँ ?

किसी ओर कोई आदमी नहीं ! चिन्तित उसमान उद्यान के बीच बने महल की ओर जाने लगा। एक बाँदी उनके सामने हाजिर हो गयी और बड़े ही अदब से सलाम करके बोली, "नवाबजादी इस कमरे में हैं।"

उसमान बड़ी ही सावधानी से धरती पर पाँव रखते हुए उस घर में घुसे। लेकिन दरवाजे तक जाकर ही मुँह फेर लिया और पीछे सरक आये। आयशा अकेली—शिथिल वस्त्रों . है। ऐसी दशा में उस कमरे में प्रवेश करना अनुचित समझकर वह चले आये, लेकिन क्या खूब शोभा थी ! संगमर्मर के बने उस बड़े से कक्ष में मखमल के तकिया पर सिर रखे आयशा फर्श पर सो रही थी। विश्व की सारी शोभा, सृष्टि की सारी रमणीयता, विधाता का अनोखा निर्माण-कौशल, सभी कुछ मानो निद्रिता सुन्दरी की देह में मिला हुआ है। सुन्दरी तनिक मुरझायी दुबरायी सी लगी लेकिन उससे क्या उसके हुस्न में कोई कमी आ गयी है ? नहीं। दिवाकर के प्रचंड प्रकाश की अपेक्षा सुधांशु की हल्की ठंडी किरणें जिस प्रकार अधिक रमणीय होती हैं, अल्प-स्वच्छ आच्छादन की आड़ में समुज्वल दीपक जिस प्रकार नयनानन्ददायक होता है, आयशा की रूपराशि भी उसी प्रकार इस रूखेपन के आवरण में अधिक शोभा फैला रही है। सोती हुई रमणी की भी कैसी मोहिनी अदा होती है।

घर में प्रवेश करते न करते ही विगलितवेशा शोभामयी को देखकर ही वह लौट आये। एकबार और हृदय-साम्राज्ञी की माधुर्य-किरण बिना देखे वहाँ से चला आना उनके बस के बाहर था। उन्होंने, दरवाजे से बाहर रहते हुए ही, आयशा का निद्रित भुवनमोहिनी रूप देखने के लिए उधर नजर फेरी।

वह क्या ? आयशा के वक्ष पर यह क्या ? कमसिन के घने काले केशों की वेणी सी वह कौन सी सूक्ष्माग्र वस्तु आयशा के शरीर के एक ओर से

दूसरी ओर तक फैली हुई है ? उसमान उस पदार्थ का एक हिस्सा भर देख सका। उस ओर का कुछ हिस्सा संगमर्मर के फर्श पर पड़ा था जो कि सुन्दरी के वक्ष पर से गुजरता हुआ दूसरी ओर चला गया था। दूसरा छोर उसमान को दिखायी न पड़ सका। पदार्थ सूक्ष्माग्र होने पर भी धीरे-धीरे मोटा होता चला गया था। यह कौन सी चीज है ? लच्छी है—बालों की लच्छी ! यह बालों की लच्छी आयशा के सीने पर इस तरह क्यों पड़ी हुई है ? उसमान सोच में पड़ गये। शोभा और सौन्दर्य देखने की वासना उड़न-छू हो गयी। भय से वह व्याकुल हो गये, झट दूर चले आये। बाँदी दूर खड़ी थी, उसे इशारे से नजदीक बुलाया।

बाँदी के नजदीक आने पर उसमान ने कहा, "नवाब-कन्या सो रही हैं, मैं कमरे में न जा सका। तुम सावधानी से कमरे में जाओ, कोई आवाज न करना, देख आओ कि नवाबजादी के सीने पर क्या रखा है ? झटपट आना, मुझे बड़ी ही चिन्ता बनी रहेगी।

बाँदी खामोश कदमों से कमरे में गयी और तभी डरकर लौटती हुई बोली, "जहाँपनाह ! क्या होगा ? नवाबजादी जरा सा भी हिलीं तो गजब हो जायगा ! उनके सीने पर एक बहुत बड़ा कालानाग पड़ा है।"

उसमान क्षणभर के लिए विचलित हो उठे, उसके बाद पश्चिम की ओर मुँह कर हाथ जोड़ कर खुदा से सकरुण भिक्षा माँगने लगे, उसके बाद पैरों से जूता खोल कर उन्होंने लौंडी से कहा, "तुम यहीं ठहरो और कोई आवाज मत करना।"

कमरे में निःशब्द प्रवेश कर उसमान ने देखा कि साक्षात यम सा कालानाग आयशा की पीठ, बायें बाजू और सीने पर अधिकार जमाये आराम कर रहा है। आयशा का बायाँ हाथ जरा भी हिला या एकबार भी उसने करवट बदलने की कोशिश की तो वह कालानाग अपना फन काढ़ कर उसके कलेवर पर दाँत गड़ा देगा, कितनी भयानक बात थी !

अब भी उसमान स्थिरबुद्धि बना रहा। उसने सोच लिया कि सर्पदंश से आयशा के जीवन का अन्त होगा। विष की जलन से तड़पती हुई संसार की वह साररत्न-स्वरूपा, हमेशा के लिए चल बसेगी। विधाता की उस

अतुलनीय वस्तु के जीवन का अन्त ऐसे होगा। और उसमान यह सब खड़े-खड़े देखता रहे ? असम्भव—असम्भव ! यदि इस अस्वाभाविक ढंग से जीवन-लीला का अन्त होना विधाता की इच्छा हो तो उसमान का कठोर प्राण उससे पहले जायगा, उसके बाद जो कुछ होना हो, हो।

बड़ी ही सतर्कता से उसमान ने उस मृत्युतुल्य सर्प की पूँछ पर हाथ रखा और पलभर में हाथ उठा कर पीछे हट आया। उसी क्षण वह काला नाग मानो बिजली की शक्ति से विचलित हो उठा और साथ ही साथ फन काढ़ कर पलटा। उसमान तनिक खड़ा हो गया। साँप फन काढ़ उसमान को काटने के लिए झपटा। साथ ही साथ उसके मुँह से भयानक शब्द होने लगा और मुँह से सुई सी महीन दोनो जीभें बारबार लपलपाने लगीं। उसमान ने देखा कि साँप आयशा से कुछ दूर हट आया है। तब वह एक माहिर सँपेरे की तरह सर्पदंश से बच कर दूर खड़ा हाथ हिलाता साँप को और दूर हटा लाया। उसके बाद ऐन मौके पर बड़ी ही दक्षता से सहसा साँप का सिर अपने दाहिने हाथ से दबा लिया। इसके वर्णन में जितना समय लगा, काम होने में उसका दसवाँ हिस्सा भी न लगा। साँप अपने शरीर से उसमान का दाहिना हाथ जोर से लपेटने लगा, कलाई से लेकर बाहुमूल तक समूची बाँह अनगिनत लपेटों में जकड़ गयी।

उसमान उसी दशा में घुटनों के बल जमीन पर बैठ गया और अपने सर्पवेष्टित दाहिने हाथ के साथ-साथ बायाँ हाथ भी ऊपर उठाकर बोला, "खुदा, तुम्हारी महिमा कौन जाने ! तुमने मुझ जैसे नाचीज के जरिए आयशा जैसी संसार-सुन्दरी का भला करा दिया, यह तुम्हारी अथाह करुणा है।"

साँप की लपेट के दबाव से उसमान की बाँह में दर्द होने लगा। वह आहिस्ता-आहिस्ता खामोशी से बाहर निकल आया।

दरवाजे के पास खड़ी बाँदी यह सारी भयानक घटना देख रही थी। वह डर से काँपती हुई खिसक कर खड़ी हो गयी और बोली, "जहाँपनाह ! आप धन्य हैं ! लेकिन अब क्या उपाय है ? साँप को हाथ से कैसे छुड़ाएँगे ?"

उसमान ने कहा, "छुड़ाने का कोई तरीका नहीं। अब इसे बगैर टुकड़ा-टुकड़ा किये छुटकारा नहीं।"

बाँदी बोली, "किसे बुलाऊँ ? आप कैसे छुड़ाएँगे, आपका दाहिना हाथ तो बन्द है।"

उसमान बोला, "होने दो, शायद मैं बाएँ हाथ से ही छुरे की मदद से साँप को काट डालूँगा। किसी को बुलाने की जरूरत नहीं, और यहाँ आयेगा भी कौन ? बेगम साहबा यह सब देख कर घबड़ा जायँगी। तुम मुझे होशियारी से एक छुरा लाकर दे सकती हो ? कोई जान न पावे। बहुत होशियारी से ! जल्दी जाओ।"

बाँदी 'जो हुक्म' कहकर चली गयी। साप की जकड़ में बड़ी यातना थी।

छुरा लेकर बाँदी लौट आयी। उसमान ने कहा, "तुम्हें यह सब देखने की जरूरत नहीं। तुम कमरे में नवाबजादी के पास जाओ। उनके नींद से जागने पर भी उन्हें इन सब बातों का पता न लगे।"

बाँदी बोली, "जो हुक्म। लेकिन क्या यह बेहतर न होता कि मैं कुछ देर और जहाँपनाह के पास ठहरती ? मेरी कोई जरूरत तो नहीं ?"

उसमान ने कहा, "शायद अब तुम्हारी कोई जरूरत न पड़े। अगर पड़ी तो मैं तुम्हें बुला लूँगा। तुम नवाबजादी के पास जाओ। ख्याल रखना उनकी नींद जल्द न टूटने पावे। नींद टूट भी जाय तो वे इस घटना के बारे में कुछ भी न जान सकें।"

बाँदी कमरे में तो दाखिल हुई लेकिन नवाब साहब नागपाश से अपनी बाँह कैसे छुड़ाते हैं यह देखने का कौतूहल न रोक सकी। दरवाजे के भीतर से चुपचाप उसमान की करामात देखने लगी।

विशेष दक्षता से बाएँ हाथ में छुरा लेकर उसमान साँप का शरीर काटने लगा। वह बड़ा ही रोमांचकारी काम था। उसके ब्योरेवार वर्णन की जरूरत नहीं। साँप का शरीर बहुत जगहों पर कट गया; लेकिन कोई खंड भी देह से अलग न हो सका। कहीं कुरते की आस्तीन को पार कर छुरे की धार शरीर से न लगे, इस डर से उसमान कोई भी कटा हुआ टुकड़ा बिल्कुल अलग न कर सका। साँप के खून से उसके कपड़े का कोई-कोई स्थान रंगीन हो गया। खंड-खंड सर्पदेह परस्पर संलग्न रहकर माला की तरह लटकने लगी। उस समय भी उन्हीं खंडों में कोई-कोई बड़े जोर से हिल

उठता। उसमान खड़ा था। साँप का शरीर लटकते-लटकते जमीन छूने लगा। सभी अंश कट गये सिर्फ मुँह के पास का हिस्सा कुछ बाकी रह गया। उसमान ने हाथ का छुरा चुपचाप जमीन पर रख बाएँ हाथ से साँप की लटकती छिन्न-भिन्न देह को पकड़ा। उसके बाद दूर कहीं लक्ष्य करते हुए विपुल शक्ति से दानो हाथों में पकड़े साँप को झटके के साथ फेंक दिया। वहाँ पर गिर कर साँप का सिर कटे शरीर से संलग्न छटपटाने लगा और बार-बार मुँह खोलने लगा। नागराज की यह दुर्दशा देखकर और उसके लिए दूसरी कोई व्यवस्था फिलहाल अनावश्यक समझकर उसमान हाथ-पैर अच्छी तरह से धोने की इच्छा से सरोवर की ओर चल पड़ा।

——(०)——

(१२)

तिरस्कार

नवाब-कन्या आयशा की नींद टूटी। बाँदी उनके सामने सलाम कर खड़ी होगयी और उनके इशारे से शरीर के कपड़े सहेज देने लगी। सबकुछ सहेजने-सँभालने के बाद बाँदी जाकर गुलाबजल से भीगा अंगौछा ले आयी। आयशा उससे अपना मुँह पोछती हुई बोली, "क्यों मतिया, तू यहाँ पर कितनी देर से है ?"

मतिया बोली, "जितनी देर से मालकिन यहाँ हैं।"

आयशा कहने लगी, "मैं स्वप्न देख रही थी कि किसी ने मुझे बाहों में बाँध लिया है। उसकी देह कितनी ठंडी थी! क्या तुमने मेरे शरीर पर हाथ रखा था मतिया ?"

"जी नहीं।"

"इस कमरे में क्या कोई और आया था ?"

"जी हाँ।"

"कौन था वह ?"

"नवाब साहब।"

आयशा क्रुद्ध नागिन सी फुफकार उठी, "क्या ? नबाब साहब आये थे ? मैं सो रही थी, मेरा शरीर ठीक तरह से ढका हुआ नहीं था, इस हालत में वे क्यों यहाँ पर आये ? कहाँ हैं वे ?"

मतिया ने डरते हुए कहा, "सब बातें बताना मुझे मना है। जहाँपनाह शायद अब भी बरामदे में हैं।"

आयशा खड़ी हो गयी। जरा बायीं ओर तिरछी की हुई वह गर्दन क्रोध के कारण बड़ी ही सुन्दर लगने लगी। फैली हुई बड़ी-बड़ी आँखें अभी-अभी नींद से जागने की वजह से और क्रोध के कारण लाल हो रही थीं। लम्बा छरहरा बदन चंचल सा लगने लगा। राज-राजेन्द्र-मोहिनी के रूप में चार चाँद लग गये। उन्होंने कहा—'सब बातें बताना मना है!—तब क्या वे कमीने की तरह घिनौने इरादे से मेरे सोते वक्त मेरे कमरे में दाखिल हुए थे ? तो क्या उन्होंने ही मेरी बेहोशी की हालत में मुझे बाहों में बाँधा था ? आओ तुम, चलो,—कहाँ हैं वह ?

गुस्सैल और रूठी हुई आयशा फुर्तीले कदमों से बाहर आयी। मतिया उसके पीछे-पीछे चली। बरामदे पर उसमान नहीं था। आयशा बोली, "यहाँ नवाब-साहब नहीं हैं; मतिया, जरा देखना कहाँ हैं वे ?"

जरा आगे बढ़ते ही मतिया को दिखायी पड़ा कि उसमान हाथ-पैर आदि धोकर सरोवर के सोपान पर बैठा है। उसने उस ओर इशारा करते हुए कहा, "जहाँपनाह सरोवर के किनारे हैं।"

आयशा उस ओर चली। शायद एक भयंकर घटना हो जायगी इस लिए उसका रहना अनुचित न होगा ऐसा सोच कर मतिया उसी जगह पर खड़ी रह गयी।

उसमान दूर से ही आयशा के जेवरों की रुनझुन सुनकर उठ खड़ा हुआ और नवाबनन्दिनी के तनिक नजदीक आने पर पहले उन्हें क्या कह कर सम्बोधित किया जाय, यही मन ही मन निश्चय करने लगा। लेकिन उसे कुछ भी न कहना पड़ा। जरा नज़दीक पहुँचते ही आयशा गुस्से से काँपती, जोशभरे शब्दों में फट पड़ी, "नवाब साहब, तुम्हारी यह कारस्तानी है ? मैं अकेली सो रही थी—कपड़े अस्त-व्यस्त थे। क्यों तुम इस हालत में मेरे

कमरे में दाखिल हुए थे ? मैं तुम्हें हमेशा महानचेता, बुरे कामों से दूर और महापुरुष के रूप में जानती हूँ। क्यों तुमने आज बगैर इजाजत मेरे कमरे में दाखिल होकर अपने ओछेपन का परिचय दिया ?"

उसमान सिर झुकाये शान्तस्वर में बोला, "मुझे लाचार होकर तुम्हारे कमरे में जाना पड़ा था। अपनी खुशी से मैं बिल्कुल वहाँ नहीं गया।"

आयशा ने पहले की तरह गुस्से से कहा, "बड़ा ही उम्दा है तुम्हारा बर्ताव। किसी तरह की लाचारी में भी अन्तःपुर में सोती हुई नारी के कमरे में अकेले दाखिल होने का हक तुम्हें नहीं है। सिर्फ अन्दर आकर ही तुम्हें सब्र नहीं हुआ, तुमने मेरा बदन भी छुआ है। तुमपर लानत है।"

उसमान ने कहा, "आयशा तुम मुझे बिना वजह, बेजा ढंग से फटकार रही हो। तुम जिन घिनौने बर्तावों की बातें कर रही हो, उसमान उन्हें कभी नहीं कर सकता।"

आयशा बोली, "झूठ बकने में तुम्हें शर्म नहीं आती ? अब तुम खुद नवाब हो—महल के तुम सबसे शक्तिशाली व्यक्ति हो। लेकिन क्या इसलिए तुम घर की औरतों पर ऐसा जुल्म करोगे, यही अगर तुमने तय कर रखा है, तो यह जान रखना, नवाब साहब ! कि तुम्हारे ही गुनाहों से यह सल्तनत-जायदाद सब मिट्टी में मिल जायगी।"

उसमान ने सिर झुकाये हुए कहा, "आयशा, तुम मुझे अकारण फटकार सुना कर मेरे दिल को बेहद तकलीफ पहुँचा रही हो। मैं तुम्हें सोती हुई और लापरवाह देखकर तुम्हारे कमरे में दाखिल नहीं हो रहा था। तुम्हारी लौंडी दरवाजे पर थी। वह सारी बातें जानती है। लेकिन बाद में बिल्कुल लाचार होकर ही तुम्हारे कमरे में जाना पड़ा। उस समय तुम्हारा बदन छूना तो दरकिनार तुम्हारी ओर देखने का भी मौका या गुञ्जाइश नहीं थी। तुम्हारी फटकार से चाहे मेरा दिल जलकर खाक हो जाय या तुम्हारी बेएतबारी से मेरी जिन्दगी तकलीफों का घर बन जाय, लेकिन जिस कारण तुम्हारे कमरे में मुझे दाखिल होना पड़ा था मैं कभी उसे नहीं बताऊँगा। तुम्हारी लौंडी से भी मैंने उसके बारे में कहने को मना कर दिया है। आयशा, तुमने मुझ पर अविश्वास कर और नीचकार्य के योग्य समझकर मेरे मन को

काफी ठेस पहुँचाई है। खुदा तुम्हारा भला करे। लेकिन तुम्हारे इस अविश्वास और सख्त बातों से मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे हैं। कब्र की मिट्टी में समा न जाने तक शायद दिल की यह जलन ठंडी न होगी।"

उसमान ने ठंडी साँस लेकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

आयशा बोली, "उसमान, मेरी बातों से तुम्हारे दिल को ठेस पहुँची है यह मैं समझ रही हूँ। लेकिन तुम्हारे आज के बर्ताव से मुझे भी बड़ा दुख पहुँचा है। यह राज़ न खोलने पर तुम्हें हमेशा के लिए दुख सहना पड़ेगा और तुम्हारी तरह पाक-साफ चालचलन के पुरुष को अविश्वासी समझना पड़ा इसलिए मुझे भी जिन्दगी भर बेहद तकलीफ भोगनी पड़ेगी। उसमान, क्यों तुम मेरे कमरे में दाखिल हुए थे तुम्हें यह बता देना लाजिमी है।"

उसमान बहुत देर तक सिर झुकाये सोचते रहे। उसके बाद बोले, "जिन्दगीभर में जिस बात को कभी नहीं बताऊँगा ऐसा सोच रखा था, तुम्हारी जबर्दस्ती से अपनी इच्छा के विरुद्ध मुझे वह बताना पड़ रहा है। तो आओ आयशा, मेरे साथ आओ।"

उसमान आगे बढ़े और आयशा उनके साथ चली। जहाँ वह साँप खंड-खंड पड़ा था वहाँ पहुँचकर उसमान ने कहा, "देखती हो आयशा, यह क्या है?"

आयशा सिहर उठी, बोली, "यह तो भयानक कालानाग है। किसने इसे पकड़कर इस तरह से काट डाला? सिर तो इसका अब भी हिल रहा है। ओह कितना भयानक है!"

उसमान बोला, "मैं तुम्हारी मा के मुँह तुम्हारी सेहत खराब सुनकर तुम्हें देखने के लिये और तुम्हारे साथ कुछ मामलों पर सलाह-मशविरा करने यहाँ आया था। कमरे में प्रवेश करते ही तुम्हें अकेली और सोती हुई देखकर मैं दरवाजे से ही लौट आया। तुम्हारे शरीर पर यह साँप लेटा हुआ था। मैंने अच्छी तरह से देखा नहीं था सो जब यह समझ न सका कि वह साँप है या कोई और चीज तो मैंने तुम्हारी लौंडी से उसे भली भाँति देखने के लिए कहा। जब उसके मुँह से मैंने कालानाग की बात सुनी तब मुझे भले-बुरे का ज्ञान न रहा। अगर तुम

तनिक भी हिलती-डुलतीं तो तुम्हें साँप काट खाता इस सोच में मैं पागल सा हो गया। तब मुझे लाचार हो तुम्हारे कमरे में दाखिल होना पड़ा। उसके बाद मुझे उस साँप को पकड़कर उसकी ऐसी दशा करनी पड़ी। तुम्हें बचाने के लिए अपनी जान खतरे में डालना पड़ा था यह बड़ा ही तुच्छ विषय है इसलिए तुम्हें यह बताने की इच्छा नहीं थी लेकिन तुम्हारे अविश्वास के तीखे जहर की जलन से सभी बातें बतानी पड़ीं। आयशा, जो तुमसे प्यार करता है वह कभी ओछा नहीं हो सकता।"

तब आयशा ने आकाश की ओर आँखें उठाकर कातरस्वर में कहा, "धन्य हो भगवान। तुम्हारी करुणा की कोई सीमा नहीं। तुमने आज भयानक विपत्ति से उसमान का जो मूल्यवान प्राण बचाया है यही मेरे परम सौभाग्य की बात है। इसके बाद सजल नयनों से उसमान के पास जा उसका हाथ थामती हुई बोली, "उसमान भाई, तुमने इस नाचीज औरत के लिए अपने कर्ममय जीवन को खतरे में डाला था, यह तुमने बड़ा ही बेजा काम किया। अब समझ रही हूँ कि यह साँप ही मेरी देह को लपेटे हुए था, और मैं नींद की बेहोशी में यह सोच रही थी कि किसी ने मेरा शरीर छू लिया है। उसमान, मेरी ओर सदा से ही तुम्हारी दया की कोई सीमा नहीं रही। बगैर सोचे-समझे मैंने तुम्हें बहुत सी खरी-खोटी सुना डाली हैं। भाई, कृपया मेरा यह अपराध क्षमा कर दो।"

सजलनयना आयशा उसमान के पैरोंपर गिर पड़ी। बड़े जतन से उसमान ने उस सुन्दरी का हाथ पकड़ कर उठाया। उसके बाद कहा, "तुम्हें क्षमा करें! तुम्हारी कड़ी बातें जिसके कानों में अमृत बरसाती हों, तुम्हारी फटकार सुनकर भी जो गुस्सा नहीं कर सकता उससे क्षमा-याचना कैसी! लेकिन आयशा, तुमने भ्रम में ही सही, लेकिन मुझे जो अविश्वासी, चरित्रहीन तथा नीच चाल-चलन का समझा था अब मैं उसका प्रतिवाद करता हूँ।"

आयशा खामोश सिर झुकाये खड़ी रही। उसमान कहने लगे, "याद है आयशा, तुमने एकदिन बंगाल में, हमारे शिविर के कारागार में जगतसिंह के प्रति अपने दिल में छुपे प्रबल प्रेम का खुले गले से

एलान किया था। मैंने चुपचाप उन कठोर वाक्यों को सह लिया था। आज भी चुपचाप इस जलन को सहता आ रहा हूँ। आयशा ! आज मैं मुक्तकंठ से तुम्हारे दुर्वाक्यों के प्रतिवाद में अपने प्रेम का एलान करूँगा, सारी बातें सुनकर चाहे तुम मुझे नफरत की निगाहों से देखो या भाग्यवानों में अग्रगण्य बना दो। तुम्हारे ही हाथों में मेरा जीवन-मरण, सुख-दुख सब कुछ निहित है।"

आयशा नीरव, नतमस्तक खड़ी रही। उसमान कहता रहा, "सुनो आयशा, मैं अगर अत्याचारी, अविश्वासी और चरित्रहीन होता तो शायद मुझे तुम्हारी यह फटकार कभी न सुननी पड़ती। मैं चाहे छल-कपट से या जोर-जबर्दस्ती से तुम्हें अपने भोग की वस्तु बना लेता। पिताजी ने मेरी शादी का रिश्ता तुम्हारे साथ तय किया था, तुम्हारी मा आज तक दुखी हैं कि मेरे साथ तुम्हारी शादी नहीं हुई। इसलिए अगर मैं तुम्हें जबरन ग्रहण कर लेता तो कोई मेरी निन्दा न करता। लेकिन उस राह पर चलने की इच्छा मुझे एक दिन के लिए भी क्यों नहीं हुई ? क्योंकि मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ। इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध, तुम्हारे चित्त की अप्रसन्नता जब तक बनी रहेगी तब तक तुम्हें मैं अपनी रानी भी नहीं बना सकता।"

आयशा ने बहुत धीमी आवाज़ में कहा, "तुम हमेशा ही मुझपर बहुत मेहरबान रहे।"

उसमान बोला, "मेरी बात अब भी खत्म नहीं हुई। इस समय मुझे तुम्हारा कोई जवाब सुनने की जरूरत नहीं। तुम मेरी बातें सुनती रहो। इस वक्त मैं नवाब हूँ; इस महल में कोई भी ऐसा नहीं, जो मेरी हुक्मउदूली करने की हिम्मत करे। मेरी किसी बात का विरोध नहीं हो सकता। अगर मुझे तुम्हारी देहमात्र की ही जरूरत होती, तो आयशा, मुझे उसके लिए चोर की तरह मौका-महल ढूँढ़ कर तुम्हारा बदन क्यों छूना पड़ता ? मेरी इच्छा होते ही जबर्दस्ती सब लोगों के जानते हुए तुम्हारी देह लेकर मैं मनमाना खेल सकता था। लेकिन क्यों मैंने भूल कर भी ऐसी कल्पना नहीं की ? मैं तुमसे बेहद प्यार करता हूँ। प्यार में क्या जुल्म मुमकिन है ? तुम्हारे बेदिल जिस्म से, प्रेमशून्य मिलन से, आसक्ति-हीन साहचर्य की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। मेरा प्यार गहरा, गाढ़ा और अनन्त है।"

आयशा बोली, "तुम निर्मल चरित्र के हो यह कोई जाने या न जाने मैं खासतौर से जानती हूँ। मैं ऐसा जानती हूँ तभी आज उसके प्रति व्यभिचार की धारणा करने के फलस्वरूप भयानक क्लेश पा रही थी।"

उसमान कहने लगे, "मेरी बात अभी खत्म नहीं हुई। मेरे पिताजी की कितनी खास बेगमें थीं तिसपर कितनी उपपत्नियाँ थीं। नवाब-बादशाहों के लिए ऐसी सहचरियों का प्राचुर्य गौरव की बात है—निन्दा की नहीं। मेरी विवाह योग्य उम्र बहुत दिन हुए गुजर चुकी है। फिर भी मैं विवाह-बन्धन में क्यों न बँधा? सिर्फ तुम्हें पाने की उम्मीद में उसमान अब भी कुवाँरा है। अगर मैं तुम्हें न पाऊँ तो समझ लूँगा कि चिरकुवाँर रहना ही मेरी तकदीर में है। दुनिया में हसीन और गुणवती नारियों की कमी नहीं, लेकिन आयशा, किसी दूसरी रानी को पटरानी बनाने की कल्पना करना तो दरकिनार, किसी की ओर आँखें उठाकर देखने की भी मुझे ख्वाहिश नहीं। तुम्हारे हुस्न से मेरी आँखें चौंधिया गयी हैं, तुम पर मैं फिदा हूँ और तुम्हारे प्यार में मैं पागल हूँ।"

आयशा के नयनों से मोती जैसे आँसू गिरकर धरती सींचने लगे। उसमान कहता रहा, "और भी सुनो। मेरे बड़े भाई ऐयाशी के समुन्दर में गोते लगा रहे हैं। रूपसी रमणियों में तारों से घिरे चन्द्रमा की नाईं वह बैठे हैं। शराब, अदम्य भोग-लालसा की आग में घी का काम कर रही है। वे काम-काज के मामले में उदासीन हैं, फिर भी उनपर कोई दूसरा कलंक नहीं। तुमसे निष्फल-प्रेम कर, प्यास से अपनी जिन्दगी को रेगिस्तान न बना कर, बहुत से मेरे शुभेच्छु मुझे यह मशविरा देते हैं, कि मैं अपने अग्रज के रास्ते पर ही चलूँ। कैसी घृणित मंत्रणा है? जिसने तुम्हें देखा है, तुम्हारी माधुर्यभरी रूपराशि जिसके हृदय पर अपनी छबि छोड़ गयी है, जिसने तुम्हें बिधाता की शुभघड़ी पर बनायी हुई असामान्य सृष्टि के रूप में जाना है, तुम्हारी सर्वगुणाधार मूर्त्ति जिसके हृदय में अमिट रूप से बस गयी है, क्या वह कभी पाप में प्रमत्त हो सकता है? नीच-संसर्ग और घृणित भोग-विलास में डूबकर क्या वह तुम्हें कभी भूलने की कल्पना कर सकता है?"

आयशा चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही। उसके नयनों से ढरकते आँसू

उस समय भी धरती भिगो रहे थे। उसमान अब घुटना मोड़कर आयशा के सामने बैठ गया। एक ओर प्राणहीन विकट-दर्शन सर्प का छिन्न-भिन्न शरीर, दूसरी ओर नारी समाज में सर्वश्रेष्ठ, सुन्दरियों में सिरमौर आयशा; बीच में परम शोभामय, विशालवक्ष वीरश्रेष्ठ उसमान अवनत-देह बैठे हुए हैं। उसी अवस्था में हाथ जोड़े उसमान ने कहा, "आयशा, प्राणेश्वरि, हृदय की देवी, मेरी जीवन-सर्वस्व! बोलो, बोलो, कृपया यह बताओ कि मेरा यह कर्ममय उमंगभरा जीवन क्या तुम्हें इस तरह जलाना चाहिए? मुझे हमेशा के लिए ऐसी मर्मपीड़ा पहुँचाना क्या तुम्हारा धर्म है? सुन्दरि! क्या इस संसार में प्रेम का कोई पुरस्कार नहीं? प्यार का क्या कोई बदला नहीं? जीवन का सर्वस्व दान कर देने की भी कोई कीमत नहीं?"

तब आयशा ने बड़े दुलार से उसमान का हाथ पकड़ा और कहा, "उसमान तुम्हारा प्यार अतुलनीय है। इस संसार में जिस नारी ने तुम्हारा प्यार पाया हो वह धन्य है। इस संसार में यदि प्रेम का कोई पुरस्कार है तो वह तुम्हारा ही प्राप्य है। तुम देवता-तुल्य हो, मैं अति तुच्छ नारी हूँ। मेरे प्रति तुम्हारा यह प्रेम बिल्कुल अयोग्य पात्र के लिए है।"

आयशा चुप हो गयी। उसमान बोला, "बोलो, प्राणेश्वरि, तुम्हारी बातों से मेरे हृदय में अमृत का सोता फूट निकला है। खामोश मत होओ। अपनी बात जारी रखो।"

आयशा कहने लगी, "यदि मुझमें आत्मदान करने की शक्ति होती, तो उसमान, मैं तुम्हारे चरणों पर बिक जाती। लेकिन हाय, मैं मरी क्यों नहीं? उसमान, तुमने क्यों इस अभागिन को साँप के मुँह से बचाया?"

आयशा आगे और कुछ न कह सकी। कपड़े से आँसू पोंछती हुई वह उस स्थान से चली गयी।

उसमान उसी जगह बैठ गया, उसके बाद ठंडी साँस लेता हुआ अपने आप ही बोला, "वही बात! हमेशा से ही वही एक कठोर वाक्य। खुद-कुशी नहीं करूँगा, लड़ाई के मैदान में इस जलन को ठंडा करूँगा।"

सिर झुकाये हुए, कातर भाव से हताश उसमान उस जगह से चला गया।

——)०(——

(१३)

राजलक्ष्मी

महाराज मानसिंह बहुत लोगों से घिरे हुए पुण्यतीर्थ पुरीधाम आए हैं—पुरुषोत्तम का दर्शन करने। समुद्रतट पर एक चौड़े से भूखंड पर उनके रहने के योग्य अनगिनत तम्बू ताने गये हैं। रंग-बिरंगे और खूबसूरत तम्बू। महाराज और उनके स्वजनों के लिए जो तम्बू ताने गये हैं उनकी शोभा का क्या कहना। वे सब तम्बू कीमती बनातों से ढके, उनके ऊपर के हिस्से विचित्र स्वर्ण-कलश और बन्दनवारों से सुशोभित। दास-दासी, शरीर-रक्षक, घुड़सवार, फीलवान, सेना, गोलन्दाज आदि अनुचरों के लिए चारो ओर अनगिनत तम्बू ताने गये हैं। हाथी, घोड़े, ऊँट और बैलों आदि के लिए भी यथायोग्य निवासगृह बनाये गये हैं। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के भंडार और रसोईघर बनाये गये हैं। करीब आधा कोस भूमि को घेर कर महाराज का शिविर लगा है। सजावट की दक्षता से वह कपड़ों से बनी कोठियों से भरा स्थान एक समृद्ध नगर की शोभा दे रहा था।

महाराज के साथ तीन रानियाँ आयी थीं। उन्हीं में एक थीं जोधपुर में जन्म लेनेवाली उर्मिला। उर्मिला महाराज मानसिंह की पटरानी न थीं, फिर भी प्रधान प्रणय-भागिनी थीं। महाराज मानसिंह की बहुत सी रानियाँ थीं। महाराज को बादशाह के काम पर बहुत बार बहुत स्थानों में जाना पड़ता है। रानियों को हरकहीं साथ ले जाना सम्भव न था—संभव होनेपर भी महाराज सबको साथ नहीं ले जाते थे। लेकिन उर्मिला उनकी चिर-सहचरी थीं। रणक्षेत्र और क्षणिक स्थानान्तरवास के अलावा उर्मिला और सब कहीं उनकी परछाईं सी महाराजा के साथ रहती थीं। रानियों में जगतसिंह की जननी, पद, मर्यादा और गौरव में सर्वप्रधान थीं। लेकिन वे हरकहीं महाराज के साथ जाना पसन्द नहीं करती थीं। महाराज भी उन्हें प्रेम की अपेक्षा, दुलार की अपेक्षा भय करते थे। इसलिए महाराज जब बंगाल के सूबेदार बन कर आये तो जगतसिंह की जननी उनके साथ नहीं आयीं। पुरी में महाराज के साथ जो

दो रानियाँ और आयी हैं उनके साथ इस उपन्यास का कोई सम्बन्ध नहीं है।

महाराज श्रीक्षेत्र पुरीधाम में दो सप्ताह तक रहेंगे ऐसा निश्चित हुआ है। दो दिन बीत चुके थे। प्रातःकाल ही रानियों के साथ महाराज मानसिंह देवमन्दिर जाते। वहाँ स्नान, संध्या, पूजा-पाठ आदि समाप्त करते डेढ़ पहर दिन चढ़ जाता। उसके बाद हजार-हजार सिक्के चारो ओर बिखेरते हुए महाराज और उनके सहचर यात्रीगण खेमे में लौटते। हररोज महाराज के नाम संकल्प कर बड़े समारोह से जगन्नाथ देव की पूजा होती। हररोज विभिन्न देशों से आये हुए गरीब लोग महाराज के खर्च से पेटभर भोजन करते।

पठानों के साथ सन्धि के अनुसार पुरीधाम अकबर बादशाह के अधिकार में आ गया था। उड़ीसा के अन्य स्थानों में पठान बेखटके शान्ति भोग रहे थे। पठानों द्वारा उड़ीसा-विजय से पूर्व हिन्दूराजा इस प्रान्त के नरपति थे। उसी वंश के रामचन्द्र देव अब भी मौजूद थे। पूरी का अधिकार हाथ में आते ही महाराज मानसिंह ने उड़ीसा के भूतपूर्व राजवंशीय महाराज रामचन्द्र देव के हाथों में पुरी का शासन और देखरेख का भार छोड़ दिया था। वही राजा रामचन्द्र इस समय महाराज के सुख और आराम और सभी आवश्यकताओं का ऐसा ख्याल रखे हुए हैं कि वे उनके गुण से मुग्ध और आभारी बन गये हैं।

नवाब सुलेमान या नवाब उसमान उनके इलाके में प्रवेश करते समय तो दरकिनार, महाराज के पुरी पहुँचने के बाद भी उनसे आकर नहीं मिले। ख्वाजा ईसा खाँ भी नहीं आये। उनका पत्र लेकर नवाब खानदान का एक व्यक्ति आया था। जो पत्र मिला उसका मर्मार्थ यों है—"उड़ीसा के नवाब महाराज से मुलाकात न कर सकने के कारण दुखी हैं। महाराज जितने दिन पुरी में रहेंगे उसी बीच किसी न किसी दिन नवाब उसमान अपने काम से शायद मुलाकात कर भी लें। महाराज को यदि किसी चीज की जरूरत पड़ी तो खबर मिलते ही उसका इन्तजाम कर दिया जायगा।" पत्र पढ़कर महाराज को कोई प्रसन्नता न हुई। महाराज का पत्र पढ़कर उसमान को भी कोई खुशी न हुई थी। यह पत्र उसमान के अभिप्राय के अनुसार लिखा गया था। नवाब खानदान के व्यक्ति के मुँह महाराज ने सुना कि ख्वाजा ईसा खाँ बहुत बीमार हैं। एक तो बुढ़ापा, तिसपर कठिन रोग। अब उनके जीवन की कोई आशा नहीं।

पठानों का पत्र और आचरण तनिक असन्तोषजनक होने पर भी महाराज मानसिंह बड़े आनन्द से पुरीधाम में दिन गुजारने लगे। धर्म के प्रबल प्रवाह में उनके मन का बहुत मैल बह गया। प्रेम और भक्ति, दया और शान्ति, अनुराग और आकर्षण से उनका चित्त निर्मल हो गया। पठानों के पत्र के बारे में महाराज इस समय कुछ खास चिन्तित नहीं हुए।

पुरी में रहने के तीसरे दिन शाम से पूर्व जगन्नाथ देव की आरती-दर्शन कर महाराज शिविर वापस आए और धीरे-धीरे उर्मिला देवी के तम्बू में प्रवेश किया। वृहद् मंडप कामदार चन्दन की लकड़ी के आवरण से घिरा और मंडप का ऊर्ध्वभाग सोने-जरी के डोरे से बने चित्र वाले कपड़ों से ढका हुआ था। फर्श लकड़ी से ढका हुई और उसपर एक छोरसे दूसरी छोर तक मनोहर कालीन। इस अनोखे वस्त्रगृह में चाँदी के पलंग पर दूध सा शुभ्र बिस्तर बिछा हुआ था। यथायोग्य स्थानों में विभिन्न प्रकार के आसन और शोभन-सामग्री सुसज्जित थीं। गृह के विभिन्न स्थानों पर स्फटिक के बने शमादानों में दीपक जल रहे थे। तरह-तरह की सुगन्ध से सारा घर महमहा रहा था। मंडप जन-शून्य था।

महाराज ने कक्ष में प्रवेश किया। साथ ही पंखा लिये हुए एक दासी भी आयी, दूसरी पानी से भरा स्वर्णघट लेकर और तीसरी पान लेकर हाजिर हो गयी।

महाराज थके हुए से बिस्तर पर पड़ गये, बोले, "महारानी कहाँ हैं?"

एक दासी ने जवाब दिया, "भोजन पकाने वाली के पास महाराज के भोजन का प्रबन्ध देख रही हैं, अभी आयेंगी।"

महाराज बोले, "अभी पान या पानी की कोई जरूरत नहीं, तुमलोग जा सकती हो। तनिक जोर से पंखा करो।"

ताम्बूल और जल-परिवाहिका प्रस्थान कर गयीं। व्यजनकारिणी जोर से पंखा करने लगी।

महारानी उर्मिला मंडप में दाखिल हुईं। वे प्रौढ़वयस की थीं किन्तु देखने पर कतई नहीं लगता कि उनकी उम्र तीस पार कर चुकी है। महारानी जरा ठिंगने कद की थीं, लेकिन शायद, अगर वह लम्बी होतीं तो उनकी शोभा

की हानि ही होती। देह स्थूल नहीं लेकिन चंचलता का पूर्ण अभाव। शरीर भर में वही लुनाई जो पच्चीस साल की युवती की देह पर चमकती है। शरीर का रंग सोना सा और हाथ-पैरों से मानो खून टपकनेवाला है। आँखें अब भी युवतियों सी उज्वल। माथे पर एक भी रेख नहीं। केशराशि कवरीबद्ध और घनी काली। दैव-प्रदत्त रूप-राशि को बढ़ाने के लिए महारानी को किसी भी कृत्रिम प्रयास की जरूरत न थी। लेकिन उर्मिला देवी इस दिशा में भी प्रवीण थीं। जूड़े में मोतियों की माला, जूड़े के ऊपर के हिस्से से गाल तक लटकता हीरा। कानों में चुन्नी, मोती और लाल जड़े झुमके, गले में कीमती मोतियों का हार, कलाई पर चूड़ियाँ, बाहों में मनोहर बाजूबंद, देह के अन्यान्य स्थानों पर यथायोग्य आभूषण, पैरों में झमझमाते नूपुर। बहुत ही महीन बुनावट का, सोने के रंग का लहँगा और देह के ऊर्ध्वभाग पर मोतियों से जड़ी पीले रंग की चोली और सोने के फूल कढ़ी महीन और मुलायम ओढ़नी। उर्मिला देवी हास्यमयी, प्रसन्नवदना तथा परिहासनिपुणा थीं।

शोभा और सौन्दर्य बिखेरती हुई महारानी उर्मिला उस मंडप में दाखिल हुई। लेकिन वह अकेली न थीं। उनके पीछे-पीछे एक दूसरी सुन्दरी सिर झुकाये धीर और मन्दगति से आ रही थी।

उस अधोमुखी नवीना को महाराज न देख सके। उन्होंने कहा, "थोड़ी देर भी इस भुवनमोहिनी को न देख पाने से जो क्लेश होता है उससे शायद एक रात निराहार रहना भी बेहतर है।"

महारानी ने कहा, "जो नटखट खाना-पीना बिसार कर केवल खेलना ही चाहता है उसे सजा देनी ही चाहिए। वही सजा देने के लिए इतनी देर से आयी हूँ।"

महाराज बोले, "लेकिन सुन्दरी, जो भाग्यवान तुम्हारी अधर-सुधा का पान कर अमर हो गया है, उसे दूसरे भोजन की क्या जरूरत है?"

उर्मिला बोली, "जितने ही बूढ़े होते जा रहे हैं उतना ही आपका रस बढ़ता जा रहा है।"

मानसिंह बोले, "उसका भी कारण है, तुम्हारी भी उम्र जितनी

बढ़ती जा रही है फूल से कली बनती जा रही हो। इसलिए इस उम्र में ऐसी सरस कली देखकर, रस आप ही आप लबालब हो आता है।"

महारानी ने देखा कि महाराज धीरे-धीरे बातों को अधिक गाढ़ा बना रहे हैं इसलिए वह जरा खिसक कर खड़ी हो गयीं। महारानी के पीछे जो नवागता रमणी थी वह महाराज की निगाहों में पड़ गयी। महाराज ने साग्रह पूछा, "यह बालिका कौन है?"

महारानी बोलीं, "यह मेरी बहुत दिनों पुरानी एक सहेली की बेटी है। महाराज को प्रणाम करने आयी है।"

नवीना ने गले में आँचल डाल कर महाराज के चरणों में प्रणाम किया। उनकी पदधूलि लेकर अपने सिर से छुवाया। उसकी आखें कुछ सजल हो गयीं लेकिन किसी ने यह गौर नहीं किया। वह फिर सिर भुकाये रानी के पास चली आयी।

महाराज ने कहा, "बड़ी ही सुघर लड़की है। नाक-नक्शा चाल-चलन सभी सुन्दर है। तुम इसे कहाँ से पा गयीं?"

महारानी बोलीं, "अपनी मा के साथ यह भी पुरुषोत्तम का दर्शन करने आयी थी। आज मेरी सहेली अपनी बेटी के साथ मुझसे मिलने आयी थी। मा विदा लेकर चली गयी। बेटी को मैंने छोड़ा नहीं। कुछ दिन अपने साथ रखूँगी, ऐसा निश्चय किया है।"

महाराज ने कहा, "बड़ा अच्छा किया। सुशीला लड़की है। बड़े ही नर्म स्वभाव की। इसपर सौभाग्यवती होने के लक्षण हैं। क्या इस लड़की का विवाह हो गया है?"

उर्मिला बोली, "हो गया है। उस बारे में मुझे महाराज से एक शिकायत करनी है, पर आज नहीं, वह किसी और दिन करूँगी।"

महाराज बोले, "जैसी तुम्हारी अभिरुचि हो। बिटिया को आराम से रखा है न?"

उर्मिला बोली, "हाँ।"

महाराज बिस्तर परलेट कर बोले, "ओह बड़ी गर्मी है।"

उर्मिला और एक पंखेवाली को बुलाने के लिए व्यस्त हो गयीं।

उसी पलंग के बगल में एक पंखा पड़ा था। नवीना ने आगे बढ़कर वह पंखा उठा लिया और महाराज को पंखा झलने लगी। महाराज बोले, "तुम क्यों तकलीफ उठाती हो बिटिया, नौकरानी आएँगी। तुम्हारा हाथ दुखेगा।"

नवीना ने बड़े ही मधुरस्वर में कहा, "आपकी सेवा कर पाना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

महाराज ने उर्मिला से पूछा, "इस लड़की का क्या नाम है?"

महारानी बोलीं, "राजलक्ष्मी।"

मानसिंह बोले, "बड़ा अच्छा नाम है। सचमुच यह राजलक्ष्मी ही है। यह लक्ष्मी जिसके घर में गयी है वह लक्ष्मीयुक्त राजा होगा इसमें कोई सन्देह नहीं।"

दो दासियाँ आ पहुँचीं। महाराज बोले, "बिटिया, तुम पंखा दे दो, उन्हें हवा करने दो। तुझे तकलीफ होगी।"

राजलक्ष्मी बोली, "कोई तकलीफ नहीं हो रही है। लेकिन आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

राजलक्ष्मी लौटकर फिर उर्मिला के पीछे जा खड़ी हो गयी।

महारानी ने पूछा, "क्या अब भोजन लगाने का प्रबन्ध किया जाय। रात हो गयी है।"

मानसिंह बोले, "तुम्हारी मर्जी।"

उर्मिला देवी का हाथ पकड़े राजलक्ष्मी ने अस्फुट स्वर में कहा, "माता जी, आज्ञा दीजिए, मैं भोजन का प्रबन्ध करने जा रही हूँ।"

उर्मिला ने महाराज के मुँह की ओर देखते हुए कहा, "अच्छा चलो तुम। मैं अभी आती हूँ।"

राजलक्ष्मी चली गयी। थोड़ी देर बाद उर्मिला के साथ महाराज मानसिंह भी भोजन-मंडप में पहुँचे। उन्होंने देखा राजलक्ष्मी ने सभी व्यवस्था बड़े उत्तम ढंग से की है। महाराज बड़े प्रसन्न हुए।

उस दिन से राजलक्ष्मी विभिन्न प्रकार से महाराज की सेवा तथा सत्कार में लग गयी। महाराज अन्तःपुर में प्रवेश करते ही राजलक्ष्मी की खोज करने लगे। राजलक्ष्मी जो भी काम करती वही सर्वांगसुन्दर होता। इसलिए

सेवा-टहल के लिए महाराज राजलक्ष्मी पर ही निर्भर करने लगे। तीन दिन के बाद ऐसा हुआ कि राजलक्ष्मी जो भी काम न करती वह महाराज के लिए सन्तोषजनक न होता और जिस भी महत्वपूर्ण कार्य में राजलक्ष्मी का हाथ होता उसे वे सुसम्पादित तथा उत्तम मान लेते।

——):o:(——

(१४)

न्यायपरता

वृद्ध, सुविज्ञ पठान वज़ीर ख्वाजा ईसा खाँ की मृत्यु हो गयी। मामूली बुखार और उसके साथ पेट की गड़बड़ी से वे चन्द ही दिनों में इस दुनिया से कूच कर गये। सुलेमान और उसमान दोनो ही नवाब ख्वाजा ईसा खाँ की बड़ी इज्जत करते थे। बड़े ही समारोह से वृद्ध मंत्री के दफन का कार्य सम्पन्न हुआ। उनके स्थान पर खिज्र खाँ को वज़ीर के आसन पर बिठाया गया। नये वजीर की अवस्था चालीस भी पार न कर सकी थी, वे साहसी और समरप्रिय थे। खिज्र खाँ नवाब उसमान के बड़े ही प्रियपात्र थे। बहुत से मामलों में उसमान और वे अक्सर एकराय होते। इसीलिए उसमान ने उन्हें यह सम्मानित पद प्रदान किया।

यह बात पहले ही बतायी जा चुकी है कि सुलेमान और उसमान दोनों नवाबों ने सलाह मशविरा करके यह तय किया कि इसके बाद हकूमत का काम वज़ीर के हाथों में रखने की जरूरत नहीं है। उसमान खुद सभी काम करेंगे। सुलेमान को राजकार्य में कोई तजुर्बा न था सो उन्होंने इसकी जिम्मेदारी लेने से इनकार कर दिया। भोगविलास में मस्त रह सकने और उसके साधन ठीक तरह बेरोकटोक मुहैया हो सकने से ही वे खुश रहेंगे। उसमान राजकीय मामलों में कोई भी व्यवस्था करें उसमें वे दखल नहीं देंगे।

इसी व्यवस्था के अनुसार काम चलने लगा। उसमान खाँ के नाम से राज्य की विधि-व्यवस्था, शासन और पालन चलने लगे।

इन सारी बातों की इत्तिला महाराज मानसिंह को कर दी गयी। पुरी में नवाब-दूत आकर यह सब समाचार बंगाल-बिहार के सूबेदार को दे गया। नवाब उसमान का भेजा हुआ एक खत भी उसने मानसिंह को दिया। इन सब परिवर्तनों का समाचार मानसिंह ने फौरन दिल्ली में बादशाह को भेज दिया।

मानसिंह ने पुरी में हफ्ताभर रहने का निश्चय किया था; लेकिन दस दिन बीत गये न तो शिविर उठाने का कोई आदेश ही दिया गया और न उस बारे में किसी से उन्होंने कोई अभिप्राय ही व्यक्त किया।

मानसिंह और रामचन्द्र के बीच उड़ीसा के शासन आदि के बारे में कई रोज तक बराबर बातचीत होती रही। वे एकान्त में सलाह करके इस निश्चय पर पहुँचे कि उसमान सुलह की शर्तों का बहुत दिनों तक पालन नहीं करेगा। एक तो नवाब का स्वभाव बड़ा ही उद्दंड है दूसरे है भी बड़ा प्रतापी। ऐसे व्यक्ति के लिए चुपचाप अपनी दशा से सन्तुष्ट बने रहना सम्भव नहीं। खासतौर से हाल में उसने महाराज मानसिंह के साथ जो ढीठ आचरण किया है उससे भावी झगड़ों के लक्षण सूचित हो रहे हैं। उसने मानसिंह से भेंट तक नहीं की, उनके खत का अच्छा सा जवाब नहीं दिया, मानसिंह की सुविधा-असुविधा के बारे में कोई भी खोज-खबर नहीं ली, मानसिंह और उनके साथियों की आवश्यकताओं और अभावों के बारे में भी कोई पूछताछ नहीं की। इसीसे साफ जाहिर होता है कि बादशाह की प्रीति और अनुराग की उसे कोई चाह नहीं, मानसिंह की नाराजगी की भी उसे कोई परवाह नहीं। वह आत्मीयता का बन्धन नहीं दृढ़ करना चाहता। सन्धि से पहले मानसिंह युद्ध के लिए तैयार थे। लेकिन इसलिए सन्धि तोड़ कर वह युद्ध के प्रवर्त्तक नहीं बनेंगे। अगर पठानों ने सन्धि न तोड़ी, तो मानसिंह उनसे कदापि युद्ध नहीं करेंगे, यही उनका संकल्प है।

आज नवाब उसमान खाँ पुरी आयेंगे और महाराज मानसिंह से भेंट करेंगे। सम्मान दिखाने के लिए वह महाराज के पास नहीं आ रहे हैं। ऐसी मन्शा होती तो वह पहले ही आते और उसकी व्यवस्था उसी प्रकार

होती। नवाब साहब ने खबर भेजी है कि निजी आवश्यकताओं से वे आज महाराज से मुलाक़ात करेंगे।

तिपहर को महाराज मानसिंह दरबार-मंडप में बैठे हुए थे। सभासदों के अतिरिक्त महाराज रामचन्द्र देव भी वहाँ उपस्थित थे। अभी नवाब उसमान वहाँ आयेंगे। निश्चित समय पर नगाड़े बजे, तुरही बजी। महाराज मान-सिंह स्वजनों के साथ मंडप के द्वार पर पहुँचे। नकीब ने एलान किया। तत्क्षण नवाब उसमान खाँ सभी के सामने आ पहुँचे। महाराज ने योग्य शिष्टाचार से उनका स्वागत किया। उनके लिए एक सुन्दर सिंहासन लगा हुआ था, नवाब साहब उसी पर बैठे।

कितनी सुन्दर और सौम्य मूर्त्ति थी। तनिक चिन्तित, तनिक सन्दिग्ध होने के कारण चेहरा कुछ फीका होनेपर भी उसमान की मूर्त्ति कितनी शोभामय थी। बड़े ही सुन्दर वेश-भूषा में नये नवाब का शरीर ढका था। बायीं ओर मोती और हीरा जड़ित म्यान में तलवार धरती छूती हुई हिल रही थी, सिर पर बड़ी ही सुन्दर पगड़ी।

नवाब-परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य और कुशल-प्रश्न के उपरान्त, महाराज मानसिंह ने ईसा खाँ की मृत्यु और समाधि आदि के बारे में बहुत सी बातें पूछीं। उसके बाद मरहूम वज़ीर की काफी तारीफ करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे यह भान न था कि उड़ीसा में आकर नवाब से भेंट कर सकूँगा। नवाब का यह आगमन मुझे अपना सौभाग्य ही मानना चाहिए।"

महाराज का यह तानाभरा वाक्य उसमान के दिल में चुभ गया। उसने जरा सोचकर कहा, "आपने ठीक ही कहा। हमलोगों पर आपकी कृपा रहती या हम लोगों को देखने की तनिक भी अभिलाषा होती तो महाराज अवश्य ही दर्शन देकर हम लोगों को कृतकृत्य करते; निजी व्यक्तियोंका दर्शन-लाभ सौभाग्य का परिचायक है इसमें कोई सन्देह नहीं। स्वजनों में परिगणित होने की स्पर्धा हमें नहीं है। ऐसा होता तो उपस्थित होने के लिए आज्ञा न मिलती। जो लोग हुक्म के गुलाम होते हैं, उनके साथ भेंट सौभाग्य के रूप में माना नहीं जा सकता।"

उसमान का जवाब नहले पर दहला ही रहा। उत्तर स्पष्ट नहीं, ताना

भरा नहीं, दुधार भी नहीं। मानसिंह जरा नाखुश हुए; सोचने लगे कि साफ-साफ बातें ही कह दी जायें;—बोले, "हुक्म का गुलाम भी कभी-कभी परमात्मीय बन जाता है। वह उसके गुण और कुशलता पर निर्भर है। नवाब ने अधीनता स्वीकार कर ली है अब स्वजन बनना उनकी मर्जी पर है।"

उसमान बड़ा ही क्षुब्ध हुआ। उसका चेहरा लाल हो गया। उसी के मुँह पर उसे साफ-साफ हुक्म का गुलाम कहा गया। वह बड़ी देर के बाद आपे में आ सका। उसकी सहनशक्ति असीम थी—प्रताप, साहस और वीरता में भी वह अग्रगण्य था। इन सब महत् गुणों के साथ सहनशक्ति का चिरविरोध होना ही स्वाभाविक है, लेकिन उसमान के हृदयक्षेत्र में विरोधी गुण भी स्वच्छन्द रूप से वर्त्तमान थे। आयशा से प्रेम के मामले में उसमान सहनशक्ति का परिचय ही देता चला आ रहा था। इस मौके पर भी उसमान बड़े ही धीरज के साथ स्थिर बना रहा। बहुत देर के बाद उसने जवाब दिया, "बंगाल के सूबेदार मानसिंह बहादुर, मैं आपसे झगड़ने नहीं आया हूँ। आप जैसे व्यक्ति से जबान लड़ाना शोभा नहीं देता। बहुत से संगीन मामलों में आपके साथ बातचीत करने की इच्छा मेरी थी। उसमें दोनो पक्षों के इष्टानिष्ट का प्रश्न था। लेकिन दुर्भाग्य से आपने आज जिसप्रकार बातचीत का सिलसिला छेड़ा है, उससे मेरे विचार में उन बातों के बारे में आपके साथ मशविरा करना ठीक न होगा। मैं अभी आपके खेमे से चला जा सकता था किन्तु विदा लेने से पूर्व मैं आपसे एक बात बता जाने को मजबूर हूँ। मामला आपके परिवार से सम्बन्धित है, उसे व्यक्त करना मेरे लिए लज्जाजनक है। लेकिन धर्म, विवेक और न्याय मुझे बार-बार उत्तेजित कर रहे हैं कि मैं आपसे यह बात कह दूँ। इसी कारण उसे व्यक्त करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य हो गया है। क्या आप वह इस समय सुनने को तैयार हैं?"

महाराज बोले, "आप जो कुछ भी कहेंगे उसे सुनने में मुझे कोई एतराज नहीं। आपके साथ कोई विरोध करना मेरा उद्देश्य नहीं। मैं आपको सिर्फ इतना ही समझाना चाहता हूँ कि आप यदि मुझे अपना स्वजन समझते तो बुद्धिमानी ही करते।"

उसमानने कहा, "उन सब बातों को अभी रहने दीजिए। मैं उन

अप्रीतिकर वाक्यों की टीका करना नहीं चाहता। फिलहाल मैं आपसे एक सवाल पूछने की इच्छा करता हूँ। आपने अपने पुत्र जगतसिंह को आजीवन कारावास का दंड दिया है। जिन कारणों से आपने दंड दिया है, मैंने सुना है कि उनमें नवाबनन्दिनी आयशा के प्रति प्रेम प्रकट करना एक कारण है। क्या यह बात सच है?"

मानसिंह जरा झिझकते हुए बोले, "नवाब-कन्या आयशा के प्रति अनुराग और उनके हृदय में प्रेम उपजाना जगतसिंह का एक संगीन जुर्म था, लेकिन केवल उसी अपराध के लिए उसे दंड नहीं मिला। वह अवशीभूत, राजकार्य में लापरवाह और विरोधियों के साथ सम्बन्ध-सूत्र में बँधा था। इन सब संगीन अपराधों के लिए उसे दंड दिया गया है।"

उसमान बोला, "उनको जो दंड दिया गया है वह न्यायपूर्ण है या नहीं, या उनके किये हुए काम वैध थे या अवैध—इन विषयों पर कुछ भी कहने का मुझे अधिकार नहीं। ये सब विषय मुझे विदित भी नहीं इसलिए यह सब प्रसंग सुनने का या उस बारे में कोई बात कहने की मुझे आवश्यकता नहीं है। जगतसिंह मेरा शत्रु है। विभिन्न कारणों से मैं उसका शुभेच्छु नहीं। लेकिन मैं नीच व्यक्ति की तरह अकारण शत्रु का पतन देखना भी नहीं चाहता या मासूम को अपमानित देखकर भी खुश नहीं होता। इसी कारण आपके सामने अपना पारिवारिक राज़ खोलने चला हूँ।"

मानसिंह बोले, "आप स्पष्टरूप से बतावें कि आपका अभिप्राय क्या है?"

उसमान बोला, "आयशा के प्रेम के बारे में जगतसिंह सम्पूर्णरूप से निरपराध हैं। मैं निश्चितरूप से जानता हूँ कि जगतसिंह ने वाक्य और आचरण में छल या कपट से कभी अयशा से अपना प्रेम प्रकट नहीं किया है। आयशा स्वयं उसके प्रति आसक्त थी। जगतसिंह ने, यह बात आयशा के मुँह से सुनने के उपरान्त भी, किसी दिन भी, उसे इस बात का प्रश्रय नहीं दिया। कभी किसी प्रेमसूचक वाक्य से उन्होंने आयशा का उत्साह नहीं बढ़ाया। जगतसिंह मेरे परम शत्रु हैं फिर भी सत्य के नाते, न्याय की पुकार पर,

धर्म के आदेश से मैं आपको यह बात बताने को मजबूर हूँ। उसी कर्त्तव्य को निभाकर मैंने आज अपने हृदय का भार हल्का किया है।"

मानसिंह बोले, "तो आपने जगतसिंह को द्वन्द्वयुद्ध में क्यों बुलाया था?"

उसमान के चेहरे पर लाजभरी मुस्कराहट छा गयी, बोले, "वह खबर भी आपको मालूम है? बहुत खूब। आयशा मेरे जीवन की ध्रुवतारिका है। आयशा का हृदय जतगसिंह से भरा हुआ है। उस हृदय में इस अभागे के लिए तनिक भी स्थान नहीं। इसलिए जगतसिंह मेरा वध्य है—मेरा परम शत्रु है। जगतसिंह का नाम इस दुनिया से लुप्त हो जाय तो शायद आयशा के शून्य हृदय में मेरे लिए कोई स्थान बने, यही मेरी अन्तिम आशा है। यही आशा दिल में संजोए मैं जीवित हूँ। जगतसिंह को द्वन्द्वयुद्ध में मैं हरा नहीं सका, जगतसिंह के आजीवन कारावास में भी मेरी अभिलाषा पूर्ण होने की कोई संभावना नहीं। क्योंकि जबतक जगतसिंह जीवित हैं आयशा उन्हें भूल सकेगी ऐसी आशा मैं नहीं करता। जगतसिंह की मृत्यु ही मुझे वांछनीय है।"

मानसिंह बोले, "आपकी शत्रुता बड़ी अजीब है। आप शत्रु के खिलाफ झूठी शिकायत धोकर उसे निर्दोष भी प्रमाणित करना चाहते हैं, साथ ही उसकी मृत्यु के लिए व्याकुल हैं।"

उसमान बोला, "धर्म का शासन और स्वार्थ का साधन, इन दो प्रवृत्तियों का अधीन बन मैं आपकी निगाहों में अजीब लग रहा हूँ। लेकिन इस बात से कोई प्रयोजन नहीं। मेरा वक्तव्य खत्म हो गया है। मैं अब बिदा लेना चाहता हूँ।"

मानसिंह बोले, "राजकीय मामलों में दो-एक बातें करने और समझने की आवश्यकता थी। आपका अतिथि के रूप में सत्कार करने की भी अभिलाषा थी।"

उसमान खाँ ने आसन त्याग करते हुए कहा, "राजकीय मामलों में निर्णय दूत और पत्र भेजकर भी किया जा सकता है। और आतिथ्य के सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि जो लोग हुक्म के गुलाम हैं उनके प्रति यह

शिष्टाचार न भी दिखाया जाय तो कोई खास नुकसान न होगा। मैं अब विदा लेता हूँ।"

सभी को सलाम बना और सम्भाषण कर उसमान खाँ मंडप से निकल गये।

महाराज मानसिंह ने राजा रामचन्द्र और सभासदों से कहा, "मुगल-पठान सन्धि के अवसान होने में अब और देरी नहीं।"

मानसिंह ने जरा उद्विग्न से होकर सभाभंग की और जगन्नाथदेव की आरती देखने जाने के लिए तैयारी करने लगे।

——:※:——

(१५)

विदाय

मानसिंह उड़ीसा से चले गये हैं। स्वर्णगढ़ दुर्ग में नवाब उसमान खाँ के पास सारी खबर आ गयी। नवाब-बादशाहों के जासूस शायद पेड़-पत्थरों में भी बसते हैं।

नवाब एकदिन महाराज मानसिंह से मिलने गये थे। भेंट का परिणाम शायद किसी भी पक्ष के लिए सन्तोषजनक न हुआ। पठानों का यह विचार है कि जब नवाब महाराज से मिलने पुरी गये थे तो महाराज को भी उड़ीसा से जाने के पूर्व नवाब से भेंट करना चाहिए था। महाराज ने ऐसा नहीं किया इसलिए पठान मन ही मन क्षुब्ध हुए हैं यह बताना अनावश्यक है।

नवाब उसमान खाँ ने निश्चय किया था कि अविलम्ब ही सन्धि तोड़ना है; ऐसा अपमानजनक आचरण स्मरण कर सन्धि बनाये रखना असम्भव है। उन्होंने यह भी समझा था कि जनसाधारण अपनी सहज दृष्टि से पठानों को ही सन्धिभंगकारी कहेंगे लेकिन वे जानते हैं कि दरअस्ल महाराज मानसिंह ही सन्धि-उच्छेदकारी हैं।

नवाब युद्ध के लिए तैयारी में जुट गये। युद्ध में जीत हो या हार, वे बिना युद्ध के मुगलों की यह प्रधानता चुपचाप सहन नहीं करेंगे। नवाब

उसमान इस मामले में व्यस्त हो उठे। उनके नये बजीर खिज्र खाँ इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए अथक परिश्रम करने लगे।

किले के किसी एकान्त कक्ष में बैठकर उसमान विचार में मग्न थे। सहसा उस कक्ष का एक दरवाजा जो जनाने-महल में खुलता था, खुल गया। दरवाजे के दूसरी ओर एक आवाज़ आयी, "क्या नवाब इस समय अकेले हैं? क्या मैं एकबार बहुत ही मामूली मामले के बारे में नवाब के पास आ सकती हूँ?"

स्वर आयशा का था। जनाने-महल की सीमा पार कर जो कभी कहीं नहीं जाती, जिसे सदा मन में ध्यान करने पर भी उसमान उससे भेंट कर उसे नाखुश करने का साहस नहीं करता, वही आयशा स्वयं आज उससे मिलने की अभिलाषिणी है। कंठस्वर सुनते ही उसमान चौंक पड़े, बोले "मिलने की इजाजत माँग रही हो? यह कैसा तिरस्कार है? यदि भेंट की कोई जरूरत थी तो याद करते ही मैं हाजिर हो जाता। आओ—यहाँ पर कोई नहीं है।"

नवाब उठकर दरवाजे के पास चले गये। सिर झुकाये आयशा धीरे-धीरे उस कमरे में दाखिल हुई। नवाब कमरे के सभी सामनेवाले दरवाजे बन्द कर आयशा के पास आये। बोले, "यह कैसा सौभाग्य है मेरा, आयशा! अचानक मैं कैसे तुम्हें याद आ गया? जो जरा से इशारे पर खुशी-खुशी तुम्हारे सामने हाजिर हो जाता, उसके पास तकलीफ उठाकर आने की क्या जरूरत थी?"

आयशा का चेहरा विषाद से भरा था। जरा ठंडी साँस लेकर उसने सिर झुकाकर कहा, "तुम्हें बुलवा भेजने में कोई नुकसान नहीं था यह जानती हूँ। लेकिन बहुत सी बातें सोचकर ही तुम्हें न बुलाकर खुद ही तुम्हारे पास चली आयी। अगर तुम ऐसा सोचते हो कि मैं तुम्हें कभी याद नहीं करती, तो उसमान, तुम्हें बहुत बड़ा भ्रम है। लेकिन उस बात की इस समय कोई जरूरत नहीं। मैं तुम्हें एक बात बताने आयी हूँ।"

उसमान बोला, "तुम्हारी बातें सुनने में भी मुझे परम आनन्द मिलेगा, बताओ। इस आसन पर बैठकर जो बताना चाहती हो, बताओ!"

आयशा आसन पर बैठ गयीं। आसन पर न बैठने से शायद वह अपना

दिमाग संतुलित रखकर बातें करने में समर्थ न होंगी ऐसा सोचकर वह बैठ गयीं। आसन पर बैठकर आयशा सिर झुकाये खामोश बैठी रहीं और हाथ से, दुपट्टे का छोर लेकर, डोरे की तरह बटने लगीं। थोड़ी देर इन्तजार करने के बाद उस्मान ने फिर कहा, "बोलो आयशा, जिस लिए आयी हो उसे शुरू तो करो।"

आयशा ने दुपट्टा छोड़ दिया। बोली, "आजकल तुम लड़ाई की तैयारी में बहुत व्यस्त हो, तुम्हें शायद अनर्थक बातें सुनने की फुर्सत नहीं। मैं किसी दूसरे समय तुमसे, जो कुछ कहना है, कहूँगी। अब जाती हूँ।"

उसमान बोला, "आयशा, ऐसा करोगी तो मेरे प्रति तुम्हारी निर्दयता जाहिर होगी। तुम्हारी बातें सम्पूर्णरूप से निरर्थक होने पर भी मेरे लिए अत्यन्त सार्थक होंगी। और आयशा, जो व्यक्ति दुनिया भर का सब काम भाड़ में झोंककर भी तुम्हारी बातें सुनने का अभिलाषी हो उसे व्यस्त मानकर मन की बात बताने में कुंठित क्यों हो रही हो?"

आयशा फिर अपने बाएँ हाथ से दुपट्टे का छोर पकड़े दाहिने हाथ की तर्जनी में उसे लपेटने लगी। बातें मुंह में मानो अटकी जा रही थीं। उसमान बोला, "बोलो आयशा, क्या बताना चाहती हो बताओ। तुम्हारी बात शुभ हो चाहे अशुभ, मैं उसे सुनने के लिए बेताब होरहा हूँ।"

आयशा ने दुपट्टे से हाथ समेट लिया, बोली, "तुम मुझ पर जितनी कृपादृष्टि रखे हुए हो, उसकी तुलना नहीं। किन्तु मैं तुम्हारी कोई भी भलाई नहीं कर पाती हूँ।"

आयशा चुप हो गयी। उसमान ने कहा, "मैं तुम पर कौन सी कृपादृष्टि रखे हुए हूँ मुझे नहीं मालूम, फिर भी अगर तुम मुझे अपना हितैषी समझती हो तो मेरा परम सौभाग्य है। लेकिन इस लिए तुम्हारे मुँह से कोई कृतज्ञता सुनना मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तुम मेरी बड़ी हितैषिणी हो, तुम इस नवाबपुरी का आभूषण हो। तुम सभी की भलाई करती फिरती हो, फिर भी आज ऐसी बात क्यों कर रही हो आयशा?"

आयशा ने सिर झुकाये कहा मैंने ऐसा निश्चय कर लिया है कि ऐसा अकृतज्ञ शरीर और मन लेकर मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी।

उसमान उठकर खड़ा हो गया, दुखभरे स्वर में बोला, "तुम यहाँ नहीं रहोगी इस निश्चय के बाद तुम्हें यहाँ कौन जबरदस्ती रोक सकता है ? मैं चाहूँ तो अवश्य ही तुम्हारे काम में बाधा डाल सकता हूँ लेकिन तुम्हारे कार्य में बाधा देना तो दूर की बात, तुम्हारी मर्जी के खिलाफ कोई काम करने की प्रवृत्ति ही मुझमें नहीं है। आयशा यह तुम मुझे, क्या बता रही हो? तुम्हीं नहीं रहोगी तो फिर और कौन रहेगा ? तुम्हारी वजह से तो यह अधम उसमान अभी तक जिन्दा है। अपने दुर्भाग्य से वह तुम्हें न पा सका लेकिन उसने उम्मीद नहीं छोड़ी है, जितने दिनों तक शरीरमें प्राण हैं उतने दिनों तक तुम्हारी करुणा प्राप्त करने की आशा करता रहेगा। वही आशा उसके लिए अब परम सुख का केन्द्र है। उसमान की वह आशा की बेल निर्मूल कर क्या तुम्हें खुशी होगी आयशा ? क्यों उसका वज्रसा हृदय चकनाचूर करना चाहती हो ? हमें छोड़कर तुम कहाँ जाना चाहती हो, आयशा?"

आयशा जवाब में कहने लगी, "उसमान", उसका गला भर्राया हुआ और क्षुब्ध सा था। क्षणभर चुप रह फिर बोलने लगी, "उसमान, तुम्हारा हृदय बड़ा उच्च है; बड़ा ही उदार है। तुम्हारा प्यार बेजोड़ है—मनुष्यलोक में दुर्लभ। लेकिन—"इतना कहकर आयशा फिर चुप हो गयीं।

उसमान ने साग्रह पूछा, "लेकिन क्या, आयशा ?"

आयशा कहने लगी, "लेकिन मेरे दुर्भाग्य से तुम मुझसे प्यार कर केवल मनोवेदना ही पा रहे हो। इस संगदिल से प्यार कर तुम निरन्तर यातना से छटपटा रहे हो। मुझे लगता है कि यह अभागिन तुम्हारे सामने से हट जाय तो दोनों का ही कल्याण हो।"

आयशा चुप हो गयी। उसमान ने धीरभाव से इस हृदयभेदी वाक्य को सुना। बहुत देर बाद बोला, "आयशा इस दुखित व्यक्ति को जान से मारकर तुम्हारा क्या फायदा होगा ? जिस घर में आयशा रहती है उसी घर में यह अधम भी रहता है, यही मेरे लिए परम आनन्द की बात है। मुझसे यह आनन्द छीन कर तुम्हारा क्या फायदा होगा आयशा ? आज तो तुम्हें कमसे कम दूर से तो देख सकता हूँ या तुम्हारा मधुर स्वर सुन लेता हूँ। यही मेरे लिए परम सुख है। मुझे उस सुख से वंचित कर तुम्हें क्या मिल जायगा आयशा ?"

आयशा बोली, "उसमान, तुम बड़े ही धीरप्रकृति के और बुद्धिमान हो। ठंडे दिमाग से सोचकर देखो, इससे तुम्हारा भला होगा। अदर्शन से या दूर चले जाने से तुम शायद अपनी यातना के कारण भूल सकोगे।"

उसमान शुष्क हँसी हँसते हुए बोला, "कैसा भ्रम है यह तुम्हारा, अदर्शन या दूरावस्थान से क्या अपने प्रेमास्पद को कहीं भूला जा सकता है! इस महल में रहते हुए भी मैं कभी तुम्हारे पास नहीं जाता हूँ। बंगाल से लौटने के बाद तुम्हारे साथ दो-एक दिन ही भेंट हुई है। क्या इस लम्बे अदर्शन से मेरे चित्त में कोई परिवर्त्तन आया है आयशा! ऐसा अगर होता तो तुम जिससे प्यार करती हो, उससे तुम्हारी बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई है फिर भी तुम उसे क्यों नहीं भूल पा रही हो, आयशा?"

आयशा बोली, "पुरुषों के बहुत से अवलम्बन होते हैं और बहुत सी आकांक्षाएँ होती हैं। नारी के साथ उनका प्रेम एक खेल के समान ही है। वे अनायास ही प्रेम का बन्धन तोड़ सकते हैं। मुझे भरोसा है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि तुम इस पाषाण-हृदया को आसानी से ही भूल सकोगे।"

उसमान ने कहा, "आयशा—यह दुराशा है, दुराशा। बता नहीं सकता हूँ कि कब्र की मिट्टी में यह आकांक्षा मिट जायगी या नहीं, लेकिन जब तक साँस में साँस है तुम्हें भूलने की कोई आशा नहीं। बता चुका हूँ तुम्हारी आशा ही मेरा आसरा है। मैं यह आशा किये बैठा हूँ कि असह ताप से पत्थर भी पिघल जाता है, ईश्वर की इच्छा हो तो रेगिस्तान में भी समुद्र पैदा कर दे। आयशा, जीवित रहोगी तो कभी न कभी उसमान के प्रेम की प्रगाढ़ता का अन्दाजा लगा सकोगी। शायद उसमान से प्यार करने की इच्छा ही उपजे। उस दिन यह अभागा धन्य होगा।"

आयशा बोली, "तुम्हारा प्यार अति महान है, अति उदार और प्रगाढ़ है यह बात मैं पहले ही बता चुकी हूँ। मैं इसका ख्याल नहीं करती हूँ ऐसा सोच कर मुझ पर बड़ा अन्याय करोगे। मैं तुम्हारे लिए

प्राण देने को तैयार हूँ, तुम्हारे हित में कठिन से कठिन कार्य करने को भी तत्पर हूँ किन्तु हाय, क्या बताऊँ ? मेरा प्राण उत्सर्ग हो चुका है। यह निवेदित वस्तु अन्य किसी को दान करने का अधिकार मुझे नहीं है। जो दिया है उसे वापस लेने की शक्ति भी मुझ में नहीं है। सुख हो चाहे दुख, मैं मन से भी कभी द्विचारिणी नहीं बन सकती। तुम मुझे सदा से क्षमा करते आये हो, अब भी मुझे क्षमा कर दो। उसमान, मैं सविनय निवेदन करती हूँ, व्यर्थ इस अभागिन की आशा में अपना सुख बर्बाद मत करो। मैं सकातर तुमसे यह प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपनी इच्छा के अनुसार एक संगिनी चुन कर जीवन को सुखमय बनाओ, अनर्थक इस नागिन की आशा में मुग्ध रहकर, उसमान ! अपने इस कर्ममय आवश्यक जीवन का ध्वंस मत करो।"

उसमान ने कहा, "आयशा, मेरे जीवन और मृत्यु में तुम ही मेरी आराध्य हो। तुम्हें न पाऊँ तो जिस प्रकार से इतने दिनों से नीरव रहकर यातना झेलता रहा हूँ अब भी वही करूँगा। फिर भी एक आखिरी प्रयास अवश्य करूँगा। तुम जिससे प्यार करती हो, उसी भाग्यवान को मैं अपने हाथों से वध करूँगा। शायद उसके उपरान्त तुम स्वाधीन बनो। तब शायद तुम्हारी कृपा मुझपर भी हो जाय। उस समय भी यदि अभीष्ट सिद्ध न हो, तो भी पठान उसमान अपने प्रतिद्वन्द्वी का नाश कर सकने का सन्तोष प्राप्त कर सुखी तो होगा।"

आयशा बोली, "संसार का अकल्याण बढ़ाने के लिए ही शायद आयशा का जन्म हुआ था। तुमको मैं बहुत प्यार करती हूँ। तुम्हें सुखी देख सकना ही मेरी प्रधान अभिलाषा है। शायद विधाता ने अभागिन आयशा के भाग्य में ऐसा सुख नहीं लिखा है। मेरा वक्तव्य खत्म हो गया है, अब मैं बिदा लेती हूँ। जीवन में शायद तुमसे कभी न भेंट हो। यदि तुम्हारी किसी भी मुसीबत में मैं काम आ सकूँ तो जहाँ भी रहूँगी, हाजिर हो जाऊँगी। भाई उसमान, मुझे दुखियारी

बहिन के रूप में याद रखना। नहीं, नहीं—मुझे हर प्रकार से भूलने की कोशिश करना। ''

उसमान अवनत-मुख आयशा की दिलतोड़ बातें सुन रहा था। वह उस समय विभिन्न प्रकार की भयानक कल्पनाओं में लीन था। जब उसने सिर उठाया तो देखा आयशा वहाँ नहीं है। ठंडी साँस लेते हुए दोनो हाथों से सिर के बाल पकड़ कर नवाब ने कहा, "उफ़!"

—):*:(—

नवाबनन्दिनी

द्वितीय खण्ड

(१)

कारागार

कहाँ है जगतसिंह ? पटना का लौह कारागार। वहाँ जंजीरों में जकड़ा हुआ वह प्रेम का सपना देख रहा था। कारागार अन्धकूप बना हुआ है। जंजीरों से बँधा वीर एक चारपाई पर बैठा था। क्या इस दुर्दशा का कोई अन्त नहीं ? क्या वे फिर कभी चाँद-सूरज का मुँह नहीं देख सकेंगे ? क्या फिर कभी उस जीवन-सर्वस्व तिलोत्तमा से, एकबार के लिए भी, मिलन न होगा ? क्या इस कारागार के अँधियारे में ही जीवन समाप्त होगा ? सभी आशाओं का क्या यही अन्त है ?

मधुरभाषिणी आशा कह रही है, "धीरज धर कर प्रतीक्षा करो, यह बुरे दिन भी बीत जायेंगे। दुनिया में कब किसके बुरे दिन चिरस्थायी हुए हैं ?" जगतसिंह अपने जीवन की अतीत कथा याद कर रहा था। इतने कम समय में क्या-क्या कुछ देखना पड़ा है। इतना सब होने-हवाने के बाद तो सुख से उसकी भेंट हुई थी। इसबार भी क्या वैसा न होगा ?

क्या उसके दुख की भी किसी को चिन्ता है ? क्या कोई उसके क्लेश की अधिकता से वेदना का अनुभव कर रहा है ? जगतसिंह समझ गया कि उसकी विपत्ति का यह सन्देश पाकर तिलोत्तमा अवश्य ही मर्माहत होगी। वह सुघड़ बालिका न जाने कितनी वेदना पा रही है, न जाने इस भयानक

दुश्चिन्ता से उसका शरीर-मन कितना अवसन्न हो गया है। इस दुर्दशा में भी अपने क्लेश की अपेक्षा तिलोत्तमा का चिन्तन ही जगतसिंह को समधिक पीड़न कर रहा था। अगर किसी भी ढंग से तिलोत्तमा को खबर भेजी जा सकती, अगर किसी के द्वारा उसके पास जगतसिंह का कुशल-समाचार पहुँचाने का उपाय रहता तो भी वह थोड़ा-बहुत निश्चिन्त हो सकता था। तनिक शान्ति पा सकता था। लेकिन उपाय भी कहाँ है ?

जगतसिंह ऐसे ही क्लेश और चिन्ता में दिन बिता रहा था। दिन पर दिन बीतता जा रहा था लेकिन कोई भी उपाय सफल नहीं हो रहा था। फिर भी आशा मरती नहीं। अनिद्रा और दुश्चिन्ता से रातें कट जातीं—कर्मशून्यता में दिन बीत जाते पर आशा न जाती।

एकदिन सबेरे जगतसिंह की आँखें लग गयी थीं। सारी रात तिलोत्तमा की फिक्र में गुजरी थी। उस दशा में भी वह निश्चिन्तता का अनुभव नहीं कर पा रहा था। तब भी तिलोत्तमा का उद्वेग उनके हृदय को मथ रहा था।

सहसा उस कारागार का लौह-द्वार घरघराहट के साथ खुल गया। वह आवाज जगतसिंह के कानों में पहुँची, पर कुछ दूसरे रूप में। वह कर्कश ध्वनि उसके कानों में तिलोत्तमा के पैरों की पैंजनियों की मधुर रुन-भुन सी लगी। उसने नींद में देखा कि वह प्रेममयी पत्नी हाथ में फूलों की माला लिये हँसती हुई उसकी ओर आ रही है। युवराज बोले, "तलवार फेंक दिया है, तुम्हारी बात भी मान ली है मैंने, अब माला टूटने का कोई डर नहीं है।"

खुले दरवाजे से कारा-रक्षक कक्ष में दाखिल हुआ और राजपुत्र के बिस्तर के पास खड़ा हो हल्की आवाज में ससम्मान बोला, "युवराज !"

यह शब्द जगतसिंह के कानों में पहुँचा किन्तु कुछ दूसरा रूप लेकर। उन्होंने सुना, तिलोत्तमा कह रही है, "प्राणेश्वर !"

युवराज ने उत्तर दिया, "हृदयेश्वरी !"

कारारक्षक ने फिर पुकारा, "युवराज !"

राजपुत्र बोल पड़ा, "आया, आया, डर क्या है !"

जगतसिंह ने उद्वेग से बिस्तर छोड़ा और खड़ा हो गया। देखा,

सामने कारारक्षक की कुरूप पुरुष-मूर्त्ति खड़ी है। तिलोत्तमा कहाँ है? जिस सुन्दरी पर विपत्ति आयी है, जिसकी रक्षा करने की बात सोचकर वह दौड़ने लगा था वह तिलोत्तमा कहाँ है?

जगतसिंह को वास्तव का ज्ञान हो गया। उसने ठण्डी साँस ली और सोचा, "हाय स्वप्न में भी सुख पाना इस अभागे की तकदीर में नहीं है।" वह वहीं पर दुखित हो बैठ गया। कारारक्षक ने सविनय उसका अभिवादन किया।

जगतसिंह ने हाथों से आँखें मलीं और पूछा, "सबेरे-सबेरे क्या खबर है कारारक्षक?"

कारारक्षक ने सविनय निवेदन किया, "जब से आप कारागार में बन्द हुए हैं उससे कुछ देर बाद से ही एक संन्यासी लगातार राजपुत्र से भेंट करने की कोशिश कर रहा है।"

जगतसिंह ने कहा, "फिर?"

कारारक्षक ने कहा, "हमलोग साहस बटोरकर उन्हें मिलने नहीं दे पा रहे हैं।"

जगतसिंह ने कहा, "तो मुझे यह बात क्यों बता रहे हो?"

कारारक्षक बोला, "अब वह संन्यासी जी कह रहे हैं कि अगर उन्हें मिलने न दिया गया और अगर यह बात महाराज तक पहुँच गयी तो वह नाराज होंगे और राजकार्य की क्षति होगी।"

युवराज ने पूछा, "तुमलोगों ने क्या तय किया है?"

कारारक्षक बोला, "उसे युवराज से मिलने देना ही उचित है ऐसा हमलोगों ने निश्चय किया है।"

जगतसिंह ने कहा, "तो यह सब बातें मुझे क्यों सुना रहे हो?"

कारारक्षक बोला, "उस संन्यासी को मिलने की इजाजत देने पर भी अगर युवराज नाराज हो जायँ और जो काम हम युवराज के हित में सोचकर करें अगर वह अहितकर बन जाय तो?"

युवराज ने तनिक सोचकर कहा, "मेरा जो अहित होता जा रहा है, उससे भी संगीन कोई अहित हो सकता है, ऐसा मैं नहीं समझता। कोई

भी व्यक्ति मुझसे मिलने आवे उससे मेरा क्षति-लाभ कुछ भी नहीं। तुम लोगों को एतराज न हो तो जिसे मर्जी मेरे पास भेज सकते हो। मुझे उससे सन्तोष ही होगा—असन्तोष नहीं।

कारारक्षक प्रणाम कर चला गया। जगतसिंह अकेले बैठे चिन्ता करने लगे, मुक्ति की कोई आशा नहीं। महाराज ने जब आजीवन कारावास का आदेश दिया है तो उसमें कौन तब्दीली ला सकता है? हजारों कारणों के होते हुए भी महाराज स्वयं कभी अपने वाक्य से टलेंगे नहीं। यदि वह ऐसा करें तो उनका पद-गौरव और शासन-शक्ति सभी निन्दित हो जायगा, उनकी धाक मिट्टी में मिल जायगी, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा और न्यायपरता की खिल्ली उड़ायी जायगी।

तो क्या मुक्ति का कोई भी उपाय नहीं है? तो क्या उसे जिन्दगीभर इसी कैदखाने में रहना पड़ेगा? एक उपाय है। बादशाह कृपा करें तो सब कुछ हो जाय। वे अगर कृपा कर जगतसिंह के अनुकूल आदेश दें तो महाराज मानसिंह चाहे उससे खुश हों या नाराज लेकिन प्रतिवाद नहीं करेंगे। लेकिन वह काम करेगा कौन? दिल्ली बादशाह के दरबार में जगतसिंह की अर्जी लेकर कौन जायगा? वहाँ कौन किसकी बात सुनेगा? जगत-सिंह के कल्याण का उद्देश्य लेकर कौन दरबार में उसकी ओर से पैरवी करेगा?

संन्यासी का वेश पहने हुए एक व्यक्ति ने दुखित और अप्रसन्न मुद्रा में सिर झुकाये मन्द चरणों से कारागार के अन्दर प्रवेश किया। उसे देखते ही जगतसिंह पहचान गये और प्रणाम कर बोले, "यह क्या? आप यहाँ कैसे आये?"

आगन्तुक हमारे सुपरिचित अभिराम स्वामी हैं। वे बोले, "मुझे यहाँ देर तक रहने का मौका नहीं मिलेगा इसलिए संक्षेप में सब बातें कर रहा हूँ। तुम्हारी इस सजा के बारे में जिस दिन मैंने सुना है उसके अगले ही दिन मैंने गढ़-मन्दारन छोड़ दिया है। तभी से मैं यहीं पर हूँ।"

जगतसिंह ने पूछा, "गढ़-मन्दारन की खबर कुछ आपको मालूम है?"

अभिराम बोले, "जानता हूँ। सभी कुशल से हैं, तुम्हारे लिए सभी व्यथित हैं। तिलोत्तमा के क्लेश की कोई सीमा नहीं।"

जगतसिंह ने पूछा, "यहाँ चले आने के बाद क्या आपको गढ़-मन्दारन की कोई खबर मिली या नहीं ?"

अभिराम स्वामी बोले, "मिली है। महीना भर हुआ मेरा आश्रित गजपति यहाँ आया था। उसके पास विमला का एक पत्र था। उसी पत्र के द्वारा मुझे वहाँ के सभी की शोकाकुल अवस्था के बारे में मालूम हो सका है। तिलोत्तमा जीवित है लेकिन बड़े ही क्लेश में है, यह खबर भी मुझे मिली है। मेरे प्रयास से अवश्य ही तुम्हें मुक्ति मिल जायगी इसी आशा से वह प्राण धारण किये हुए है।"

कुछ देर सिर झुकाये सोचने के बाद जगतसिंह ने पूछा, "आप इतने दिनों से यहाँ पर क्यों हैं ?"

"तुमसे भेंट करने की आशा में—तुम्हारी मुक्ति का उपाय सोचने में।"

जगतसिंह ने पूछा, "पहली आशा कैसे सफल हो गयी ?"

अभिराम स्वामी बोले, "प्रचुर पुरस्कार के द्वारा कारारक्षक को वशीभूत कर बहुत ही कम समय के लिए मिलने की इजाजत मिली है।"

जगतसिंह ने कहा, "दूसरी प्रचेष्टा सफल होने की कोई संभावना नहीं है। आप अकारण उसके लिए कोई क्लेश मत उठाइए।"

अभिराम स्वामी ने झोले में से एक खंड कागज निकाला और कहा, "निराश मत हो। मेरी दूसरी आशा अवश्य ही सफल होगी। तुम इस कागज पर अपना दस्तखत कर दो, मैं स्याही और कलम दे रहा हूँ। बादशाह के दरबार में मेरा प्रयास असफल न होगा।"

जगतसिंह बोला, "यह बात सही है कि उस जगह कोशिश करने पर कामयाबी की उम्मीद की जा सकती है, लेकिन वह काम करेगा कौन ? आपको किसकी सहायता मिल गयी ?"

अभिराम बोले, "जिन्होंने इस कार्य का भार ले लिया है, जिनके उत्साह और उमंग से हम काम कर रहे हैं, जिनके अर्थ-व्यय और आग्रह से हम सभी काम में कृतकार्य हो रहे हैं, मेरा विश्वास है कि वह सभी काम कर सकती हैं।"

"कौन हैं वह ?"

अभिराम ने कहा, "नवाबनन्दिनी आयशा।"

जगतसिंह ने विस्मय से कहा, "आयशा! आपने उनकी सहायता कैसे जुटा ली?"

अभिराम बोले, "मुझे जुटाना नहीं पड़ा। वह तुम्हारी मुक्ति के लिए जान देने को भी तैयार हैं। तुम्हारी अर्जी लेकर शायद वह खुद दिल्ली जायेंगी। वहाँ पर सभी इन्तजाम हो चुका है। अर्जी लगते ही तुम्हारी मुक्ति का आदेश मिल जायगा इसमें सन्देह नहीं है।"

जगतसिंह ने मन ही मन कहा, "आयशा! चिर-हितैषिणी आयशा! तुम्हारा प्रयास अवश्य ही सफल होगा। तुम इस अकृतज्ञ नराधम के लिए यहाँ आई हो, अशेष कष्ट पा रही हो, यह ऋण जनम-जनम भी मैं चुका न सकूँगा। प्रकाश्य रूप में उसने कहा, "प्रभु, आयशा से इस अधम की भेंट का क्या कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता?"

अभिराम बोले, "उपाय होने पर भी नवाबनन्दिनी तुम्हारे साथ मिलने को इच्छुक नहीं हैं। उनका ख्याल है कि मुलाकात से दोनों पक्षों को क्लेश पहुँचेगा। वह तुम्हारे लिए प्राण देने को तैयार हैं, किन्तु मिलने से घोर आपत्ति है। बाकी बातें किसी समय फिर कहूँगा। इस समय, समय नष्ट न कर इस कागज पर दस्तखत कर दो!"

स्वामी जी के दिये हुए कलम-दावात लेकर जगतसिंह ने कागज पर दस्तखत किया। स्वामी जी ने कागज के उस पुर्जे को जतन से अपने झोले में रख लिया।

प्रहरी ने पुकारा, "संन्यासी जी, बड़ी देर लगा रहे हैं। ऐसी बात तो थी नहीं।"

स्वामी जी बोले, "जा रहा हूँ। युवराज मुझे अब बिदा दो। भरोसा है कि भगवान की कृपा से शीघ्र ही शुभ-सन्देश लेकर फिर मिलूँगा।"

जगतसिंह ने प्रणाम किया। संन्यासी बिदा हो गये।

——)०(——

(२)

पुत्रवधू

महाराज मानसिंह श्रीक्षेत्र पुरीधाम से पटना लौटकर नियमित कर्त्तव्य-पालन में रत हो गये थे। जितने लोग महाराज के साथ तीर्थ-दर्शन के लिए गये थे सभी वापस आ गये थे। एक और व्यक्ति ने इनकी संख्या बढ़ायी थी। वह थी महाराज की अत्यन्त स्नेहपात्री राजलक्ष्मी।

महाराज आये बेशक थे लेकिन कहा नहीं जा सकता है कि क्यों वे अपने चित्त की प्रभूत प्रसन्नता उड़ीसा के समुद्र में डाल आये थे या जगन्नाथ देव के चरणों में उत्सर्ग कर आये थे।

मुगल-पठान में जिस सन्धि की गाँठ लगाकर वे फिलहाल कुछ दिनों के लिए निश्चिन्त हो गये थे वह गाँठ जल्द ही टूटनेवाली है इस बारे में उन्हें कोई सन्देह नहीं था। लेकिन दोष किसका था? मानसिंह और उसमान, इन दोनो में सन्धि की अवहेलना करनेवाला कौन है? पठान ही इसे तोड़ने के कारण बनेंगे इसमें सन्देह नहीं। पठान बड़े ही उद्दंड और चंचलमति हैं इसलिए ज्यादा दिन तक वे सन्धि के इस बन्धन में बंधे नहीं रहेंगे, यह बात सभी आसानी से समझ सकते हैं। खासतौर से उसमान खाँ का साहस और भरोसा अतुलनीय है, वीरता और दृढ़ता उसी प्रकार अनोखी है। ऐसा वीरपुंगव जिस जाति का नेता हो, वह जाति क्या कभी एक दशा में सन्तुष्ट रहकर स्थिर रह सकती है? मानसिंह अर्थात् मुगलपक्ष सीधे-सीधे सन्धि के नियम पैरों तले रौंद कर कलंक नहीं कमायेंगे यह निश्चित है। इसलिए दोष रहे या न रहे सन्धि की अवहेलना के बारे में इतिहास पठानों को ही अपराधी बनायेगा।

फिर भी क्या एक बात इस समय नहीं हो सकती थी? महाराज मानसिंह ने जो पत्र लिखकर उद्धत उसमान को राज्य के सीमान्त पर उनकी आगमन-प्रतीक्षा में रहने को आदेश दिया था, क्या वह उचित था? पुरीधाम में मिलने के बाद वे उसमान के साथ जिस प्रकार के विवाद में लग गये थे,

क्या वह बहुत ही ठीक था ? महाराज मानसिंह अपने मन ही मन इस प्रकार के सवाल लेकर ऊहापोह में खोये हुए थे इसलिए उनका मन प्रसन्न नहीं था। कुवँर जगतसिंह को उन्होंने आजीवन कारावास का दंड दिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कर्त्तव्य-पालन के लिए उन्होंने वीरोचित कार्य ही किया था। उनके इस कार्य से सैनिक, नायक, सेनापति और अधीनस्थ सभी व्यक्तियों के समक्ष उनके कर्त्तव्यपरायणताजन्य गौरव की वृद्धि हुई। स्वयं अकबर बादशाह ने भी उनका यह वीरोचित कार्य देखकर मन ही मन उनकी काफी प्रशंसा की। सभी कुछ भला ही हुआ लेकिन इससे क्या उनका प्राण प्रसन्न हुआ ? योग्य वीर पुत्रको, उसके उन अपराधों के लिए, जो कि जवानी की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी उन्होंने आजीवन कारावास का दंड दिया—क्या उन्होंने ऐसी सजा देकर पिता के योग्य कार्य किया ? उस कठोर आदेश के प्रचारित होने के उपरान्त ही उनका हृदय दुखने लगा। लेकिन वाक्य या आचरण में उन्होंने यह बात कभी व्यक्त न होने दी। महारानी उर्मिला ने एकदिन साहस कर आँसू भरे नैनों से महाराज से कुँवर जगतसिंह के लिए क्षमाप्रार्थना की थी किन्तु महाराज उनको सन्तुष्ट नहीं कर सके। इस कारण जगतसिंह की बातें दबी रह गयीं।

कुछ दिन पहले पुरीधाम में नवाब उसमान ने वह प्रसंग उठाया था। विशेष उदारता के साथ वे, सभी मामलों में न हो, कम से कम एक विषय में जगतसिंह के निर्दोष होने का समर्थन कर चुके थे। जगतसिंह, जानबूझकर तो नहीं, पर अनजाने उसमान के प्रेम में प्रतिद्वन्द्वी हो गये थे। ऐसे शत्रु को किसी विषय में निर्दोष सिद्ध करना नवाब के बड़प्पन का लक्षण था। महाराज समझ गये कि उसमान ने इस विषय में विशेष उदारता का परिचय दिया है।

नवाब-कन्या से प्रेम के सम्बन्ध में जगतसिंह जैसा निरपराध था, अन्यान्य बहुत से मामलों में भी उसका निर्दोष होना असंभव न था। जगतसिंह को पकड़कर कारागार भेज दिया गया है लेकिन उसे किसी मामले की प्रमाण-साक्षी के साथ अपने को निर्दोष सिद्ध करने का मौका नहीं दिया गया था। ऐसा मौका देने पर शायद जिन राजकीय मामलों

में उसे अपराधी सोचा गया है, उनमें से बहुतों का उचित निर्णय भी हो सकता था।

उसका एक दोष अक्षम्य था। वे पिता को बिना बताये हुए वीरेन्द्रसिंह की कन्या से शादी कर चुके थे। कार्य बहुत ही अनुचित होने पर भी, इस अपराध के लिए कारादंड कभी नहीं दिया जा सकता। ऐसा सोचते हुए महाराज को अपनी जवानी के प्रारम्भिक दिनों की एक प्रेम-कथा मन में उभर आयी। मन ही मन वह लजा गये।

चिन्तामग्न और अस्वस्थ-चित्त मानसिंह उर्मिला देवी के मन्दिर में गये। उनके अन्तःपुर में प्रवेश करते ही द्वार पर उर्मिला ने सहास मुख लिये दर्शन दिया। महाराज बोले, "अकेली बैठी हो महारानी? तुम्हारी राजलक्ष्मी कहाँ है?"

महारानी बोलीं, "याद रहे कि राजलक्ष्मी मेरी है, आपकी कोई नहीं है।"

महाराज बोले, "ऐसा तो नहीं कह सकता हूँ। राजलक्ष्मी मेरे बड़े दुलार की पात्री है। मैं उससे बड़ा ही स्नेह करता हूँ। राजलक्ष्मी है कहाँ?"

महाराज पहले तो पलंग पर बैठ गये, उसके बाद लेट गये।

उर्मिला बोली, "आप आ रहे हैं ऐसा जान कर ही राजलक्ष्मी आपके लिए पानी लाने गयी है। आपके मुँह-हाथ धोने का पानी अगर वह ठीक न कर दे तो आप नाराज जो हो जाते हैं।"

मानसिंह बोले, "क्यों न होऊँ? ये दासियाँ पानी में गुलाब और कपूर मिलाकर उसे कड़वा बना देती हैं। पीने के पानी में इतना केवड़ा डाल देती हैं कि किसकी मजाल जो उसे पी जाय। राजलक्ष्मी सब कुछ का ठीक ढंग से प्रबन्ध करती है। वह बड़े ही जतन और लगन से मेरी सेवा करती है। मैं उस लड़की को बहुत चाहने लग गया हूँ।"

महाराज की बात खत्म होने से पहले ही राजलक्ष्मी वहाँ पानी लेकर पहुँच गयी। बात का अन्तिम भाग सुनकर वह समझ गयी कि बात उसी के बारे में हो रही है। लाज और आनन्द से उसके मुखड़े की शोभा बढ़ गयी।

महारानी बोलीं, "महाराज राजलक्ष्मी को चाहते हैं यह उसका बड़ा सौभाग्य है लेकिन मैं करूँ भी तो क्या, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। मैं निपूती हूँ ! महाराज की बहुत सी सन्तानें हैं—यह बात सत्य है कि वे सभी मा के समान मुझसे प्रेम और भक्ति करते हैं लेकिन जब से राजलक्ष्मी ने मुझे मा कहकर सम्बोधित किया है तब से उसकी आन्तरिक भक्ति श्रद्धा और ममता देखकर मैंने उसे अपनी कोख की सन्तान के रूप में ले लिया है। मा बनने का ऐसा सुख मुझे इससे पहले कभी न मिला था।"

महारानी की आँखें सजल हो गयीं, स्वर भर्रा गया। महाराज बोले, "राजलक्ष्मी सचमुच बड़े स्नेह की पात्री है। जब तुम उसे सन्तान समझ कर सुखी हो तो सब तरह से समादर पूर्वक उसे अपने परिवार में स्वीकार कर लेना ही उचित होगा। मैं अभी इस सम्बन्ध में व्यवस्था करता हूँ।"

उर्मिला बोली, "वह कैसे संभव होगा महाराज ?"

महाराज बोले, "क्यों ! मैं ऐसी ही व्यवस्था करूँगा जिससे राजलक्ष्मी के माता-पिता अपनी कन्या हमारे पास रखने को तैयार हो जाँय।"

महारानी बोली, "मेरे कहने पर राजलक्ष्मी के आत्मीय कोई भी आपत्ति करेंगे ऐसा मुझे नहीं लगता।"

महाराज बोले, "तो फिर चिन्ता का क्या कारण है ?"

महारानी ने कहा, "राजलक्ष्मी को अपने पास रखना जितना जरूरी है उसे सब तरह से सुखी बनाना भी उतना ही आवश्यक है। राजलक्ष्मी के रूप और गुण में ऐसी अनुपमा होने पर भी, एक विषय में वह बड़ी अभागिन है। उसका पति उसे स्वीकार नहीं करता !"

"क्यों ?"

उर्मिला बोली, "पति ने सप्रेम उससे ब्याह किया, जतन से उसे ग्रहण भी किया लेकिन अब वह कहते हैं कि पत्नी नीच वंश की है इसलिए ग्रहण के अयोग्य है।"

मानसिंह ने पूछा, "क्यों, क्या कोई वंशगत दोष है क्या ?"

उर्मिला बोली, "जितना मुझे मालूम है उससे यह बता सकती हूँ कि कोई विशेष दोष का मुझे कोई ज्ञान नहीं। लेकिन यदि ऐसा दोष भी

हो तो इस कन्या का क्या अपराध ! राजलक्ष्मी स्वयं निस्सन्देह लक्ष्मी स्वरूपा है । वंश के खोट का बहाना उठाकर ऐसी गुणमयी पत्नी का त्याग करना क्या पति के लिए अधर्म नहीं ?''

मानसिंह ने कहा, ''अवश्य ही इस समय पति का ऐसा विचार बड़ा ही अनुचित और अधार्मिक होगा। किसी भी कारण इस समय इस गुणवती भार्या को दुख पहुँचाना उसके पति तथा उनके सम्बन्धियों के लिए उचित नहीं। राजलक्ष्मी का पति कौन है, वह क्या करता है ?''

उर्मिला ने कहा,''वह महाराज के अधीन एक सैनिक है। महाराज यदि कृपा करें तो राजलक्ष्मी का यह क्लेश अनायास ही दूर कर सकते हैं।''

मानसिंह बोले, ''मेरे अधीन कोई सैनिक। तब तो मैं इसकी सुव्यवस्था अवश्य करूँगा। वह समादरपूर्वक अपनी पत्नी को स्वीकार कर ले, उसके सम्बन्धी भी राजलक्ष्मी का आदर-सम्मान करें इसका प्रबन्ध मैं अवश्य करूँगा। तुम इस बारे में बेफिक्र रहो। लेकिन उसके बाद हमलोगों की क्या दशा होगी ! राजलक्ष्मी को उसका पति अगर स्वीकार करले तो वह तुम्हारे पास तो रहेगी नहीं। तुम्हारा मा बनने का सुख तो जाता रहेगा।''

उर्मिला बोली, ''क्यों महाराज। आपकी कृपा से सभी कुछ सुखमय होगा। वह सैनिक हमारे पास ही रहेगा, कन्या भी मेरे पास रहेगी। बेटी को हँसमुख देखूँगी, उसके सुख से सुखी होऊँगी, दिनभर राजलक्ष्मी महाराज की सेवा करेगी और मेरे आनन्द की कोई सीमा न रहेगी। महाराज आप न्यायी और परम धार्मिक हैं। इतने दयालु होकर क्या आप राजलक्ष्मी का यह क्लेश दूर नहीं करेंगे ? आपकी करुणाश्रिता इस दासी की करुण प्रार्थना पर क्या आप ध्यान नहीं देंगे ?''

महारानी की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। मानसिंह ने बड़े ही आदर से उर्मिला का हाथ पकड़ा और कहा, ''महारानी, मैं अवश्य ही तुम्हारा कहना मानूँगा। किसी प्रकार की आपत्ति या विरोध की मैं परवा नहीं करूँगा। तुम्हारे अनुरोध पर और राजलक्ष्मी को सुखी करने के निमित्त मैं किसी भी कार्य को अकर्त्तव्य नहीं मानूँगा। इससे अगर लोक-समाज या जनता की

नजरों में मुझे हीन या घृणित भी बनना पड़े तो भी मैं पीछे पैर नहीं हटाऊँगा।"

तब महारानी उर्मिला गले में आँचल लपेट कर महाराज के चरणों में हाथ लगाकर बैठ गयीं और बोलीं, "तो महाराज, अपनी पुत्रवधू को ग्रहण कर प्रतिज्ञा की सम्मान-रक्षा करें।"

तत्क्षण सजल नैनों से राजलक्ष्मी आकर महाराज के चरणों में गिर पड़ी और आँसू गिराने लगी।

मानसिंह ने आश्चर्य से कहा, "मेरी पुत्रवधू! यह क्या बात है महारानी!"

उर्मिला ने हाथ जोड़कर कहा, "जी महाराज, राजलक्ष्मी युवराज जगतसिंह की विवाहिता धर्मपत्नी है।"

महाराज ने कहा, "तो क्या राजलक्ष्मी वीरेन्द्रसिंह की कन्या है? नहीं—नहीं, उस कन्या का नाम तो तिलोत्तमा है।"

उर्मिला बोली, "इस राजकुल-वधू का नाम ही तिलोत्तमा है।"

महाराज बहुत देर तक सिर झुकाये चिन्ता करते रहे! उसके बाद बोले, "सुनो पटरानी! तुम्हारी कातर प्रार्थना का अपमान मैं नहीं करूँगा! अपने वचन का उल्लंघन मैं नहीं करूँगा। इसमें सन्देह नहीं कि तिलोत्तमा पुत्र-वधू बनने योग्य पात्री है। मै इसे समादर ग्रहण करता हूँ। तुम तिलोत्तमा के लिए आज से राजमहिषी की तरह का सभी प्रबन्ध कर दो! अब से नववधू तुम्हारी नित्य-संगिनी बन गयी।"

रोती हुई तिलोत्तमा ने महाराज की पदधूलि लेकर सिर से छुवायी और जरा दूर खिसककर मुँह आँचल से ढाँपकर रोने लगी। महारानी उर्मिला ने भी महाराज के चरणों के निकट से तनिक दूर हटकर उनको प्रणाम किया और बोलीं, "दासी सदा से महाराज की करुणा प्राप्त कर कृतार्थ होती आय है। आज का यह अनुग्रह दासी के जीवन की चिरस्मरणीय घटना है।"

मानसिंह बोले, "मा राजलक्ष्मी! अब तुम सचमुच मेरी मा हो। मा का काम करो, मुझे भूख लगी है, मुझे खाना दो मा।"

तिलोत्तमा भोजन का प्रबन्ध करने चली गयी।

——*——

(३)

आयशा

पटना लौटने के कुछ दिनों के बाद ही महाराज को अपने खुफियों की मार्फत खबर मिली कि पटना के एक धनी पठान के घर पर कतलू खाँ की बेटी आयशा मेहमान के रूप में निवास कर रही हैं। महाराज ने विभिन्न प्रकार से इस समाचार पर विचार किया। लेकिन इससे कोई खतरे की सम्भावना है या किसी प्रकार की सावधानी की आवश्यकता है ऐसा उन्हें नहीं लगा। उड़ीसा के साथ वे सन्धि-सूत्र से बँधे हुए थे; चुनांचे वहाँ का कोई भी मामूली या असामान्य व्यक्ति पटना ही क्यों दिल्ली भी आ जा सकता है। इसमें आपत्ति का कोई कारण नहीं हो सकता। लेकिन अगर नवाब-तनया प्रकाश्य-रूप से सूबेदार को सूचित कर के आतीं तो मानसिंह को उनकी यथारीति आव-भगत करना, उनकी सुविधा-असुविधा के प्रति दृष्टि रखना, उनकी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति का प्रबन्ध करना तथा कुशल-समाचार आदि लेना पड़ता। लेकिन जब वह इस ढंग से नहीं आयी हैं तो उनके बारे में मानसिंह का भी कोई कर्त्तव्य नहीं है।

बहुत से पठान विभिन्न कार्यों के सिलसिले में पटना में रहते हैं। बहुतों की माली हालत बहुत ही अच्छी है और वे काफी इज्जतदार लोग भी हैं। भारत में मुगल-पठान का झगड़ा बहुत दिन हुए खत्म हो चुका है। इब्राहीम लोदी के साथ दिल्ली का सिंहासन पठानों के हाथों से निकल गया है। दाऊद खाँ बंगाल का तख्त खोकर उड़ीसा भाग गया था। उड़ीसा में पठान अब भी आजादी के लिए लड़ाई-झगड़े में जुटे रहे, लेकिन बंगाल के पठानों ने बहुत दिन हुए अपने भविष्य के सामने सिर झुका दिया है। बंगाल के पठानों के मन में जो कुछ भी हो, पर ऊपर से उन लोगों ने मन के असन्तोष की आग बुझा ली है और अपनी-अपनी जिन्दगी बिता रहे हैं। इसलिए आयशा के गुप्त आगमन से या पठान के घर पर टिकने में मानसिंह ने सन्देह का कोई कारण नहीं देखा।

हफ्ते भर बाद भयानक समाचार पाकर मानसिंह के मन की शान्ति

का विस्तार करती हुई आगे बढ़ती आ रही है। उसके निकट आने पर मानसिंह बोले, "मा, तुम मेरी बेटी हो। राजनैतिक कारणों से मैं तुम्हें क्लेश पहुँचाने को मजबूर हूँ। मैंने तुम्हें बेटी के रूप में सम्बोधित किया है इसलिए तुम्हें जो कुछ कहना है बिना संकोच कह सकती हो।

आयशा बोली, "पिताजी, आपने मुझे कैद कर रखने का निश्चय किया है। पिता के कैद में कन्या यदि कुछ दिनों तक रहे तो वह अनुचित न होगा मैं खुशी-खुशी आपके कैद में रहूँगी। इस बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है।"

मानसिंह बोले, "कहने को शायद तुम्हारे पास कुछ भी न हो किन्तु मेरे पास पूछने के लिए बहुत से सवाल हैं। तुम अगर उनका सही-सही जवाब दो तो बड़ी खुशी होगी।"

आयशा बोली, "आयशा के जीवन में छुपाने लायक घटना कोई है ही नहीं इसलिए झूठ बोलने की भी कोई जरूरत नहीं; जो जी चाहे आप पूछ सकते हैं।"

मानसिंह बोले, "तुम नाते-रिश्तेदारों का साथ छोड़कर उड़ीसा से पटना क्यों आयी हुई हो?"

आयशा ने जरा सोच कर कहा, "सच्ची बात ही बताऊँगी। आपके पुत्र जगतसिंह को कैद से रिहा कराने की नीयत से यहाँ आयी हूँ।"

मानसिंह अपने पुत्र की मुक्ति के लिए बरा व्याकुल हो उठे थे इसलिये ऊपर से जाहिर न करने पर भी अन्तर में उसी के बारे में उधेड़बुन में फँसे थे और कोई भी जरिया ढूँढ़े नहीं निकल रहा था। अब आसानी से जरिया निकलते देख वह मन ही मन बहुत खुश हुए—बोले, "उसके लिए तुमने कौन सा उपाय सोचा है?"

आयशा—बादशाह के पास युवराज की ओर से अर्जी भेजना।

मान०—मैं सूबेदार हूँ। मुझे न बताकर बादशाह के पास अर्जी भेजने की कोशिश तुम क्यों कर रही हो?

आयशा—आप इस सम्बन्ध में कोई सहायता नहीं कर सकते। आपने स्वयं खुले दरबार में अपराध निर्णय कर युवराज के प्रति जिस दंड की व्यवस्था की है आज उसे लाँघने की इच्छा आपको नहीं होगी। यदि ऐसी

ही इच्छा हो तो समझना पड़ेगा कि अम्बरेश्वर का सर्वत्र-व्याप्त आदर बिल्कुल व्यर्थ है। चूँकि हमलोग महाराज की असली इज्जत को जानते हैं इसलिए राजपुत्र की अर्जी उनके पिता के सामने पेश न कर उनके पिता से अधिक उच्चपदस्थ व्यक्ति के पास भेजने का प्रबन्ध किया है।

इस उत्तर से महाराज बहुत खुश हुए। उन्होंने पूछा, "अर्जी तैयार होने और भेजने में कौन सी देरी है?"

आयशा बोली, "अर्जी तैयार और सादारित होकर भेज दी गयी है। शायद वह अब तक प्रयाग पार कर चुकी हो।"

मान०—अर्जी पर क्या कारारुद्ध जगतसिंह के जाली दस्तखत हैं?

आयशा—नहीं महाराज, कारारुद्ध जगतसिंह ने स्वयं सब मामला समझ-बूझ कर दस्तखत किया है।

मान०—कारागार में उसके पास अर्जी कैसे पहुँची?

आयशा—इसके लिए मुझे काफी तकलीफ उठानी पड़ी थी। कारारक्षकों को काफी रकम देने का लोभ देकर उन्हें वश में करना पड़ा था।

मान०—समझा कि तुम बड़ी बुद्धिमती और कार्यकुशला हो, लेकिन खास काम के बारे में तुमने क्या इन्तजाम किया है? इसमें सन्देह है कि यह अर्जी बादशाह के दरबार में कभी पहुँच भी पायेगी?

आयशा बोली, "महाराज! उस सम्बन्ध में काफी अच्छा इन्तजाम हो गया है। अर्जी बादशाह के हाथों में पहुँच कर रहेगी और तत्काल अनुकूल आदेशदिया जायगा। इस बारे में मुझे कतई कोई सन्देह नहीं।"

मानसिंह बोले, "तुम्हारा उद्देश्य क्या है? इस असामान्य साहसिक कार्य में तुमने क्यों हाथ डाला है? इसका कारण जानना मेरे लिए बहुत आवश्यक है।"

आयशा सिर झुकाये सोचने लगी, उसे कोई जवाब न सूझा।

महाराज बोले, "मैं समझ रहा हूँ कि इस सवाल का जवाब तुम तत्काल नहीं देना चाहती हो। अतः इस बारे में और कोई सवाल नहीं करूँगा। क्या तुमने कभी कारागार में जगतसिंह से भेंट की है?"

"नहीं।"

जाती रही। नवाब उसमान खाँ ने पुरी पर हमला बोल दिया था। रामचन्द्र देव भाग खड़े हुए थे।

समाचार सच था। यह हम जानते हैं कि उसमान खाँ शुरू से ही सन्धि के बन्धन से सन्तुष्ट नहीं थे। मानसिंह के किसी-किसी आचरण से वे बहुत नाराज हुए थे यह भी हमें मालूम है। उन्होंने अपने अग्रज सुलेमान से मशविरा किया। वह विलासमग्न और भोग-सुख में मत्त युवक भी सब विवरण सुनकर बेहद जोश में आ गया। सन्धि तोड़ना उनका भी अभिप्राय था। मानसिंह के चले आने के थोड़े दिन बाद उन्होंने पुरी पर आक्रमण कर दिया।

उसमान के उद्धत भाव से मानसिंह बहुत ही नाखुश हुए थे। एकसाथ सभी पठानों को पैरों से रौंदने और पीस डालने का उन्होंने निश्चय कर लिया। स्वयं युद्ध करने के लिए उड़ीसा जाना उन्होंने निश्चित किया। सेना और सेनापतियों को तुरन्त तैयार होने की आज्ञा दे दी गयी।

पठानों को, विशेषरूप से उसमान को अपमानित और विपीड़ित करने का एक सहज उपाय मानसिंह को सूझ गया। उन्होंने निश्चय किया कि नवाब-तनया आयशा सारी नवाब-नगरी की बड़ी ही दुलारी और प्यारी है। खासतौर से वह नवाब उसमान खाँ की प्रेयसी है। उसे अगर बन्दिनी बनाया जा सके तो उसमान खाँ अवश्य ही बहुत कातर होगा। युद्ध में तो उसे मटियामेट करना होगा किन्तु उसको यातना देने की ऐसी सहज और मुट्ठी में आयी हुई तरकीब को छोड़ देने की महाराज की इच्छा न हुई।

आयशा जिसके घर में प्रच्छन्न-वास कर रही थी, उसका नाम ताज खाँ था। स्वर्गीय कतलू खाँ की कश्मीरी बेगम का यह ताज खाँ घनिष्ट समीपी था। उसी नाते ताजखाँ और उसकी पत्नी—दोनो जब-तब नवाब कतलू खाँ के यहाँ आते-जाते थे। इसी कारण आयशा के साथ इन लोगों की अतिशय आत्मीयता हो गई थी। पटना में उनके यहाँ, किसी अवसर पर आयशा का आगमन हो, इसकी ताक में ताज खाँ की स्त्री सदैव यत्नशील रहती थी। चिरकाल के यत्न के उपरान्त, इस बार आयशा सहसा स्वयं ही पत्र लिखकर और सारी व्यवस्था करके पटना आ मौजूद हुई। ताज खाँ और उसकी

पत्नी अति समादर के साथ नवाबनन्दिनी को घर लाये। बड़े आनन्द मे उन लोगों का दिन व्यतीत हुआ।

अकस्मात संध्या समाप्त होते ही, मुगल सैनिकों ने ताज खाँ का घर घेर लिया। इन लोगों को कोई समाचार न था, इसलिये इस प्रकार की सरकारी दौड़ का कोई कारण वे अनुमान न कर सके। घेरा डालनेवाले सैनिकों से इस संबध में जिज्ञासा करने पर कोई संतोष-जनक उत्तर न मिल पाया। तब ताज खाँ ने महाराज मानसिंह के साथ साक्षात् करने के लिये कातरभाव से अनुमति चाही। रक्षकों ने उस प्रार्थना पर स्वीकृति दे दी।

भोर पहर सैनिकों से घिरे हुए ताज खाँ की, बंगाल-बिहार के सूबेदार के सम्मुख, पेशी होने पर विदित हुआ कि उनके निवासस्थान पर ठहरी हुई कतलू खाँ की कन्या की निगरानी ही मुगलों का प्रयोजन है। यदि ताज खाँ नवाबनन्दिनी को मुगलों के हाथ समर्पण कर दें, तो वे तत्काल मुक्त कर दिये जाँयगे। पठान ताज खाँ को यह प्रस्ताव नितात असंगत प्रतीत हुआ। वह व्यवसायी है; उसके यहाँ सदैव अनेक व्यक्ति आते-जाते रहते हैं। उनके आवागमन में व्यवधान पड़ेगा, फलस्वरूप उनकी तथा औरों की भी आर्थिक क्षति होगी। यह निवेदन महाराज के सम्मुख रखा गया। आयशा को अपनी हिरासत में बगैर लिये महाराज कोई भी बात सुनने को तेयार नहीं हुए। महाराज ने यह समझा दिया कि नवाब तनया का किसी प्रकार का अपमान न होगा। उनकी पदमर्यादा के अनुसार ही उन्हें अवरुद्ध रखा जायगा। ताज खाँ को अपनी जान दे देना कबूल था लेकिन उनके घर में आयी हुई नवाबनन्दिनी को छोड़ना कबूल न था। इसलिए प्रहरियों से घिरे हुए ताज खाँ घर लौट आए।

आयशा को सभी बातें मालूम हो गयीं। उन्होंने ताज खाँ के साथ जाकर मानसिंह से मिलने की इच्छा प्रकट की। समय और स्थान तय किया गया। यथासमय दो लौंडियाँ और ताज खाँ के साथ प्रहरियों से घिरी आयशा की पालकी निर्दिष्ट भवन में दाखिल हुई। निर्भीक और असंकुचित आयशा मानसिंह के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मानसिंह ने देखा, सजीव देवीमूर्त्ति सगौरव अपनी शोभा और महिमा

(४)

पराजय

उड़ीसा में भयानक युद्ध की आग भड़क उठी। पठानों ने सन्धि का सम्बन्ध तोड़ कर पुरी पर हमला बोल दिया था। राजा रामचन्द्र देव युद्ध के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए पुरी जल्द ही पठानों के कब्जे में आ गयी। रामचन्द्र पुरी छोड़कर भाग गये थे और महाराज मानसिंह के पास खबर भिजवाकर निश्चिन्त हो चुके थे।

महाराज मानसिंह विशेष आयोजन कर उड़ीसा के लिए रवाना हुए। बर्दवान से सैयद खाँ भी काफी फौज के साथ उड़ीसा की ओर बढ़े। एक तो सन्धि की अवहेलना से उपजा क्रोध, तिस पर हिन्दुओं के प्रधान तीर्थ पुरुषोत्तम पर आक्रमण, और फिर उसमान का दम्भपूर्ण आचरण। पठानों को जड़मूल से नष्ट करने को मानसिंह कटिबद्ध हो गये थे।

पठानों ने भी तैयारी में कोई कमी न की थी। धारपुर के युद्धविजयी नवाब उसमान खाँ यह जानते थे कि सन्धि तोड़ते ही लड़ाई छिड़ जायगी। इसलिए वह बहुत दिनों से लड़ाई की तैयारी करते चले आ रहे थे और लड़ाई के लिए पूरी तौर से तैयार थे।

युद्ध का विस्तृत विवरण इतिहास में वर्णनीय है। उसका विस्तृत विवरण देना हमारे लिए अनावश्यक है। यहाँ पर संक्षेप में आवश्यकीय बातें ही लिखी जा रही हैं।

वनपुर के पास मुगल-पठानों में पहला संघर्ष जो हुआ तो घोर लड़ाई ठन गयी। लड़ाई के मैदान में पठान बहुत से हाथी ले आये थे। उन हाथियों को उन्होंने सामने रखा। मुगल बहुत सी तोपें लेकर आये थे। तोप का घनघोर नाद सुनकर, और कोई-कोई हाथी तोप के गोले से घायल होकर पागल से हो उठे और बेहद विचलित हो उठे। हाथियों के झुंड को रक्षक किसी भी प्रकार स्थिर न रख सके। वे असंयत और उच्छृंखल हो पीछे की फौज को रौंदते हुए चारो ओर भागने लगे। युद्धक्षेत्र के सम्मुख हाथियों

को रखने की बेवकूफी के कारण पठान-फौज तितर-बितर हो गयी और बहुत से लोगों ने हाथियों के पैरों के तले जान दे दी।

फिर भी अजेय पठान सँभल कर लड़ने लगे लेकिन शुरू में ही उनकी उमंग पर चोट पड़ने के कारण वे हतोत्साह हो गये थे। बहुत घमासान लड़ाई हुई किन्तु अन्त में पठानों को हार माननी पड़ी।

वनपुर में यह लड़ाई हुई थी। इस युद्ध के कारण वनपुर इतिहास-प्रसिद्ध हो गया। वनपुर के युद्ध में विजय पाने के उपरान्त मुगल पक्ष के नेता महाराज मानसिंह यों ही शान्त नहीं हो गये। उड़ीसा से पठानों की शक्ति को दूर करना ही उनका संकल्प था। वे एक किले के बाद दूसरे किले पर, एक नगर के बाद दूसरे नगर पर आक्रमण करने लगे। जलेश्वर और कटक मुगलों के अधीन हो गये। अल-दुर्ग पर भी मुगलों की विजय-पताका फहराने लगी।

मुगलों ने स्वर्णगढ़ पर भी हमला किया। इस जगह पठानों ने डट कर मुकाबला किया पर अन्त तक वे ठहर न सके। किसी भी युद्ध में वे कामयाब न हो सके। स्वर्णगढ़ भी मुगलों के कब्जे में आ गया।

इसलिए उसमान को हार माननी पड़ी। नवाब सुलेमान और उसमान ने हर तरह से अकबर की अधीनता मान ली और कर देने वाले भूस्वामी की हैसियत स्वीकार कर ली। उड़ीसा सम्पूर्णरूप से मुगल-साम्राज्य का एक अंग हो गया।

ठीक समय पर उड़ीसा-विजय का समाचार बादशाह को दिया गया। यह अनाजों से हरा-भरा प्रान्त बहुत दिनों से मुगलों की तरह-तरह की अशान्ति और व्यग्रता का कारण बना हुआ था। अब सम्पूर्णरूप से मुगलों के अधीन हो जाने से सम्राट् अकबर के आनन्द की कोई सीमा न थी। इसके उपरान्त महाराज मानसिंह बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार के नाम से प्रसिद्ध हुए। रामचन्द्र आदि उड़ीसा के पूर्व-भूपतिगण लगातार मुगलों का साथ देते आ रहे थे इसलिए सम्राट् ने उनकी प्रतिष्ठा और पदगौरव जैसी की तैसी बनी रहने दी।

हताश उसमान बिल्कुल मायूस से हो गये। इतनी अवनति होगी यह

"तुम्हारे प्रयत्न से जगतसिंह के रिहा होने के पश्चात तो अवश्य ही उससे तुम्हारी भेंट होगी ?"

"नहीं ।"

आयशा के प्रेम से सम्बन्धित कोई बात महाराज से छिपी न थी। अब वे अच्छी तरह समझ गये कि यह असाधारण नारी वास्तव में जगतसिंह के प्रति प्रणयानुरागिनी है। लेकिन इसे यह भी मालूम है कि जगतसिंह के दिल में इसके सम्बन्ध में अनुरूप अनुराग नहीं है। इसीलिए इस नवीना ने अभी तक उससे मुलाक़ात करने की इच्छा प्रकट नहीं की है, उसकी मुक्ति के बाद भी उससे मिलने की कोई वासना नहीं है। मानसिंह को लगा कि यह लोकोत्तर विचित्र नारी अत्यन्त मानसिक पीड़ा में है। पुत्र की मुक्ति के उपरान्त इस नारी के मानसिक क्लेश दूर करने के लिए भरसक प्रयास करने के लिये उन्होंने निश्चय किया।

बात तनिक और साफ करने के अभिप्राय से मानसिंह ने कहा, "जगतसिंह अकृतज्ञ और नराधम है। तुम उसके लिए इतना प्रयास क्यों कर रही हो ?"

आयशा नीरव, चिन्ताकुल और सिर झुकाये रही।

मानसिंह ने पूछा, "क्यों बेटी, तुम मेरे इस तुच्छ सवाल का जवाब देने में क्यों हिचक रही हो ?"

आयशा बोली, "महाराज, लकड़ी के टुकड़े से पूछिए कि क्यों वह दूसरों की आवश्यकता मिटाने के लिए खुद जल कर खत्म हो जाता है। जगतसिंह अकृतज्ञ नहीं हैं, वे बड़े ही धर्मपरायण महापुरुष हैं।"

मानसिंह ने कहा, "बेटी आयशा, तुम रमणियों में रत्न के समान हो, तुम्हें सुखी बनाने के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।"

आयशा ने कहा, "अत्यन्त प्रगल्भा या निर्लज्ज की तरह मुझे महाराज सदृश व्यक्ति के सम्मुख बहुत सी बातें कहनी पड़ी हैं। लेकिन मैंने अपनी मर्जी से आपसे इतनी बातें नहीं कीं। मजबूरी की वजह से और कहीं सवाल का जवाब न देने से महाराज नाखुश न हो जायँ इस डर से मेरी जीभ बेहया की तरह बहुत सी बातें बक गयी है। मैं महाराज से इस कारण क्षमा माँगे ले रही हूँ।"

मानसिंह ने कहा, "आयशा, राजनैतिक प्रयोजन से मजबूरन अफसोस के साथ मैं तुम्हें कुछ दिनों के लिए कैद में रखूँगा, यही मेरा विचार था। लेकिन बेटी, तुम्हें देखकर और तुमसे बातें कर मेरे मन में बहुत सी इच्छाएँ जाग उठी हैं। उसकी चर्चा अब रहने दो। पठानों के साथ उड़ीसा में लड़ाई होने वाली है। मुझे कल ही उड़ीसा जाना पड़ेगा। युद्ध के अन्त तक तुम्हें हमारे साथ रहना होगा। इस लड़ाई के बारे में तुम्हें कुछ कहना है ?"

"कुछ भी नहीं। युद्ध, सन्धि, शासन, पालन राजा का धर्म है। हम नारी हैं—इसके बारे में हमें कुछ भी मालूम नहीं। हम उस बारे में बात ही क्यों करें ?"

मान०—उसमान को इस बारे में क्या तुम कोई बात बताना चाहती हो ?

"जी नहीं। नवाब एक तेजस्वी साहसी वीर हैं। जिस बुद्धि के वशीभूत होकर वह यह कार्य करने चले हैं उसमें कोई भी मशविरा देने जाना मेरे जैसे के लिए बड़ा ही अनुचित साहस होगा। अपने कार्य का भलाबुरा वह भलीभाँति समझ चुके हैं और उसके लिए तैयार भी हैं।"

मानसिंह ने कहा, "फिलहाल तुम्हें इसी मकान में रहना होगा। मेरी पटरानी उर्मिला तुम्हारे लिए सभी प्रकार के उचित प्रबन्ध कर देंगी। किसी भी तरह की असुविधा तुम्हें न होगी। मैं लड़ाई के अन्त में फिर आकर तुमसे मुलाकात करूँगा। मै बड़ा ही व्यस्त हूँ—अब तुम जा सकती हो। ताज खाँ को उसके घर भिजवा दो।"

महाराज चले गये, ताज खाँ घर लौट गये। उनके भवन से पहरा हट गया।

——*——

ही सावधानी से वे ये सब चीजें ले आये थे। अब यहाँ निश्चिन्त होकर बैठने के बाद उन्होंने अपने वक्ष से वह चादर खोली और चर्मासन के नीचे एक छोर से ढक कर उस पर सिर रख कर लेट गये।

रक्षकगण अपना-अपना लोटा और रस्सी निकालकर बगल के कुएं पर जाकर नहाने-धोने लगे। रास्ते भर में रक्षक बारी-बारी से घोड़ों की सेवा-टहल करते आ रहे थे। अब की बार जिन दोनो की बारी थी वे बाजार घोड़े का दाना खरीदने गये। वे सभी एक जाति के थे, एक ही चौके में सभी का भोजन था।

हाथ पैर धोने के बाद एक आदमी आटा-दाल, घी, नमक आदि लाने बाजार चला गया। और एक आदमी एक जगह तय कर चूल्हा-चौका बनाने लगा। पाँचवें व्यक्ति ने अभिराम स्वामी के पास आकर कहा, "महाराज की सेवा के लिए क्या प्रबन्ध करूँ?"

अभिराम स्वामो बोले, "मैं जरा घी, चीनी, आटा मिली पंजीरी बनाकर खाऊँगा। उसके लिए तुम्हें किसी प्रबन्ध को करने की आवश्यकता नहीं है। तुम लोगों के लिए जो कछ मँगाया जा रहा है उसी से थोड़ा-थोड़ा लेकर मेरा काम चल जायगा।"

प्रश्न करनेवाला चूल्हा बनानेवाले की मदद के लिए चला गया। जिन लोगों पर घोड़ों की देखभाल की जिम्मेवारी थी वे लोग काफी दाना लेकर लौटे और एक बड़े से कपड़े में उसे रखकर पानी डाल दिया। साथियों से उसमें बीच-बीच में पानी डालने को बताकर वे घोड़े लेकर किसी जलाशय की टोह में निकल पड़े।

काफी खाने का सामान लेकर एक रक्षक लौट आया। चौके के पास एक व्यक्ति ने आकर सावधानी से उस व्यक्ति के हाथों से सब सामान उतार लिया! उसके बाद स्वामीजी के लिए आँटा, घी, और चीनी अलग जगह पर रख कर बाकी सामान दोनो ने सँभाल लिया।

खाना पकाना शुरू हो गया। अश्वपालक लौट आए और घोड़ों को दाना देकर स्वयं हाथ-मुँह धोने लग गये।

शाम हो गयी। रक्षक बाजार से मशाल बनाकर ले आये। मशाल

की रोशनी से अँधेरा दूर किया गया। खाना-वाना तैयार हो गया।

रात करीब एक पहर बीत चुकी थी। अचानक बाजार की ओर से भयानक शोरगुल सुनायी पड़ा। "गया—गया—पानी—पानी—निकालो—खींचो—पकड़ो" आदि शब्दों से बड़ा कोलाहल मचा। सभी की नजरें उस ओर खिंच गयीं। सभी ने देखा कि कोई भयानक काण्ड हो गया है। बाजार में आग लग गयी है। "हाय, क्या हो गया! हाय, सब चौपट हो गया!" इस प्रकार के दिल दहलाने वाले विविध शब्द पथिकों के कानों से टकराने लगे। देखते ही देखते आग बहुत फैल गयी। अँधेरे में यह आग मानो अग्निमय शैल सा लगने लगी। उसके ऊपर से जो सब अग्नि-शिखाएँ ऊपर उठकर चारो ओर फैलती जा रही थीं वे सब मानो अग्निशैल से उड़ते हुए वह्नि-विहंगम सी लग रही थीं। भगवान सर्वभुक् अपनी लपलपाती जीभ निकाले सर्वग्रास करने का प्रयास करने लगे। घोर चीख-पुकार तथा कराह से दिशामंडल प्रतिध्वनित होने लगा।

अभिराम स्वामी बोले, "भाई मेरे, देखने से क्या फायदा? जाओ, किसी विपन्न की अगर सहायता कर सकते हो तो आगे बढ़ो।"

रक्षकगण अपना-अपना तैयार खाना छोड़कर आग की ओर लपके। अभिराम स्वामी वहीं पर खड़े यह हृदय-विदारक दृश्य देखने लगे।

सहसा सभी कोलाहल पार कर, सभी विलापध्वनि और आर्त्तनाद को पार कर नारीकंठ से एक हृदय भेदी शब्द उठा, "मेरा बेटा—दुखियारी का सहारा—बचाओ-बचाओ-बचाओ। हम तुम्हारी दासी बनकर रहेंगे। बचाओ चाहे न बचाओ, दुहाई तुमलोगों की, मुझे आग में झोंक दो।"

अभिराम स्वामी आगा-पीछा सब कुछ भूल गये। वे तेजी से उस आवाज की ओर दौड़े; असीम साहस से वे उस अग्निकुण्ड में कूद पड़े। दुखियारी का बच्चा बच गया। उस सोते हुए बच्चे को सीने में छिपाकर अभिराम निर्विघ्न निकल आये। उनके शरीर के बहुत से अंग जल गये थे! उन्होंने उसकी परवाह भी न की।

आधी रात बीतने पर आग बुझी। रक्षकवर्ग तब अभिराम स्वामी से आकर मिले। सभी राख से सने, जले-भुने, थके-माँदे शरीर लेकर मैदान में

उन्होंने एकबार भी न सोचा था। इस युद्ध-प्रचेष्टा के आरम्भ से ही उनका चित्त विविध प्रकार की दुश्चिन्ताओं और यातनाओं से असन्तुष्ट था। युद्ध आरम्भ होने के कुछ समय पहले आयशा नवाबपुरी से रवाना हो गयी थीं। उसमान को आयशा किसी भी नजर से क्यों न देखे लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वही उसमान के सभी आनन्द और उमंग का स्रोत थी। उस आयशा के साथ उसमान बचपन से साथ-साथ खेलकूद करते रहे हैं और एक ही साथ लालित पालित और वर्धित होते आ रहे थे। आयशा के प्रति उनका प्रेम असीम और अभेद्य था। वही आयशा महल छोड़कर चली गयी और तभी से उसमान की उमंग, उसका उत्साह, उसकी आशा और उसका भरोसा सभी दूर हो गये। ऐसा असन्तुष्ट, निराश और चिन्तित चित्त लिये उसमान ने जो कुछ भी किया उसका विपरीत फल हुआ। उसमान क्लान्त हो गये।

——:)o(:——

(५)

अग्निकांड

अभिराम स्वामी कारावासी राजपुत्र की मुक्ति के लिए अर्जी आदि लेकर दिल्ली के लिए रवाना हो गये थे। उनके साथ पाँच रक्षक गये हुए थे। सभी घोड़े पर सवार थे। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न व्यक्तियों को रिश्वत देना पड़ेगा, बादशाह के दरबार में अर्जी पेश करने के लिए काफी धन व्यय करने की आवश्यकता पड़ेगी, यह सोचकर आयशा ने अभिराम स्वामी के हाथों में काफी धन सौंप दिया था।

नवाबनन्दिनी आयशा ने और भी बहुत से इन्तजाम कर दिये थे। बादशाह के दरबार और हरमसरा में बहुत से लोगों से आयशा परिचित थी, सो उसने पुरानी बातों की याद दिलाकर बहुतों को खत लिख दिया था। इसलिए मानसिंह की बहन अर्थात जगतसिंह की बुआ को भी एक विनय भरा पत्र लिखकर उनकी कृपा की उन्होंने प्रार्थना की थी। जितने खत आयशा ने लिखे थे अगर वे ठीक-ठीक स्थानों पर पहुँच जाँय तो

अभीष्टप्राप्ति सहज ही हो जाय इसमें सन्देह नहीं था। तैयारी में कोई कमी नहीं थी।

चन्द रोज बाद आयशा स्वयं दिल्ली पहुँच जायगी, ऐसा भी तय हुआ था। शायद उनके दिल्ली पहुचने के पहले ही अभिराम स्वामी कार्य सफल कर लौट आयेंगे, ऐसी भी बहुतों को आशा थी। सहसा महाराज मानसिंह की व्यवस्था से आयशा को पटना में ही वन्दिनी बना रहना पड़ा। मानसिंह लड़ाई-भिड़ाई में फँसे थे, इसलिए आयशा की मुक्ति की फिलहाल कोई आशा न थी। लेकिन इसमें भी आयशा को कोई असन्तोष या व्यग्रता न थी क्योंकि अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए सभी तैयारियाँ समाप्त करने के बाद ही वह गिरफ्त में आयी थीं। अब वह आजीवन वन्दिनी रहने से भी दुखित नहीं थीं। जगतसिंह का कर्ममय, उत्साहमय और आनन्दमय जीवन अन्धकार कारागार में विनष्ट हो रहा है, यदि उस वीर को मुक्त करने के लिए उसे हमेशा इसी स्थान पर रहना पड़े तो भी वह उसके लिये खुशी-खुशी तैयार थी।

पाँचवें दिन अभिराम स्वामी और उनके पाँच वीर साथियों को लेकर घोड़े कानपुर पहुंचे। वहाँ पहुँचकर अभिराम को मालूम हुआ कि बादशाह बहादुर उस समय आगरा में हैं। इस समाचार से वे बहुत खुश हुए। दो दिन में ही वे आगरा पहुँच सकेंगे ऐसा उन्होंने विचार किया। भगवान प्रसन्न हैं इसीलिए सभी मामले आसान होते जा रहे हैं ऐसा सोचकर वे बहुत खुश हुए।

यह दल जब कानपुर पहुँचा तो उस समय तिपहर चढ़ रहा था। घोड़े बिल्कुल थके हुए और घुड़सवार भी भूख-प्यास से कातर थे। अभिराम स्वामी ने बाजार के पास मैदान में एक बहुत बड़े बरगद के तले उस रात के लिए डेरा डालने का निश्चय किया। घुड़सवारों ने उतरकर दूर एक दूसरे वृक्ष के नीचे पशुओं को बाँध दिया। अभिराम स्वामी अपने कंधे से चर्मासन उतारकर पेड़ के नीचे एक ओर बिछाकर बैठ गये। जगतसिंह की अर्जी, आयशा की लिखी हुई चिट्ठियाँ और उसके दिये हुए धनरत्न एक मोटी सी चादर में अच्छी तरह से लपेट कर उन्होंने अपने सीने से बाँध रखा था। बड़ी

दूसरा आदमी लोहे के सीखचें से अगर उस छेद को जरा बड़ा कर ले तो छेद बड़ा हो सकता है। उसके बाद उस छेद में से होकर एक-एक कर भाग निकलना कुछ असंभव नहीं।

सभी ने यह विचार किया कि यह कार्य संभव है। प्रस्ताव करने वाला रक्षक सींखचा खोलने की कोशिश में लगा रहा। पिछले रोज के अत्यन्त परिश्रम, अनाहार तथा आग के ताप से सभी लोग कातर थे, आज भी बिना भोजन के दिन बीत गया था।

रक्षक ने जैसा कहा था वैसा ही ठीक निकला। एक के कन्धे पर दूसरा सवार होकर बारी-बारी से उस सुराख को बढ़ाता रहा। अगर वे निर्विघ्न भाग निकले तो तीन व्यक्तियों को नवाबनन्दिनी के पास जाकर सारी बातें निवेदन करना होगा। वे हालत समझकर जैसी भी व्यवस्था करना चाहें वैसा ही कार्य होगा। अभिराम स्वामी आगरा जायेंगे। यदि वहाँ पर कोई इन्तजाम कर बादशाह के दरबार में यह प्रसंग उठा सकें तो उसी का उपाय करेंगे और नवाबनन्दिनी के आदेश के अनुसार कार्य करने के लिए तैयार रहेंगे। ऐसा ही सलाह-मशविरा हुआ।

गहरी रात में उसी सुराख के रास्ते एक-एक कर सभी व्यक्ति निकले और उस अँधेरे में छुपकर भाग चले।

सारी रात वे शहर से बहुत दूर एक जंगल में पड़े रहे। मुँह अँधेरे वे दो हिस्सों में बँट गये। तीन व्यक्ति पटना की दिशा में और अभिराम आदि तीन व्यक्ति आगरा की ओर रवाना हुए। भीख माँगना ही सभी का सहारा बन गया।

जो दल पटना की ओर चला वह वक्त पर वहाँ पहुँच तो गया पर कोई भी कार्य न कर सका। ताज खाँ के घर पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि नवाबनन्दिनी बन्दी होकर महाराज के किसी महल में रह रही हैं। उनसे मुलाकात की कोई व्यवस्था ही न हो सकी। कारावासी युवराज जगतसिंह से भी मिलना उनके लिए संभव न हो सका। इसलिए वे लोग यह सब प्रयास छोड़ दूसरा कोई काम लेकर अपनी रोजी कमाने लग गये।

इधर अभिराम और उनके साथी जंगल के रास्ते आगरे की ओर

बढ़ने लगे। बीच-बीच में भीख में पाये मुट्ठी और नदी के जल से वे अपनी भूख और प्यास मिटाते रहे। वृक्ष के ऊपर चढ़कर शाखाओं से अपने शरीर बाँधकर वे लोग रात बिताने लगे। इस तरह दो दिन बीत गये।

तीसरे दिन सबेरे ये यात्री आगरा के नीचे बहती हुई यमुना के उत्तर-पूर्व अंश के घने जंगल में पहुँच गये। इस स्थान पर उत्तर की ओर से एक दूसरा अरण्यपथ आकर उन लोगों के रास्ते से आ मिला था। उन लोगों ने देखा कुछ देर पहले ही बहुत से घुड़सवार बगल के रास्ते से आकर उनके रास्ते पर आगे बढ़ गये हैं। पैरों की छाप देखकर यही पता चलता था कि थोड़ी देर पहले ही घोड़े इस रास्ते से होकर गये हैं।

ऐसे जंगल के रास्ते पर घुड़सवार क्यों जा रहे हैं यह जानने के लिए अभिराम स्वामी में कुतूहल जगा। वे दोनो साथियों के साथ जरा तेज कदमों से चलने लगे। कुछ दूर जाने के बाद स्वामी जी ने देखा कि घोड़े दाहिने हाथ के एक सँकरे रास्ते पर चल रहे हैं। उस ओर जाना अभिराम स्वामी को अभिप्रेत न था फिर भी कुतूहल मिटाने की गरज से उन्होंने अपने दो साथियों के साथ वह रास्ता पकड़ लिया।

घोड़ों के खुरों के दाग अब दिखाई नहीं पड़ते; बगल के घने वन के एक स्थान पर पौधे और बेल कुचले हुए और डाली-टहनियाँ टूटी हुई सी लगीं। पत्तों पर कुचले जाने के दाग देखकर अभिराम स्वामी ने उन्हें घोड़े और आदमियों के द्वारा रौंदा हुआ ही अनुमान किया। उन्होंने एक रक्षक से कहा, "बहुत सावधानी से जाकर क्या तुम मामले को देख आ सकते हो?"

अभिराम और उनका एक साथी एक स्थान पर छुपकर बैठे रहे। दूसरा रक्षक चला गया। करीब घंटे भर उन्हें इन्तजार करना पड़ा। अन्त में वे उस रक्षक के लिए फिक्र में पड़ गये। बहरहाल वह रक्षक लौट आया।

अभिराम स्वामी ने साग्रह पूछा, "क्या देखा?"

रक्षक बोला, "बड़ी खुशखबरी है।"

अभि०—कैसी?

रक्षक०—हमारे ही छः घोड़े हैं।

अभिराम ने विस्मय से कहा, "हयँ, क्या कहते हो!"

बरगद के पास आये। लेकिन बड़ा ही भयानक दृश्य था। घोड़े वहाँ पर नहीं थे। क्या वे आग के डर से रस्सी तुड़ाकर भाग गये थे ? रक्षकों की दाल-रोटी-तरकारी कुछ भी नहीं थी। शायद कुत्ते या सियार खा गये थे। एक भी लोटा न था। तब तो चोर आये थे। अभिराम स्वामी ने तुरन्त चर्मासन उठाकर देखा—देखा, न तो वह चादर है, न वह अर्ज़ी है, न चिट्ठियाँ हैं—वह धनरत्न भी कुछ नहीं है। "हाय, क्या हुआ" कहकर अभिराम स्वामी वहीं पर बैठ गये।

—※—

(६)

न्याय

उधर अँधेरे कारागार में पड़े-पड़े जगतसिंह मुक्ति पाने का सुख, स्वप्न देखने लगे। आयशा उस पिंजरे में बन्द अपने प्रिय हृदय-देवता के सुख और आनन्द-प्राप्ति की कल्पना करने लगी। महाराज मानसिंह भयानक युद्ध में फँसे रहने पर भी दूसरों के प्रयत्न से अपने पुत्र की स्वाधीनता की आशा करते रहे। कोई भी यह न जान सका कि सभी की कामनाएँ व्यर्थ हो गयी हैं—अचिन्तित घटना के कारण सभी की सारी आशाएँ जाती रही हैं।

अभिराम स्वामी और उनका दल उस रात को कुछ भी न कर सके। अनाहार, परिश्रम और उत्कंठा से बिल्कुल क्लान्त हो टूटे दिल से उस पेड़ तले पड़े-पड़े रात काट दी। लुट चुकने के उपरान्त भी जो सामान बचा था, अगले दिन सबेरे उसे बटोर कर वे छः बटोही शहर कोतवाल से मिलने चले।

कोतवाल यमराज के समान आतंकमय थे। उसके पास पहुँचकर बात करने की हिम्मत रखनेवालों की संख्या विरल है। अभिराम स्वामी ने बहुत से बादशाहों-नवाबों के दरबार देखे थे—कोतवाल का दरबार उनसे भी भयानक स्थान है यह उनसे अविदित न था। कोतवालों में अधिकांश ही, सकारण या अकारण अपनी प्रभुता जमाने और सामने आए व्यक्ति पर धौंस जमा पाने से ही अपना कर्त्तव्य पूरा हो जाता है, ऐसा सोचकर सन्तुष्ट होते थे। इसी

प्रकार के एक अद्भुत कोतवाल के पास अभिराम स्वामी को अपने दल के साथ पहुँचना पड़ा।

सभी शिकायतें सुनने के उपरान्त योग्य कोतवाल साहब ने यह निर्णय किया कि ये लोग अवश्य ही विदेशी चोर हैं, यह संन्यासी अवश्य ही कोई दागी असामी है, क्योंकि यह संन्यासी का भेष बदलकर यहाँ आया है और अपने गिरोह के साथ चोरी करने लगा है। कहीं पकड़ा न जाय इसलिए पहले से ही कोतवाल के सामने अपनी सफाई पेश कर रहा है। ऐसा सुन्दर निर्णय करने के उपरान्त कोतवाल साहब ने अभिराम स्वामी और उनके पाँच रक्षकों को हवालात में बन्द करने का हुक्म दे दिया।

अभिराम स्वामी बड़ी मुसीबत में फँस गये। चोरी का सुराग लगे न लगे, चुराया हुआ सामान मिले चाहे न मिले, मौका पाते ही वे फिर पटना लौट जा सकते थे और नवाबनन्दिनी से सारी बातें बताकर कुछ इन्तजाम कर सकते थे। कुछ समय ही खर्च हो जाता। इतना समय बीत गया, दस दिन और गुजर जाते तो क्या खास नुकसान होता ? उनलोगों को अनर्थक परिश्रम ही तो करना पड़ता, पर इससे क्या बनता बिगड़ता ?

अभिराम स्वामी ने एक युक्तिपूर्ण बात बताने की कोशिश की लेकिन भला उसे सुने कौन ? मुँह की बात निकलते ही कोतवाल साहब ने इन चोरों को हवालात में ले जाने के लिए रूखे स्वर में आदेश दे दिया। इसलिए विशेष रूप से क्षतिग्रस्त और विपन्न होते हुए भी अभिराम स्वामी और उनके साथियों को बिना अपराध के हवालात में रहना पड़ा।

उस गन्दे, बदबूदार और अँधेरे हवालात में पड़े-पड़े वे सोचने लगे कि इसके बाद शायद उन्हें काजी के पास भेजा जायगा। शायद काजी साहब भी कोतवाल की तरह ही सूक्ष्मदर्शी हों। वे शायद उनके कारावास की व्यवस्था कर दें। इसलिए इस स्थान से भागना जरूरी है लेकिन उसका भी रास्ता क्या है ?

भागने का उपाय तय हुआ। एक रक्षक ने दिखा दिया कि विशेष प्रयास करने पर दरवाजे का एक लोहे का डंडा खोला जा सकता है। दीवार पर रोशनी आने के लिए कुछ छेद हैं। एक के कन्धे पर खड़े होकर

रक्षक बोला, "मैंने ठीक देखा है। वे हमारे ही घोड़े हैं। इसमें कोई भ्रम नहीं है।"

अभि०—साथ में लोग कितने हैं ?

रक्षक०—दस। हमारे लोटे भी उन्हीं के पास हैं, मैंने अच्छी तरह से देखा है।

"हथियार वगैरा कुछ हैं ?"

"सभी के पास तलवार, छुरे और बरछियाँ हैं।"

अभिराम बोले, "अब साफ समझ में आ रहा है कि इन्हीं लोगों ने हमलोगों का सब कुछ लूट लिया है। इन्हें गिरफ्तार किया जा सके तो सभी कुछ मिल सकता है।"

जो रक्षक अभिराम के साथ था, वह बोला, "इसमें तो कोई शक नहीं। लेकिन उपाय क्या है ?"

अभिराम बोले, "तुम दो जने इस जंगल में रहकर डाकुओं पर नजर रख सकोगे ?"

प्रथम रक्षक ने कहा, "क्यों नहीं। लेकिन आप क्या करना चाहते हैं ?"

अभिराम बोले, "यह जंगल पार कर तनिक पश्चिम की ओर जाने के बाद यमुना पार कर आगरा पहुँचा जा सकता है। मैं आगरा जाकर सरकारी सिपाही ले आ सकता हूँ।"

दूसरे रक्षक ने कहा, "फिर कोतवाल को इत्तला जो करनी पड़ेगी ?"

अभिराम बोले, "यह तो ठीक है लेकिन सभी कोतवाल कानपुर के महात्मा की तरह कुशल तथा दक्ष हों, ऐसा सोचना गलत होगा। आगरा राजधानी है, यहाँ अवश्य ही अक्लमन्द लोग होंगे। कोतवाल द्वारा काम न बने तो यहाँ किसी दूसरे जरिए से काम नहीं बनेगा ऐसी बात नहीं है।"

दूसरे रक्षक ने कहा, "जब तक आप लौट न आएँ या आपकी कोई खबर न मिले तब तक हमलोग डाकुओं की गतिविधि पर नजर रखेंगे और यहाँ रह सकेंगे। लेकिन अगर डाकू यहाँ से कहीं चले गये तो हम लोग क्या करेंगे ?

अभिराम बोले, "पते की बात की है तुमने। एक आदमी दूर रहकर डाकुओं का पीछा करेगा और दूसरा इसी जगह पर डटा रहेगा। जो पीछा करेगा वह आकर अपने साथी को डाकुओं का अड्डा, जाने का रास्ता, दिशा संकेत आदि सब कुछ बता जायगा।"

प्रथम रक्षक ने कहा, "हम आपका उद्देश्य समझ रहे हैं और उसके मुताबिक काम भी कर लेंगे यह भी समझ रहे हैं, लेकिन डाकू अगर बहुत दूर चले गये तो आने जाने की सुविधा भी क्या हो सकेगी? शायद आखिर में डाकुओं की कोई खोज ही न हो सके।"

अभिराम ने कहा, "यह बात ठीक नहीं है। अब डेढ़ पहर दिन है। मुझे आगरा पहुँचने में दो पहर लग जायेंगे। मिलने-जुलने में तीसरा पहर बीत जा सकता है शाम तक मैं यहाँ लौट आ सकूँगा ऐसी उम्मीद करता हूँ।"

द्वितीय रक्षक ने कहा, "ऐसा अगर कर सकते हैं तो कोई भी आशंका नहीं है। क्योंकि लग रहा है कि तीन दिन के बाद डाकू इस अड्डे पर आ टिके हैं। वे सभी बहुत थके-माँदे हैं। ऐसा लगता है कि आज वे यहीं पर रहेंगे।"

अभिराम बोले, "मुझे यह लगता है कि वे शायद यह जगह छोड़ कहीं और नहीं जायेंगे। इस जंगल में रहकर वे एक-एक कर आगरा जाकर घोड़े और जवाहिरात बेचेंगे। ऐसा उद्देश्य न होता तो आगरा के समान राज-धानी की ओर पैर ही क्यों बढ़ाते?"

प्रथम रक्षक ने कहा, "प्रभु का यह अनुमान बहुत ही ठीक लग रहा है।"

अभिराम बोले, "अब और बातें करने की जरूरत नहीं। मैं अब जाता हूँ। अगर मैं शाम तक न लौट सका तो कल सबेरे तक अवश्य ही लौट आऊँगा। इसमें कोई शक नहीं है, चाहे अकेले ही क्यों न लौटूँ। तुम लोग सावधानी से रहोगे।"

अभिराम स्वामी चले गये।

—o—

(७)

आयशा का अनुताप

पटना में महाराज मानसिंह के बताए हुए भवन में आयशा बिल्कुल आराम से रह रही है। महारानी उर्मिला ने हर तरह से उसके सुख और सुविधाओं का प्रबन्ध कर दिया है। वे स्वयं कई बार आयशा से मिली हैं। इस संसार में आयशा से मिलकर कौन नहीं खुश होता? ऐसा कौन है जो परिचय हो जाने के बाद उसे देवी समझकर उसका आदर न करे? आयशा के हृदय के महान भावों का परिचय पाकर उर्मिला देवी स्वयं मुग्ध हो गयीं।

दो महीने बीत गये। दुख-सुख और समय अपनी ही रफ्तार से चले जा रहे थे। पठानों की हार की नित-नयी खबरें आयशा को सुनायी पड़ रही थीं। उस स्वच्छन्दतापूर्ण कारागार में रहने पर भी, निरन्तर मुगलों की विजय और उसमान खाँ की पराजय की खबरें सुन-सुन कर आयशा का हृदय अवसाद से भरता जा रहा था। उन्हें लगता था कि उसमान की ऐसी मुसीबत के वक्त, हृदय के ऐसे अवसाद के समय, उड़ीसा से चले आकर आयशा ने ठीक काम नहीं किया है। ऐसे बेवक्त पिता का घर छोड़कर चले आना ठीक नहीं हुआ। नवाब उसमान खाँ के निकट से इतनी दूर चले आना भी उचित नहीं हुआ है। इस समय यदि वहाँ रहती तो शायद उसमान उत्साह न खो बैठते, शायद अपनी विवेचना में भी वह गलती न करते, शायद हार-जीत समान सोचकर काम में वह न लगते। पठानों की इस हार के लिए आयशा अपने को ही हेतु समझने लगी। उसमान उसके प्रति असीम करुणामय और प्रेमपूर्ण है। ऐसे सुहृद के ऐसे बुरे समय में दूर चला आना बिल्कुल अकृतज्ञता का सूचक है।

फिर समाचार आया, मानसिंह की उड़ीसा-विजय समाप्त हो गयी है। उसमान सब तरह से बादशाह का अधीन बन गया है। आयशा समझी कि नवाब जीवित हैं। और वह प्रतापी साहसी वीर यदि जीवित है तो सब

कुछ है। आयशा ने सुना कि उत्कल-विजेता महाराज मानसिंह पटना की ओर लौटने लगे हैं, जल्द ही राजधानी पहुँच जाएँगे।

जिस राजनैतिक प्रयोजन से आयशा बन्दिनी हुई थी वह उसकी समझ में आ चुका था। महाराज ने सोचा था कि आयशा के बन्दी होने की खबर सुनते ही उस्मान लड़ाई-भिड़ाई न कर सीधे-सीधे अधीनता स्वीकार कर लेंगे। दूसरे ढंग से आयशा के अवरोध ने महाराज मानसिंह के उद्देश्य को सहायता पहुँचायी थी। आयशा की अनुपस्थिति, उसके बाद उनके कैद होने का समाचार, दोनो ने नवाब को इतना व्याकुल कर दिया था कि विचलित हो भले-बुरे का ज्ञान वह खो बैठा और वैसा ही काम कर डाला—नतीजा महाराज के माफिक रहा। बहरहाल, वह राजनैतिक प्रयोजन शायद अब तक समाप्त हो गया हो। शायद महाराज पटना लौटते ही आयशा को मुक्त कर देंगे।

इस तरह की आशा और दुश्चिन्ता में डूबते-उतराते आयशा दिन बिता रही थी। दिन का तीसरा पहर था। अकेली एक सुसाज्जत कमरे में बैठी नवाबनन्दिनी अपने अतीत और वर्त्तमान की बहुत सी बातें सोच रही थी। सहसा दूर बगल के दरवाजे के पास एक बड़ी ही सुन्दर नारीमूर्ति उन्हें दीख पड़ी। उस नारी ने मकान में प्रवेश किया। बड़ी ही व्यस्तता से उठकर आयशा उसकी ओर बढ़ी। नवागता नारी दौड़कर आयशा के सीने से लिपट गयी। बहुत देर तक दोनो सुन्दरियाँ एक दूसरे की बाहों में जकड़ी चुप बनी रहीं। दोनो की आँखों में आँसू थे। नवागता सुन्दरी तिलोत्तमा थी।

पहले आयशा ने मुँह खोला, बोली, "फिर कभी तुम्हें देख सकूँगी ऐसा सोचा भी न था। तुम्हारा भाग्य जाग उठा है। तुम्हें ससुराल में जगह मिल गयी है—यह खुशखबरी मुझे मिल चुकी है।"

आयशा के सीने से तिलोत्तमा ने सिर उठाया। एकबार उसने आयशा के असीम बुद्धि और तेजस्विता व्यंजक मुखड़े की ओर देखा, उसके बाद बोली, "भाग्य कहाँ प्रसन्न हुआ ? वे तो बन्धन में हैं।"

बालिका की तरह कपड़े से मुँह ढाँप कर तिलोत्तमा रो पड़ी। बड़े जतन से आयशा ने उसका हाथ थाम आँखें पोंछ दीं। उसके बाद बगल के आसन पर उसे बिठाकर फिर स्वयं बैठकर बोली, "रोओ मत। अफसोस मत करो। वीर रमणी को बहुत दुःख-दुर्दशा सहने के लिए कठोर होकर

रहना पड़ता है। इतनी मामूली मुसीबत में घबरा जाने से तुम्हारी बदनामी होगी।"

तिलोत्तमा बोली, "ऐसे क्लेश में कैसे दिन काटूँ ? ऐसे दुख का पचड़ा दिल खोल कर सुनाऊँ ऐसा भी कोई दुनिया में नजर नहीं आता, इसीलिए तुम्हारे पास रोने आयी हूँ।"

आयशा बोली, "बहुत अच्छा किया है बहन। तुम्हें देखकर मैं बेहद खुश हुई। तुम्हारी तकलीफ के ये दिन जल्द ही खत्म होंगे। राजकुमार जल्द ही रिहा होंगे।"

तिलोत्तमा ने पूछा, "कैसे यह अन्दाजा लगा रही हो ?"

आयशा बोली, "अभिराम स्वामी अर्जी लेकर दिल्ली गये हुए हैं, वह अर्जी बेकार नहीं जायगी।"

तिलोत्तमा ने पूछा, "उनको गये कितने दिन हुए ?"

"दो महीने बीत गये हैं।"

"इतनी देर क्यों हो रही है ? क्या कोई अड़चन तो नहीं आ गयी ?"

"अड़चन आने की कोई संभावना नहीं है। बादशाह के दरबार से हुक्म जारी करने में काफी देरी होती है। अगर बहन, दो महीने की जगह चार महीने की देर हो जाय तो ऐसा क्या नुक़सान है ?"

तिलोत्तमा मन ही मन तनिक विस्मित हुई। यह कैसी प्यार की बातें हैं ? जिससे प्यार करती हूँ वह लोहे के जंजीर से बँधा कैदी है। वैसी अवस्था की कल्पना करते ही दिल टूक-टूक हो जाता है। क्षणभर पहले भी अगर उसे उस दशा से मुक्त किया जा सके तो प्रणयी के लिए उसे भी परम लाभ समझना चाहिए। नवाबनन्दिनी दो महीने की जगह चार महीनों की भी कोई परवाह नहीं कर रही हैं। बोली, "बहन! अगर सर्वस्व खर्च कर इसी दम युवराज को मुक्त किया जा सके तो वह मेरे ख्याल में बेहतर है, दो महीनों के बाद यदि युवराज सब सम्पदा के साथ मुक्त हों तो शायद मैं उसके लिए प्रार्थना न करूँ।"

आयशा ने मुस्कराकर कहा, "प्रेम में ऐसा ही होता है।"

"तो तुम कुछ और क्यों ख्याल कर रही हो ?"

आयशा ने तनिक सिर झुका कर सोचा फिर उससे बोली, "मैं जानती हूँ कि राजपुत्र वीरश्रेष्ठ हैं। वीर की देह में तेज तलवार चुभ जाने पर भी वह तनिक भी दर्द का बोध नहीं करता। शत्रु की तलवार शरीर से सिर उड़ा ले जाने के लिए आते देखकर भी वह तनिक भी विचलित नहीं होता। उनके लिए लोहे की जंजीर या अँधेरा कैदखाना खास कुछ भयानक नहीं है। इसलिए अगर इस दशा में दो दिन ज्यादा ही उन्हें रहना पड़े तो उसमें खास कोई क्लेश की बात नहीं। लेकिन तुम्हारे और हमारे समान नासमझ लोग इससे बहुत तकलीफ पाते हैं। उस तकलीफ का एकमात्र कारण है स्वार्थी-पन। किसी-किसी समय हम प्यारे के दिल की अपेक्षा उसके शरीर से अधिक प्रेम करते हैं, इसलिए उन्हें न देख पाने से, उनके निकट न रहने पर, हम व्याकुल हो उठते हैं। ऐसी व्याकुलता का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता है।"

तिलोत्तमा बोली, "तुमने जो कहा है वही ठीक है। सचमुच राजपुत्र से क्षणभर का विछोह भी मेरे लिए असह्य है। यह अगर स्वार्थीपन के कारण हो तो अवश्य ही मैं बहुत स्वार्थी हूँ। हिम्मत बटोर कर तुम से एक सवाल पूछना चाहती हूँ बहन। तुमभी तो युवराज से काफी प्यार करती हो? तब क्यों तुम उसके लिए मेरी तरह व्याकुल नहीं हो रही हो?"

सिर झुकाये आयशा ने तिलोत्तमा का हाथ पकड़ लिया। उसके बाद दूसरी ओर मुंह घुमाकर उन्होंने कहा, "तुम्हारी इस बात से मुझे खुशी नहीं हुई। यह सच है कि मैं युवराज से प्यार करती हूँ। वह प्यार अनन्त, असीम और अथाह है। लेकिन इस संसार में यह बात किसी को भी मालूम न हो सकती थी। अचानक मन की अविचलित दशा में मैंने युवराज के समक्ष वह व्यक्त कर डाला था। इसलिए मैं बहुत ही लज्जित हूँ। मेरी विनती है कि कभी तुम किसी से यह बात न बताना और खुद भी यह बात दिमाग से दूर कर देना। मेरी प्रार्थना यही है कि तुम यह बात भूल जाओ।"

तिलोत्तमा बोली, "क्यों बहन, यह बात क्यों भूल जाऊँ? यह बात किसी से क्यों न बताऊँ? प्यार करना कोई अपराध नहीं। प्यार करने से पाप नहीं होता, फिर क्यों तुम शर्मिन्दा हो?"

आयशा बोली, "मेरी समझ में प्यार प्राण की वस्तु है, प्राण में बड़ी सावधानी और जतन से वह छुपा रखने की वस्तु है। उसकी बातें बढ़-चढ़ कर दुनिया-भर में कहते फिरने से उसका खोखलापन जाहिर होता है और वह लज्जा का कारण बन जाता है।"

तिलोत्तमा बोली, "प्यार प्राण की वस्तु अवश्य है लेकिन जिससे प्यार करती हूँ उसे यह बात जताने में क्या हर्ज है ? यदि वह भी यह बात न जान सके तो प्यार करने में क्या सुख है ?"

आयशा बोली, "ऐसा करने पर ही प्यार का सौदा शुरू हो जाता है। मैं जिससे प्यार करती हूँ उसे अगर बात जतायी जाय तो साथ ही साथ उससे प्यार पाने की आकांक्षा भी प्रकट हो जाती है। ऐसा होने से ही प्यार की दुकानदारी चलने लगती है। मैं तुम्हें कोई वस्तु देती हूँ और तुम भी उसके बदले में कोई वस्तु देती हो—इसी का नाम दुकानदारी है। ऐसे पवित्र प्रेम की दुकानदारी करना मैं शर्मनाक समझती हूँ।"

तिलोत्तमा ने तनिक सोच कर देखा, समझा कि प्रेम का यह भाव निःसन्देह बड़ा ही मधुर और ऊँचा है। बोली, जिससे प्यार करती हूँ, उसके सुख के लिए भी तो उसे यह बात बताना जरूरी हो जाता है।"

आयशा बोली, "जरूरी बेशक है जब यह देखा जाय कि मैं जिससे प्यार करती हूँ, वह उस प्यार को भोगने के लिए अकुला रहे हैं, प्यार के अभाव में वे बड़े ही दीन हैं, तब उन पर प्राण का सारा प्यार उँडेल देना चाहिए।"

तिलोत्तमा बोली, "लेकिन बहन, हम नारी हैं, प्यार करना ही हमारा काम है। हम जिनसे प्यार करती हैं वे प्यार के कंगाल न हों, फिर भी हम उनसे जी भर कर क्यों न प्यार करें ? क्यों न निरन्तर प्यार उँडेल कर उन्हें बहा ले जाए ?'

आयशा बोली, "प्यार नहीं करूँगी, ऐसी बात मैं नहीं कह रही हूँ। जी भरकर प्यार करने का हमें हमेशा हक हासिल है। लेकिन जिनसे प्यार करती हूँ उनसे बिना कारण यह बात नहीं बताऊँगी।"

तिलोत्तमा बोली, "क्यों बहन तुम ऐसा क्यों सोच रही हो ? पुरुष

का हृदय समुद्र के समान है। उस समुद्र में प्यार का घड़ा क्यों न उँडेलूँ, या आवश्यकता के अनुसार उससे प्यार भर कर क्यों न निकाल लाऊँ? प्यार मनुष्य-जीवन में सर्वप्रधान सुखदायी वस्तु है। प्यार कर पाना और प्यार पाना दोनो ही मानव के सर्वश्रेष्ठ अधिकार हैं। बहन आयशा, तुम राजपुत्र को दिल से प्यार करती हो, यह बात सच है, फिर क्यों तुम प्रकाश्य में प्रेम कर सुखी नहीं होतीं? अगर तुम सोचती हो कि राजपुत्र से किसी और नारी के प्यार करने पर तिलोत्तमा दुखी होगी, तो नवाब-नन्दिनी! मैं मुक्तकंठ से कह रही हूँ कि इस बारे में तुम्हारी समझ गलती पर है। तुम सरीखी गुणवती नारी युवराज की प्रेमिका है यह सोचते ही मेरा दिल पुलकित हो उठता है। एक डंठल पर दो फूलों की तरह हम खिलें यही मेरी आन्तरिक वासना है। एक शोभामय उद्यान में कितने ही प्रकार के कुसुम खिलते हैं, एक पहाड़ के वक्ष से कितने ही झरने निकलते नाचते हैं; एक ही सागर में कितनी ही नदियाँ अपनी देह सौंप देती हैं। जिनसे तुम प्यार करती हो, उनसे मैं भी प्यार करती हूँ। इसलिए हमलोगों में असीमता एक-प्राणता और सहानुभूति होनी चाहिए। बहन, फिर क्यों तुम युवराज के वक्ष पर कोहनूर की तरह शोभायमान नहीं होगी?

तिलोत्तमा ने सस्नेह आयशा का गला बाहों से बाँध लिया। आयशा ने भी दुलार से तिलोत्तमा की ठोढ़ी पर हाथ रख कर कहा, "तुम्हारी तरह सरला, सहृदया महिला के मुँह ऐसी ही बातें शोभा देती हैं। मेरा विश्वास है कि ऐसी सहधर्मिणी बगल में होने से राजपुत्र को अपने जीवन भर में कभी विषाद की ठंडी साँस लेने का मौका न आयेगा। लेकिन बहन तुमसे बहुत बड़ी गलती हो गयी है। मेरा प्यार जब एक दूसरे रास्ते पर चलता है तो मुझे बड़ा सुख मिलता है। मैं प्यार करना ही जानती हूँ, प्यार करके ही मुझे अमित आनन्द प्राप्त होता है। प्यार प्राप्त करने या प्यार के आडम्बर को मेरा जी नहीं करता। बहन, आगे तुम कभी मेरे बारे में सोच मत करना, मैं तकलीफ पा रही हूँ यह सोचकर कभी क्लेश मत पाना।"

तिलोत्तमा ने ठंडी साँस लेते हुए कहा, "समझ में नहीं आता कि तुम किस तरह से अपने जी को काबू में किये हुए हो। शायद इस दुनिया में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है।"

आयशा विषाद घोलकर मुस्कुरायी और बोली, "मैं पाषाणी हूँ—संगदिल हूँ। इस सूखे पाषाण हृदय में तुम लोगों की तरह कोमलता का कोई स्थान नहीं है। यह बात भी रहने दो। हम लोग बहुत देर से अपने ही बारे में बातें कर रही हैं। राजकुमार की मुक्ति के बारे में मैं निश्चिन्त हो गयी हूँ—तुमसे भी इस बारे में निश्चिन्त रहने की विनती करती हूँ।"

तिलोत्तमा बोली, "जब तुम ही उनकी मुक्ति के बारे में शक नहीं कर रही हो तो मैं क्यों उसके लिए सोच करूँ?"

उसके बाद आयशा ने स्नेह से तिलोत्तमा के गले में बाहें डाल दीं और कहा, "मेरे साथ जीवन में फिर कभी मुलाक़ात होगी उसकी संभावना नहीं है। मेरा भाई लड़ाई में हार गया है। मैं महाराज की कृपा से मुक्ति पाकर उड़ीसा भाई के पास चली जाऊँगी। घटना-प्रवाह जिस दिशा में प्रवाहित है उससे भविष्य में पठान और मुगलों में दोस्ती होने की कोई उम्मीद नहीं है। शायद पठान मिटा दिये जायँ, इसलिए शायद उस समय आयशा का नाम भी उसी के साथ डूब जायगा। मेरी मृत्यु की खबर भी तुम्हें मिल ही जायगी—इसमें मुझे सन्देह है। फ़िलहाल इसी मुलाकात को आखिरी मुलाकात मान लो।"

तिलोत्तमा ने दुखित स्वर में पूछा, "क्यों बहन, तुम ऐसी बात क्यों कर रही हो? तुमसे अपनी मुलाक़ात की मुझे बराबर उम्मीद है और रहेगी। अपने दिल के सुख-दुख की कितनी बातें तुमसे कहूँगी, कितनी मुसीबतों में तुम्हारी सहायता लूँगी, कितनी ही सम्पदाओं में तुमसे हिस्सा बटाऊँगी और आनन्द लूँगी। फिर क्यों ऐसी कठोर बातों से मेरी लालसाओं को छिन्न-भिन्न कर रही हो?"

आयशा बोली, "बहन, मनुष्य के हृदय में आशा और आकांक्षा जितनी ही घटती जाती है, उतना ही अच्छा है। मैंने अपने दिल को वासना-त्याग ही सिखाया है। इसीलिए मैं अब किसी भी आपत्ति से घबराती नहीं हूँ। यह प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोग भी मेरे लिए मत घबराना।"

एक नौकरानी ने आकर खबर दी "बहू मा को ले जाने के लिए महारानी जी ने मुझे भेजा है।"

तिलोत्तमा फौरन आसन छोड़ उठ खड़ी हुई और आयशा से बोली, "मेरे लिए और रुकना मुमकिन नहीं। सास जी की कृपा से मुलाकात हो गयी यही मेरी खुशनसीबी है। लेकिन, बहन, मुझे इस मुलाकात से कोई खुशी हासिल न हो सकी। तुम्हारे इस मुल्क से चले जाने से पहले, एक रोज और तुमसे मुलाकात करूँगी। मुझे उम्मीद है कि उस रोज तुम्हारे दिल में अन्यप्रकार का परिवर्तन देखकर मैं सुखी बन सकूँगी। फिलहाल मैं बिदा लेती हूँ।"

आयशा बोली, "विदा से पहले एक दिन और मिल सकने से मैं भी सुखी होती। मेरे दिल में कोई तब्दीली देखने की उम्मीद इस जिन्दगी में न करो। दुआ करती हूँ कि तुम सभी प्रकार के सुख की अधिकारिणी बनो। महारानी मा से मेरा असंख्य प्रणाम कहना। इस देश से जाने से पूर्व एक दिन और उनसे मिल पाती तो बड़ी आभारी बनी रहती।

तिलोत्तमा विषादमय चेहरा लिये विदा लेकर चली गयी।

——:o:——

(८)

सहानुभूति

उत्कल-विजयी महाराज मानसिंह पटना लौट आये थे। उन्होंने आयशा को अब भी सम्पूर्णरूप से रिहा नहीं किया था। लेकिन उन्हें पहले से काफी ज्यादा आजादी दे रखी थी और जल्द ही मुक्ति भी दे देंगे ऐसा विचार प्रकट किया था। थोड़ी सी स्वाधीनता मिलने के बाद ही आयशा ने पटनावाले रिश्तेदारों की खैरियत का पता लगा लिया था।

ताज खाँ का परिवारवर्ग आकर आयशा से भेंट कर गया। उन्हीं लोगों से आयशा को पता लगा कि अभिराम स्वामी का दूतकार्य बेकार गया है। कानपुर में चोरों ने उनका धनरत्न कागज-पत्र सभी कुछ चुरा लिया है। उनके तीन साथी पटना वापस लौट आये हैं और अभिराम स्वामी अपने

दो साथियों के साथ दिल्ली चले गये हैं। यह खबर पाने के बाद आयशा मुक्ति के लिये व्याकुल हो गयी और दिल्ली जाने का संकल्प करने लगी।

दोपहर के समय नवाबनन्दिनी अकेली एक खत लिख रही थीं। इतने दिनों तक किसी को खत भेजने का या किसी से खत पाने का उनको अधिकार नहीं था। अब उन्हें यह आजादी मिल गयी थी। काफी देर में चिट्ठी खत्म हुई। चिट्ठी उममान खाँ के नाम लिखी हुई थी। आयशा ने लिखने के उपरान्त एकबार खत पढ़ा—

"भाई उस्मान

मुझे खबर मिली है कि बहुत सी लड़ाइयों में तुम्हारी हार हुई है। लेकिन इस खबर से मैं कुछ विचलित नहीं हूँ। क्योंकि तुम्हारे हृदय-बल पर मुझे बेहद विश्वास है। लड़ाई में पराजित होने पर भी तुम्हारे दिल को हरानेवाला वीर इस दुनिया में कौन है ?

"तुमसे इतनी दूर चली आकर मैंने बहुत बुरा किया। तुम्हारा स्नेहमय आश्रय छोड़ने का मुझे कभी अधिकार न था और वैसी शक्ति मुझमें अब भी नहीं है।

"दूर आकर मैं समझ सकी हूँ कि मेरा अपराध कितना संगीन है। मन ही मन मैं उसके लिए बेहद यातना भोग रही हूँ और अपने को हजारों दफे फटकार रही हूँ।

"मेरी इस आजादी से शायद तुम्हारे दिल को काफी ठेस पहुँची हो और दिल को काफी नाखुशी हासिल हुई हो। तुम हमेशा से मुझ पर बड़े मेहरबान रहे हो। मुझे सन्देह नहीं कि मेरा अपराध अक्षम्य है। फिर भी मुझे उम्मीद है कि तुम मुझे मुआफ कर दोगे। क्या मेरी यह उम्मीद बेकार होगी ?

"जिस जरूरत की वजह से मैं तुमसे दूर चली आयी हूँ, तुम्हें उसके बारे में जानने की कोई जरूरत नहीं। तुमने शायद मेरी मा से सुना हो कि जायदाद के बारे में इन्तजाम करने की मन्शा से मैंने तुम्हारा करुणामय आश्रय त्यागा है। तुच्छ धन-सम्पत्ति की लालच से आयशा कभी तुम्हारे स्नेहभरे

आश्रय से दूर नहीं जा सकती। तुम्हारी दया के बदले संसार की सारी सम्पदा न्योछावर करना आयशा के लिए असंभव नहीं है।

"जिस कर्त्तव्य का पालन करने में तुम्हारे भवन से आने को मैं मजबूर थी वह कार्य अब भी समाप्त नहीं हुआ है। शायद कुछ दिनों में वह कर्तव्य पूरा हो जायगा।

"तुम्हारे असीम स्नेह, कृपा और लाड़ से मेरा सारा चित्त पसीजा हुआ है। क्या मेरे अपराध के कारण अपने क्रोध से तुम उसे सुखा सके हो ? क्या तुम ऐसा कर सकोगे ?

"तुम्हारी डावाँडोल दशा से मुझे कोई चिन्ता नहीं हुई। क्योंकि, मैं जानती हूँ, भौतिक गौरव कभी चिरस्थायी नहीं होता, उसके आने और जाने में अधिक समय नहीं लगता। लेकिन हृदय की उच्चता और महानता किसी को सरलता से नहीं मिलती। जिसे वह मिली हो मनुष्यों में वही धन्य है। मैं जानती हूँ कि तुम्हारा हृदय असामान्य सद्गुणों का निवास है, इस लिए सांसारिक सम्पदा के घटने-बढ़ने से तुम्हें क्या लाभ-हानि होगी ?

"मालूम नहीं, कि इस संगीन हालत में यातना को तुम कितने धैर्य से सहन कर सके हो। तुम्हारी सहनशक्ति और धीरज असामान्य है। वर्तमान अवस्था में परिवर्तन-हेतु जो क्लेश तुम उठा रहे हो, इसकी तुलना में हृदय की अथाह ज्वाला तुमने किंचित धैर्य के साथ चुपचाप सहन कर ली है, यह मुझे मालूम है। इसलिए यह क्षुद्र अवस्थान्तर तुम्हें दबा नहीं सकता, यही मेरा एकमात्र विश्वास है।

" इस बुरे वक्त पर तुम्हारे पास पहुँचने के लिए और इस अवस्थान्तर से तुम्हारा हृदय अटल पर्वत सा कैसा स्थिर है, यह देखने के लिए और आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें भरसक सहायता करने को या तुम्हारा मनोरंजन करने के लिए मेरा चित्र बड़ा व्याकुल है।

" नये स्थान पर आकर मुझे मुसीबत में फँस जाना पड़ा है। तुम शायद उसके बारे में सुन चुके होगे इसलिए खत में उसका जिक्र नहीं किया लेकिन इस विपत्ति से मेरी कोई हानि नहीं हुई।

"और अधिक कुछ न लिखूँगी। जिसके सैकड़ों अपराध हमेशा से क्षमा

करते आये हो, फिर उसी क्षमा को माँगकर वह अपने पत्र को समाप्त कर रही है।

भवदीय

अभागिन आयशा ''

इस खत को ठीक जगह पहुँचाने के लिए जरूरी आदेश देकर आयशा ने उसे ताज खाँ के पास भेज दिया। दूसरी बहुत सी बातें भी ताज खाँ के लिए बता दीं। विश्वासी और चतुर व्यक्ति सन्देश और खत लेकर ताज खाँ के पास चला गया ?

आयशा उसी जगह अकेली बैठी-बैठी बहुत कुछ सोचती रहीं। झटपट आजादी पाना उनकी प्रधान इच्छा थी, फिर भी इसके लिए मानसिंह की करुणा-भिक्षा उन्होंने आवश्यक न समझी।

——)०(——

(६)

विदा

जिस दिन दोपहर को आयशा ने उसमान को खत लिखा उसी दिन शाम को कुछ देर बाद महारानी उर्मिला और महाराज मानसिंह ने उन्हें अन्तःपुर में आने का निमंत्रण भेजा। खुशी-खुशी आयशा ने यह न्योता स्वीकार कर लिया।

आयशा के राजपुरी में पहुँचते ही, उर्मिला को खबर मिली और फौरन दरवाजे तक आकर उन्होंने उनका स्वागत किया। महारानी के साथ आयशा एक बड़े और सुसज्जित कक्ष में उपस्थित हुईं। उस कक्ष में महाराज मान-सिंह एक रत्नासन पर बैठे थे।

आयशा के कक्ष में प्रवेश करते ही महाराज आसन त्याग कर जरा आगे बढ़े और नवाबनन्दिनी को बैठने के लिए एक आसन दिखा दिया। उस आसन पर न बैठ आयशा महारानी के बगल में सिर झुकाये खड़ी रही। तब महारानी प्यार से आयशा का हाथ पकड़ कर एक आसन के पास गयीं और स्वयं उसके एक हिस्से पर बैठकर आयशा को दूसरे हिस्से पर बिठाया।

महाराज आसन पर बैठते हुए बोले, "बेटी, तुम्हें इतने दिनों तक व्यर्थ कष्ट देकर मैं लज्जित हूँ। इस क्षण से तुम स्वाधीन हो। जिस राजनैतिक आवश्यकता से तुम्हें मैंने कष्ट दिया था, उसके लिए ऐसा रास्ता अपनाना मेरे लिए गलत था। तुम्हारी आज़ादी के बारे में मैं ही तुमसे जाकर कहूँगा ऐसा सोच रखा था, लेकिन महारानी ने तुमसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो तुम्हें कष्ट उठाकर यहाँ आने के लिए मैंने अनुरोध किया।

आयशा बोली, "महारानी मा ने मुझे स्मरण किया है यह मेरा परम सौभाग्य है। स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए मैं महाराज से अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।"

महाराज ने पूछा, "इसके बाद तुमने क्या निश्चय किया है बेटी? तुम्हारा अभिप्राय इस समय कहाँ जाने या रहने का है?"

आयशा बोली, "अब मैं दिल्ली जाऊँगी।"

"इसके बाद क्या दिल्ली में ही रहने का विचार है?"

"महाराज ऐसा प्रश्न क्यों कर रहे हैं?"

"मैं जानता हूँ कि दिल्ली में तुम बहुतों से परिचित हो। शायद बादशाह भी तुम्हारे बारे में जानते हों। और मुझे जितना मालूम है उससे लगता है कि तुम मुगलों के साथ अधिक घनिष्ट-सूत्र से बँधी हो।"

आयशा बोली, "क्या इसी कारण से महाराज को लग रहा है कि मेरे लिए इसके बाद दिल्ली में रहना श्रेयस्कर है?"

मानसिंह ने कहा, "और भी ख्याल होता है कि सारे भारतवर्ष से पठानों की प्रधानता लुप्त हो गयी है। उड़ीसा में जिन पठानों के साथ तुम्हारा सम्बन्ध था वे अब बिल्कुल क्षीण हो गये हैं इसलिए उनका साथ छोड़ना ही उचित है।"

आयशा ने ज़रा सोचकर कहा, "महाराज ने जो जो बातें बतायीं उन्हें सुनकर मैं समझ रही हूँ कि मेरे लिए पठानों से रिश्ता न छोड़ना ही उचित है। जो लोग मेरे आश्रयदाता रहे हैं, जो लोग मेरे प्रतिपालक हैं, मेरे प्रति जिनलोगों के स्नेह और करुणा का अन्त नहीं, जो लोग मेरे सुख-दुख में सुखी और दुखी होते हैं, वे लोग आज घटनाओं के फेर से हीन हो गये

हैं तो मैं उनलोगों का साथ क्यों छोड़ दूँ ? बल्कि पठानों पर बुरे दिन आ पड़नेसे मेरा उनके साथ अटूट बना रहना ही आवश्यक है।"

इस बात से महाराज जरा लजा गये। कोई उचित जवाब उन्हें न सूझा। महारानी उर्मिला पति की यह दुर्गति देखकर बोलीं, "तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। तुम हम लोगों की सामग्री हो, हमारे पास ही क्यों नहीं रह जातीं ?

आयशा बोली, "मेरे प्रति महारानी माता के अनुग्रह की कोई सीमा नहीं है। लेकिन मेरे प्राणों का आकर्षण और कर्त्तव्यबुद्धि मुझे दूसरी राह पर चलने को कह रहे हैं।"

मानसिंह बोले, "अगर तुम उड़ीसा जाना ही श्रेयस्कर समझती हो तो इस समय दिल्ली क्यों जा रही हो ?"

आयशा बोली, "कुवँर जगतसिंह की मुक्ति का प्रबन्ध करने।"

मान०—ऐसा मैंने सुना है कि उसके लिए पहले ही अर्जी भेजी गयी है। तो फिर तुम क्यों जा रही हो ?

आयशा—दुर्भाग्य से वे सारे कागज-पत्र खो गये।

मान०—तो क्या नयी अर्जी पर फिर दस्तखत हो गये हैं ?

आयशा—नहीं, मुझे विश्वास है कि मैं यदि स्वयं दरबार में इस बात का उल्लेख करूँगी तो बिना अर्जी के भी अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।

मानसिंह ने समझा कि ऐसा होना असंभव नहीं है। बोले, "राजदंड से दंडित व्यक्ति को इस प्रकार सहायता कर तुम बहुत ही बेजा काम कर रही हो। तुम नारी हो, इसलिए एकबार तुम्हारा अपराध मुआफ कर दिया है, लेकिन—बार-बार ऐसे अपराध क्षमा करना असंभव है। तुम यह प्रयत्न छोड़ दो वर्ना तुम्हें दंड देने को मैं मजबूर हो जाऊँगा।"

आयशा बोली, "मुझे सजा देने की शक्ति अवश्य ही महाराज को है। लेकिन मुझे यकीन है कि आप कभी ऐसा नही करेंगे।"

"क्यों ?"

आयशा—हितकारी को इस संसार में कभी कोई सजा नहीं देता।

मानसिंह—तुम मेरी शक्ति का विरोध कर रही हो। मुझसे बगैर पूछे ही

राजदंड से दंडित व्यक्ति की सहायता कर रही हो; तो तुम्हें हितकारी क्यों कर मान लूँ?

आयशा—महाराज मुँह से जो कुछ कह रहे हैं क्या आपके मन का भाव भी ऐसा ही है? सच बात बताना पड़े तो क्या आप नहीं कहेंगे कि युवराज को दंडित करना भी आपकी असीम क्रूर राजनीति की एक चालमात्र है? क्या संसार के समक्ष, खासतौर से बादशाह अकबर के समक्ष अपनी राजभक्ति, न्यायनिष्ठा और कर्तव्य-परायणता का परिचय देने के लिए ही आपने मामूली कारणों से अपने प्रियपुत्र को बन्दी नहीं बनाया है? अब कितने दिनों में, किस उपाय से युवराज मुक्ति प्राप्त करेंगे, क्या इसी चिन्ता से आपका हृदय निरन्तर व्याकुल नहीं है? तो महाराज, सच बताइए, स्वतःप्रवृत्त होकर जो व्यक्ति आपका यह उपकार करने को तैयार हुआ है वह यथार्थरूप से आपका हितकारी है या नहीं?

मानसिंह— तुम जो कुछ कह रही हो सो सच है या नहीं यह विचार करने की आवश्यकता इस समय नहीं है। तुम मेरा भला-बुरा सोच कर इस काम में नहीं लगी हो, तुम अपने स्वार्थ के लिए राज-व्यवस्था के विरुद्ध आचरण करने लगी हो। तब उसके लिए सजा क्यों नहीं स्वीकारोगी!

आयशा--हो सकता है कि मैं अपने स्वार्थ के लिए राजपुत्र की मुक्ति का प्रयास कर रही हूँ। लेकिन इस क्षेत्र में मेरा स्वार्थ और महाराज का स्वार्थ समान है इसलिए मेरा प्रयत्न महाराज के लिए भी हितकारी हो रहा है। ऐसी जगह पर मुझे सजा देने पर महाराज को कभी सन्तोष न मिलेगा।

मानसिंह बातों में हार गये इसलिए खामोश हो गये। महारानी उर्मिला बोलीं, "तुम जैसी गुणवती कन्या को मैं छोड़ूँगी नहीं। मैं तुम्हें पुत्रवधू बना-कर घर-गृहस्थी चलाऊँगी।"

आयशा ने लजाकर सिर झुका लिया। उर्मिला फिर बोली, "तुम यवन-कन्या हो इसलिए कोई आपत्ति नहीं होगी। महाराज ने पहले ही मुसलमानों के साथ रिश्ता किया है। फिर अगर वे उसी सम्पर्क को आगे बढ़ाते हैं तो कोई नुकसान नहीं होगा।"

आयशा सिर झुकाये रही। उर्मिला बोली, 'बात क्यों नहीं कर रही

हो ? तुम्हारा रूप, गुण और बुद्धि अतुलनीय है। तुम्हें जो लोग अपनी समझते हैं वे ही सुखी हैं। मैं ऐसे सुख की आशा छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती।"

आयशा बोली, "मेरे प्रति आपकी दया की कोई सीमा नहीं। मैं आप लोगों की दासी हूँ। लेकिन—"

आयशा फिर खामोश हो गयी। उर्मिला ने पूछा, "लेकिन क्या बेटी ?"

आयशा बोली, "लेकिन मा, मैं ऐसे अनुग्रह की पात्री नहीं हूँ। मेरे कर्तव्य और जीवन की गति पहले से ही निश्चित हैं।"

मानसिंह बोले, "तुम दिल्ली जाने से पूर्व जगतसिंह से मिलना नहीं चाहती हो ? मैं तुम्हें अभी कारागार में प्रवेश करने की इजाजत दे रहा हूँ।"

आयशा बोली, "कोई ज़रूरत नहीं है। अब आप मुझे कृपया बिदा कर दीजिए। कल सवेरे ही मैं रवाना हो जाऊँगी, इसलिए मेरे पास इस वक्त बहुत काम है।"

उर्मिला बोली, "आज तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। आओ तुम्हें बहू मा के पास ले चलती हूँ। वहीं पर उनके साथ तुम आज रहोगी। तुम्हारे साथ वहीं पर मैं बातें करूँगी। चलो।"

महाराज को ससम्मान अभिवादन कर आयशा अपने आसन से उठी। महारानी अपने दाहिने हाथ से उसका बायाँ हाथ पकड़कर उसे साथ लेकर चलीं।

मानसिंह ने जाती हुई नवाबनन्दिनी की ओर देखकर मन में विचारा, कैसी देवबाला सी शक्ल-सूरत है, कितना साहस है, कितनी कुशाग्र बुद्धि और कितनी निर्भीकता है फिर भी कितनी कोमलता, कितनी सरलता, मधुरता, शालीनता और लज्जाशीलता है। यह कुमारी जिस वंश की बहू बनेगी वह वंश धन्य होगा। मेरे भाग्य में क्या ऐसा लिखा है ?

——o:-*-:o——

राजदंड से दंडित व्यक्ति की सहायता कर रही हो; तो तुम्हें हितकारी क्यों कर मान लूँ ?

आयशा—महाराज मुँह से जो कुछ कह रहे हैं क्या आपके मन का भाव भी ऐसा ही है ? सच बात बताना पड़े तो क्या आप नहीं कहेंगे कि युवराज को दंडित करना भी आपकी असीम क्रूर राजनीति की एक चालमात्र है ? क्या संसार के समक्ष, खासतौर से बादशाह अकबर के समक्ष अपनी राजभक्ति, न्यायनिष्ठा और कर्त्तव्य-परायणता का परिचय देने के लिए ही आपने मामूली कारणों से अपने प्रियपुत्र को बन्दी नहीं बनाया है ? अब कितने दिनों में, किस उपाय से युवराज मुक्ति प्राप्त करेंगे, क्या इसी चिन्ता से आपका हृदय निरन्तर व्याकुल नहीं है ? तो महाराज, सच बताइए, स्वतःप्रवृत्त होकर जो व्यक्ति आपका यह उपकार करने को तैयार हुआ है वह यथार्थरूप से आपका हितकारी है या नहीं ?

मानसिंह— तुम जो कुछ कह रही हो सो सच है या नहीं यह विचार करने की आवश्यकता इस समय नहीं है। तुम मेरा भलाबुरा सोच कर इस काम में नहीं लगी हो, तुम अपने स्वार्थ के लिए राज-व्यवस्था के विरुद्ध आचरण करने लगी हो। तब उसके लिए सजा क्यों नहीं स्वीकारोगी ?

आयशा—हो सकता है कि मैं अपने स्वार्थ के लिए राजपुत्र की मुक्ति का प्रयास कर रही हूँ। लेकिन इस क्षेत्र में मेरा स्वार्थ और महाराज का स्वार्थ समान है इसलिए मेरा प्रयत्न महाराज के लिए भी हितकारी हो रहा है। ऐसी जगह पर मुझे सजा देने पर महाराज को कभी सन्तोष न मिलेगा।

मानसिंह बातों में हार गये इसलिए खामोश हो गये। महारानी उर्मिला बोली, "तुम जैसी गुणवती कन्या को मैं छोडूँगी नहीं। मैं तुम्हें पुत्रवधू बनाकर घर-गृहस्थी चलाऊँगी।"

आयशा ने लजाकर सिर झुका लिया। उर्मिला फिर बोली, "तुम यवन-कन्या हो इसलिए कोई आपत्ति नहीं होगी। महाराज ने पहले ही मुसलमानों के साथ रिश्ता किया है। फिर अगर वे उसी सम्पर्क को आगे बढ़ाते हैं तो कोई नुकसान नहीं होगा।"

आयशा सिर झुकाये रही। उर्मिला बोली, "बात क्यों नहीं कर रही

हो ? तुम्हारा रूप, गुण और बुद्धि अतुलनीय है। तुम्हें जो लोग अपनी समझते हैं वे ही सुखी हैं। मैं ऐसे सुख की आशा छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती।"

आयशा बोली, "मेरे प्रति आपकी दया की कोई सीमा नहीं। मैं आप लोगों की दासी हूँ। लेकिन—"

आयशा फिर खामोश हो गयी। उर्मिला ने पूछा, "लेकिन क्या बेटी ?"

आयशा बोली, "लेकिन मा, मैं ऐसे अनुग्रह की पात्री नहीं हूँ। मेरे कर्तव्य और जीवन की गति पहले से ही निश्चित हैं।"

मानसिंह बोले, "तुम दिल्ली जाने से पूर्व जगतसिंह से मिलना नहीं चाहती हो ? मैं तुम्हें अभी कारागार में प्रवेश करने की इजाजत दे रहा हूँ।"

आयशा बोली, "कोई ज़रूरत नहीं है। अब आप मुझे कृपया बिदा कर दीजिए। कल सबेरे ही मैं रवाना हो जाऊँगी, इसलिए मेरे पास इस वक्त बहुत काम है।"

उर्मिला बोली, "आज तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। आओ तुम्हें बहू मा के पास ले चलती हूँ। वहीं पर उनके साथ तुम आज रहोगी। तुम्हारे साथ वहीं पर मैं बातें करूँगी। चलो।"

महाराज को ससम्मान अभिवादन कर आयशा अपने आसन से उठी। महारानी अपने दाहिने हाथ से उसका बायाँ हाथ पकड़कर उसे साथ लेकर चलीं।

मानसिंह ने जाती हुई नवाबनन्दिनी की ओर देखकर मन में विचारा, कैसी देवबाला सी शक्ल-सूरत है, कितना साहस है, कितनी कुशाग्र बुद्धि और कितनी निर्भीकता है फिर भी कितनी कोमलता, कितनी सरलता, मधुरता, शालीनता और लज्जाशीलता है। यह कुमारी जिस वंश की बहू बनेगी वह वंश धन्य होगा। मेरे भाग्य में क्या ऐसा लिखा है ?

——o:-*-:o——

(१०)

लुप्तोद्धार

अभिराम स्वामी ने अगले दिन सबेरे शहर कोतवाल और सिपाहियों को साथ लिये यमुना के दूसरे तट पर जंगल में प्रवेश किया। डाकू उस समय भी उसी जगह पर थे ! आसानी से वे गिरफ्त में आ गये। अर्जी, दूसरी चिट्ठियाँ धनरत्न आदि सभी सामान उनके पास थे। वे सभी कोतवाल के हाथ लगे। सभी सामान के साथ डाकुओं को बाँधकर कोतवाल शहर लौट आए। अभिराम स्वामी और उनके दो साथी कोतवाल के पीछे-पीछे शहर में दाखिल हुए।

सभी कुछ हुआ पर अभिराम स्वामी का काम न बना। उन्होंने कोतवाल से अपने सामान की पुनः-प्राप्ति के लिए सविनय प्रार्थना की। कोतवाल ने समझा दिया कि बरामद किये हुए माल के साथ चोरों को काजी के पास न्याय के लिए भेजना होगा। न्याय के उपरान्त ये सामान जिनके होंगे उन्हें वापस दे दिये जायेंगे बशर्ते इस बारे में वे संतोषजनक प्रमाण पेश करें कि ये सामान उन्हीं के हैं। शायद इसलिए उन्हें काफी जमानत भी देनी पड़ेगी। इसलिए अभिराम स्वामी बीस हाथ पानी के नीचे हो गये।

अभिराम स्वामी के पास कौड़ी तक भी न थी। लेकिन संन्यासी का भेष अक्सर लोगों को काफी सहायता करता है। उन्होंने भूख-प्यास मिटाने के लिए भीख माँगने का विचार किया। एक उच्चपदस्थ राजपूत सैनिक के पास वे पहुँचे और सारी अवस्था और घटनाएँ उनको बताकर आर्थिक सहायता और उपस्थित विपत्ति में उनकी सलाह माँगी। सैनिक ने सब कुछ सुनकर एक चाँदी का सिक्का अभिराम स्वामी को देते हुए उनके अपहृत सामान के पुनरुद्धार के बारे में यथोचित करने को सम्मत हो गया।

नगर से बाहर यमुना-किनारे एक पेड़ के नीचे पहुँचकर अभिराम स्वामी और उनके दोनो साथियों ने थोड़ी-बहुत भूख की जलन मिटायी। उसी स्थान को निवास स्थान निश्चित कर और दोनो साथियों को वहीं पर रहने

की सलाह देकर अभिराम स्वामी फिर नगर में लौट आये। शहर में किसी भी शरीफ आदमी को देखते ही वे उससे अपनी विषादभरी कथा सुनाने लगते। हिन्दू-मुसलमान का भेद न देखकर वे सबके सामने मानसिंह के पुत्र जगतसिंह की मुक्ति के लिए अर्जी, नवाब-नन्दिनी आयशा का खत और उसकी सहायता, धन-रत्न प्रदान करना, कानपुर का अग्निकांड, सर्वनाश, असम्भावित उपायों से डाकुओं का पता लगना, कोतवाल द्वारा उनकी गिरफ्तारी और अन्त में कोतवाल द्वारा उनका सामान लौटाने में अनिच्छा प्रकट करना आदि सभी बातें वह कहने लगे। अविलम्ब ही उनकी ये सब बातें शहर में चारों ओर अच्छी तरह से प्रचारित हो गयीं। बड़े ही कम समय में उच्चपदस्थ राज-पुरुष भी इस सम्बन्ध में विदित हो गये। जिस सैनिक ने पहले दिन उन्हें आर्थिक सहायता की थी उससे अभिराम स्वामी रोज भेंट करने लगे। वे भी जल्दी ही कार्य-सिद्धि के बारे में अभिराम स्वामी को तसल्ली देने लगे।

स्वामी जी हर रोज दो बार कोतवाल से मिलना न भूलते। उन्होंने भी तसल्ली दी कि जल्द ही कोई ठीक इन्तजाम हो जायगा। उनके चिन्तित मस्तिष्क में तसल्ली और हमदर्दी काफी बरसने लगी। लेकिन काम कुछ भी न हुआ। करीब तीन महीने बीत गये। ऐसे ही समय अभिराम स्वामी ने सुना कि नवाब-नन्दिनी आयशा आगरा आयी हुई है। अभिराम ने समझा अब उनका मनोरथ पूरा हो जाएगा।

अभिराम स्वामी ने आयशा के रहने के स्थान का पता लगाने की बड़ी कोशिश की। स्थान का पता तो उन्होंने लगा लिया लेकिन नवाब-नन्दिनी से मिलने का कोई मौका उन्हें न मिला। आयशा आगरा में एक नामी उमराव के घर में रह रही थी। वहाँ स्वामी जी को अन्दर जाने की कोई सुविधा न मिली। बड़े यत्न के बाद एक नौकरानी उनका सन्देश नवाब-नन्दिनी के पास पहुँचाने को तैयार हुई। वह सन्देश लेकर चली गयी पर फिर वापस न लौटी। आयशा की सलाह और इन्तजाम के बारे में किसी ने उन्हें कुछ न बताया। अतः अभिराम स्वामी मन मार कर लौट आए।

आयशा से भेंट न होने पर भी या उनके द्वारा कोई सन्देश भेजे न जाने पर भी, अभिराम स्वामी के उद्देश्यों की सिद्धि की अनुकूल घटनाएँ होने

लगीं। अगले दिन सबेरे कोतवाल से मिलने जाकर अभिराम ने देखा कि अन्य दिनों की तुलना में उस दिन कोतवाल साहब ने उनका खास समादर किया और कहा, "डाकुओं के पास जो कागजात थे आम दरबार से तलब किये जाने पर वे सब भेज दिये गये हैं। धन-रत्न अभी तक मेरे पास ही है उसके बारे में कोई हुक्म नहीं मिला है।"

अभिराम लौट आये, समझे, यह सब कुछ आयशा के प्रयत्न से ही हुआ है। इतने दिनों तक उनके दर-दर भटकने के बाद भी जो न हो सका वह आज अचानक क्यों हो रहा है? इतने दिनों में युवराज की अर्जी ठीक जगह पहुँची है यह जानकर वे निश्चिन्त हुए।

अगले दिन उन्होंने कोतवाल से फिर मुलाकात की। उस दिन वह यह सुनकर लौटे कि स्वामी जी को अब आगरा में और ठहरने की जरूरत नहीं है। उनका जी चाहे तो वह अपने देश वापस जा सकते हैं। उद्देश्य से वह आगरा आये हुए हैं उसके बारे में हुक्म वक्त पर भेज दिया जाएगा और वह हुक्म सन्देश वाहक द्वारा ठीक जगह पर पहुँच जायगा।

अभिराम स्वामी उस जगह से लौट आए। आयशा से मिलकर उनका इरादा जानने का फिर उन्होंने प्रयास किया लेकिन पहले की तरह इस बार भी असफल रहे। मुलाकात करने का या सन्देश भेजने का जब कोई सिलसिला न लगा तो व्यर्थ-मनोरथ हो अभिराम उस स्थान से चल दिये।

अगले दिन सबेरे जब वे फिर कोतवाल से मिले तो सुना कि अपने पाँचों साथियों को बाँटने के लिए और अपना राह खर्च निबटने के लिए स्वामी जी को कोतवाल पाँच हजार सिक्के देने को तैयार हैं। उन्हें कष्ट उठा कर आगरे में रहने की कोई जरूरत नहीं है। डाकुओं के न्याय के समय अभिराम स्वामी की किसी भी सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जरूरत पड़े तो अभिराम स्वामी अपने छः घोड़े भी ले सकते हैं। उन्हें साथ लेकर वे स्वदेश जा सकते हैं।

अभिराम उस दिन निश्चित रूप से कोई जवाब न दे सके। अगले दिन फिर उस कर्मचारी से उन्होंने भेंट की। समझ गये कि उनका अभीष्ट पूरा होने में कोई सन्देह नहीं है। धन-रत्न के बारे में किसी सन्धान को

करने का उन्हें कोई अवकाश नहीं है। इस विषय से उनका सारा सम्बन्ध अब समाप्त हो गया है।

युवराज के बारे में क्या आदेश दिया जायगा उसका आभासमात्र ज्ञात हो जाने पर ही अभिराम स्वामी परम सन्तुष्ट हो सकते थे किन्तु किसी प्रकार से भी उसका कुछ भी पता न लगा सके। लेकिन यह भी वह समझ गये कि जल्द ही उनके उद्देश्य का अनुकूल आदेश व्यक्त होगा।

कैसे क्या हुआ यही अभिराम स्वामी न जान सके। अपनी इतने दिनों की भरसक कोशिश के बावजूद वह किसी का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके थे लेकिन आयशा के आगरा आने के साथ ही साथ यकायक सभी लोग उनकी ओर ध्यान देने लगे और उनके अधिकांश मामलों का सुप्रबन्ध हो गया। आयशा किस ढंग से किसे अवलम्ब बना कर काम कर रही है, यह अभिराम नहीं जान सके। लेकिन यह सब अनुकूल व्यवस्था नवाब-नन्दिनी द्वारा ही साधित हुई है इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न रहा।

आयशा से विदा लेने के लिए वे फिर एक बार उस उमराव के दरवाजे पर पहुंचे। मुलाकात तो हुई ही नहीं ऊपर से एक दिल तोड़ समाचार मिला। अभिराम स्वामी को प्रणाम भेजकर आयशा ने कहला भेजा, "शायद इस जीवन में कभी मुझसे भेंट नहीं होगी। युवराज जगतसिंह अपने नाते रिश्तेदारों के साथ कुशल से रहें यही मेरी कामना है। युवराज या उनके कुटुम्ब के लोगों के साथ भेंट करने की अब शायद कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा समाचार लेने के लिए आप लोग कोई व्याकुल न हों। शायद मेरा समाचार अब और आप लोगों को नहीं मिलेगा। मुझे सदा के लिए विदा दीजिए।"

अभिराम स्वामी की आँखों में आँसू आ गये लेकिन वे लाचार थे। अगले दिन निश्चित समय पर कोतवाल से धन और घोड़े ले अपने दोनो साथियों के साथ अप्रसन्न चित्त वे आगरा से चले गये।

——:※:——

(११)

नदी-वक्ष पर

उड़ीसा का कटक नगर विभिन्न कारणों से इतिहास में प्रसिद्ध है। शिल्प और दस्तकारी में प्रधानता के कारण यह नगर जनसमाज में सुपरिचित था। शोभा और समृद्धि में भी इस नगर की कोई कम धाक न थी। यह नगर विभिन्न समयों पर विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं की रंगभूमि बन चुका है। आर्य, पठान, मुगल और मराठों की प्रधानता की तरह-तरह की निशानी आज भी इस नगर के वक्ष पर विराजमान हैं।

इस नगर के प्रान्त से बहती हुई महानदी विशालता में पद्मा या मेघना के समतुल्य न होने पर भी कोई खास सँकरी या सूखी नहीं है। महानदी का निर्मल प्रवाह धीर और मृदु चाल से निरन्तर प्रवाहित और उसकी मधुर कल्लोलध्वनि अविराम श्रोताओं का मन मुग्ध कर रही है। उसके वक्ष पर नगर के नीचे विभिन्न देशों से आयी हुई नावें प्रतीक्षा कर रही हैं। किसी नाव से वाहक तिजारती माल ढोकर किनारे लगा रहे हैं तो किसी नाव में वे बड़े प्रयत्न से तरह-तरह के सामान लाद रहे हैं। किसी नाव से व्यस्त सावारियाँ किनारे उतर रही हैं तो किसी नाव में बाहर जानेवाले यात्री सवार हो रहे हैं। किसी जगह पर लम्बे अरसे के बाद मिलन के हेतु आनन्द का अभिनय चल रहा है। कहीं पर प्रियजनों से विदा लेते समय अवश्यम्भावी विषाद की लीला दिखायी पड़ रही है। कोई नाव तट छोड़कर दूर पानी में बहती जा रही है तो कोई नाव नदी पर इतने दिन नाचने-थिरकने के बाद अब किनारे आकर दम ले रही है।

नगर से आधे कोस की दूरी पर नदी के किनारे नवाब उसमान खाँ चहलक़दमी कर रहे हैं। केवल दो हथियारबन्द अनुचर थोड़ी दूर पर ठहरे हुए हैं। वह स्थान निर्जन है। नवाब की मूर्त्ति विषण्णता से भरी है और पराजय के कारण मानो काली पड़ गयी है। नवाब घूम रहे हैं और बीच-बीच में एक जगह ठहर कर नदी में बहुत दूर तक देख रहे हैं। नवाब की पोशाक बड़ी मामूली है। उनके शरीर के निचले हिस्से में ढीला

पैजामा, ऊपरी हिस्से में ढीला कुरता, सिर पर एक मामूली टोपी—पर सभी सफेद रंग के और खूब साफ-सुथरे हैं। पैरों में जरी का काम किया हुआ जूता। न तो कमर से तलवार लटक रही है, न पीठ पर ढाल है और न हाथ में भाला। नवाब उसमान अस्त्रहीन और सामान्य-वेशधारी बने हैं। जो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से सुन्दर हो वह सभी ढंग से सुन्दर दीखता है। उसमान इस पोशाक में बड़े सुन्दर जँच रहे हैं।

भादों का महीना। तिपहर हो जाने पर भी अभी तक सूर्य की किरणों में ताप नहीं घटा है। उसमान जिस स्थान पर घूम रहे हैं वहाँ विभिन्न प्रकार के बहुत से बड़े-बड़े वृक्ष थे। उन्हीं की शीतल छाया में नवाब टहल रहे हैं। नदी प्रवाह छूता हुआ पवन उनका शरीर शीतल कर रहा है। सहसा उसमान ठिठक कर खड़े हो गये। जहाँ तक नजर जाती थी वहाँ तक निहारते रहे। फिर उस ओर से मुह फेर कर चहलकदमी करने लगे।

समाचार आया है कि आज आयशा बजरे से कटक आयेंगी। कोई बाधा न आयी तो बजरा के इसी समय कटक आ पहुँचने की संभावना है ऐसा अनुमान कर उसमान नदी किनारे उस समय उपस्थित हुए हैं और अपनी हृदयदेवी की आगमन-प्रतीक्षा कर रहे हैं। आनुमानिक समय पार हो गया पर अब भी बजरा दिखाई नहीं पड़ रहा है। उसमान व्यग्र हो उठे।

कुछ देर बाद बहुत सी नावें काफी दूर दिखायी पड़ीं। दूर से वे नावें तैरती हुई चिड़ियों के समान लग रही हैं। उसमान एकटक नावों की ओर देखते रहे। नावें और भी निकट आने लगीं। उसमान समझ गये कि तीन बजरे और पाँच बड़ी-बड़ी नावें एक दूसरे के नजदीक भागती चली आ रही हैं। उसमान टकटकी लगाये नावों की ओर देखते रहे। नावों का बेड़ा और नजदीक आया। उसमान ने देखा कि एक बजरा सबसे बड़ा है और सबसे बढ़कर सुन्दर है। उन्होंने समझ लिया कि उसी बजरे में नवाबनन्दिनी है। उसमान सिर की टोपी खोल कर हिलाने लगे। उस बड़े बजरे की एक खिड़की खुल गयी। उस खिड़की में से सोने की सूत की बनायी हुई ओढ़नी के बाहर और एक अनुपम हाथ बीच में रहकर धीरे-धीरे हिलता रहा।

उसमान आनन्द से चंचल डग भरते तट पर ही नावों की ओर बढ़ने लगे। देखा, सभी नावें प्रहरियों, अंग रक्षकों, दास-दासियों और द्रव्य-सामग्रियों से भरी हैं। जिस बड़े बजरे में आयशा हैं, लगा कि उसमें दूसरा कोई नहीं है।

उसमान ने स्पष्टरूप से खिड़की में आयशा का प्रफुल्ल कोमल सा मुखड़ा देखा। दोनो ने एक दूसरे का अभिवादन किया। आनन्द की ज्योति से दोनो के चेहरे उद्भासित हो उठे। बहुत देर से आयशा की इच्छा-नुसार मल्लाह जी तोड़ कर डाँड़ खे रहे थे। नाव और बजरे वेग से आगे बढ़ रहे थे। जिस बजरे में आयशा थी यकायक उसकी चाल धीमी पड़ गयी। दूसरी नावें और बजरे आगे बढ़ गये और आयशा का बजरा पीछे पड़ गया। उस बजरे के मल्लाह अपनी निष्क्रियता के कारण लज्जित हो साध्यातीत परिश्रम करने लगे। फिर भी कुछ खास फल न निकला। क्यों ऐसा हो रहा है यह जानने के लिए वे व्यस्त हो गये।

मल्लाहों के बजरे की इस दुर्दशा का कारण निश्चय कर लेने से पूर्व ही उसमान ने देखा कि बजरे का जितना हिस्सा पानी के सतह के ऊपर होना चाहिए, उतना नहीं है। उन्होंने और देखा कि बजरा धीरे-धीरे पानी में बैठता चला जा रहा है और उसका जो अंश ऊपर था वह भी घटता जा रहा है। तब तक मल्लाहों ने भी यह मामला समझ लिया। वे जानते थे कि बजरे के पेंदे में एक जगह कम मजबूत थी वही जगह टूट गयी होगी। पेंदा सुदृढ़ नहीं था लेकिन अचानक वह धोखा दे जायगा—ऐसी शंका उन्हें कभी न थी। नवाब-नन्दिनी की आज्ञा से अत्यन्त बलप्रयोग के द्वारा बजरा चलाने के कारण अत्यन्त वेग से उत्पन्न जल के प्रचंड थपेड़ों से नाव की यह दुर्दशा हुई है।

नवाब उसमान खाँ व्याकुल हो पानी में उतरपड़े। आयशा खिड़की से उसमान का यह कार्य देखकर उद्वेग और विस्मय से वाक्शून्य हो गयी थी। सहसा उसमान ने चिल्ला कर कहा, "नवाब-नन्दिनी, झट कमरे से बाहर निकल आओ, तनिक भी देर न करो। कमरे में और कौन है ? अभी नवाब कन्याको बाहर ले आओ।"

उस समय उसमान गले तक पानी में खड़ा था। बजरे के कमरे में आयशा की एक सहेली थी। कोई कारण समझ न सकने पर भी आयशा फौरन अपनी सहेली के साथ कमरे के बाहर आ गयीं। बाहर आते ही वह समझ गयीं कि उनके बजरे के डूबने में अब कोई देर नहीं। मल्लाह समझ गये कि यह बजरा डूबने पर नवाब उन लोगों की जान नहीं छोड़ेंगे फिर भी बजरा बचाने का कोई चारा नहीं था। इसलिए वे सब उदासीन बन गये थे !

नवाब की ओर देखकर आयशा ने हाथ में हाथ बाँध कहा, "तुम क्या कर रहे हो ? पानी में क्यों उतरे हो ? मैं कातरभाव से अनुनय करती हूँ कि तुम किनारे जाओ।"

उसमान उस समय तैरने लगे थे, "तुम्हें लेकर आ पाऊँ तो किनारे आऊँगा वर्ना तुम्हारे ही साथ—"

बात खत्म न हो सकी। मल्लाह शोर मचाने लगे, सहेली रो पड़ी, आयशा हाथ हिलाती हुई उसमान से किनारे जाने को कहने लगीं और बजरा डूब गया।

जहाँ पर बजरा डूबा वहाँ एक भयंकर भवँर बन गया। उस चक्कर खाती हुई जलराशि में और एक व्यक्ति डूब गया। नवाब उसमान अब नदी में तैर नहीं रहे थे।

बजरे के मल्लाह तैर कर किनारे पर आने की कोशिश करने लगे। दूसरे आगे बढ़ जाने वाले बजरे और नाव पलट कर उस खतरनाक जगह के पास आ गये। एक बजरे पर के कुछ लोगों ने बदन से कपड़े खोलकर अलग रख दिये और पानी में कूद पड़े।

नवाब उसमान पानी के ऊपर आ गये, लेकिन वे बड़े ही थके हुए थे। प्राण खत्म होने के समय लोग मुँह खोल कर उल्टी साँस लेने लगते हैं—वे उसी तरह साँस लेने लगे। बात करने की उनमें ताब न थी। कोई वजनी चीज मानो उनके शरीर से चिपकी हुई थी। फौरन एक बजरा नवाब साहब के पास आया। तब तक पानी पर तैरते रहना उसमान के लिए असंभव हो गया था। वे एक बार डूबने और एकबार तैरने लगे। बजरा से लोगों ने

एक लम्बा सा कपड़ा फेंका। उसमान ने उसे एक हाथ से पकड़ा। बहुत से लोगों ने मिलकर वह वस्त्र खींचा और उन्हें बजरे के पास खींच लाये। तब कुछ लोगों ने बहुत नीचे झुककर उनका हाथ पकड़ लिया।

उसमान की अचेतनप्राय देह उठाते समय बजरे के लोगों की समझ में आया कि नवाब अकेले पानी के सतह पर नहीं आये हैं। उनके कमर में ओढ़नी का एक सिरा बँधा था। नवाब को थोड़ा उठाते ही उन लोगों ने खुले केश नवाब-नन्दिनी का अचेतनप्राय शरीर देखा। बड़ी सावधानी से लोगों ने दोनो के शरीर बजरे पर चढ़ा लिए।

उसमान ने कहा, "जो व्यक्ति दासी को बचा सकेगा उसे बहुत पुरस्कार मिलेगा।"

एक व्यक्ति ने कहा, "खुदाबन्द वह देखिए एक सिपाही दासी को ला रहा है।"

सचमुच एक व्यक्ति दासी को लेकर पानी की सतह पर आ गया। तभी दूसरी एक नाव के लोगों ने उन दोनो को ऊपर उठा लिया।

आयशा के वस्त्र कुछ भी स्थान भ्रष्ट नहीं हुए थे। लोगों ने बड़ी ही सावधानी से संगमर्मर का बना वह सुडौल प्रतिमा सा अचेतन शरीर बजरे पर रख दिया।

——)o(——

(१२)

मंत्रणा

नवाब-नन्दिनी की दशा बहुत खराब है। उसमान की मेहनत और लगन से आयशा जल-समाधि से बच गयी थी लेकिन उस दुर्घटना का परिणाम भयानक बुखार के रूप में बदल गया था। बहुत से विज्ञ वैद्य और हकीम दक्षता से उनका इलाज कर रहे हैं। नवाब के महल में उद्वेग की कोई सीमा नहीं। कतलू खाँ की बहुत सी बेगमें हैं। आयशा सभी के

लिए बड़ी दुलारी है इसलिए वे सभी उसके लिए बड़ी व्याकुल हैं। कश्मीरी बेगम खाना-सोना छोड़ कर निरन्तर आयशा के बिस्तर के पास बैठ जी-जान लड़ा कर बीमार की सेवा कर रही है। आयशा नवाबपुरी की शोभा है, सभी की नयनानन्द-दायिनी तथा सर्व-जन-सुख दायिनी है। इस कारण नवाब भवन की दास-दासियाँ आदि सभी नवाब-नन्दिनी की बीमारी की बात सुनकर बड़े दुखित हैं।

नवाब सुलेमान सदा विलास-समुद्र में डूबे रहते और दूसरे सांसारिक मामलों से भी उदासीन रहते लेकिन आयशा की कठिन बीमारी की बात सुनकर वे भी बहुत दुखित हो गये। शराब का जाम और हसीन औरतों का साथ छोड़कर बार-बार वे स्वयं आकर समाचार पूछते रहे।

और नवाब उसमान खाँ? उनकी क्या दशा है? उनके चित्त की दशा वर्णनातीत है। वे मरीज़ा के बगल के कमरे में निरन्तर बैठे हैं। कहाँ राज्य, कहाँ युद्ध, कहाँ सुलह, कहाँ उमंग और कहाँ दुराकांक्षा? दुनिया की सभी बातें वह भूल गये थे। अपने शरीर या किसी शारीरिक आवश्यकता की ओर उन्हें कोई ध्यान नहीं था। हकीम और वैद्यों के मुंह मरीजा की दशा बार बार सुनने के लिए वह अधीर हो बगल के कमरे मे बैठे रहे।

दिन बीतने लगे। विधाता ने कृपा की। मरीजा की दशा धीरे-धीरे बेहतर होने लगी। चिकित्सकों को भी तसल्ली मिली। सारी नवाबपुरी में मानों प्राण लौट आया। हकीम और वैद्यों को बहुत से शिरोपा मिले। मसजिदों में भी बहुत किस्म के खर्च हुए। बहुत खैरातें बटीं, गरीबों को भोजन कराया गया और बहुत से धार्मिक अनुष्ठान भी हुए। नवाबपुरी के सभी लोग विभिन्न प्रकार के आनन्ददायक कार्यों में लिप्त हो गये। धीरे-धीरे मरीजा स्वस्थ हो गयी। पथ्य आदि लेने के उपरान्त उनके शरीर में धीरे-धीरे शक्ति और बीमारी से नष्ट हुई सुन्दरता फिर से वापस आने लगी।

अब उसमान मरीजा के बगल के कमरे में निरन्तर नहीं ठहरते। शुरू में रोज बार-बार स्वयं आकर रोग-मुक्ता सुन्दरी के हालचाल पूँछ जाते थे और जैसे-जैसे उनकी सेहत सुधरती गयी वैसे-वैसे उसमान का आना कम होने लगा। अन्त में एक-दो दिन के बाद वह मरीजा के कमरे में दर्शन देने लगे।

आयशा की मा भी अब सदा अपनी बेटी के सिरहाने नहीं बैठी रहती

है। आयशा भी उठकर इधर-उधर टहलने लगी है। अविराम उनके सेवा में लगे रहने की अब कोई आवश्यकता नहीं है।

दोपहर को आयशा अकेली पलंग पर बैठी हुई थी। आसपास कोई दासी भी न थी नवाब-नन्दिनी तरह-तरह की चिन्ताओं में मग्न थी। ऐसा क्यों हुआ? क्या वे ही पठानों के पतन की हेतु हैं? क्या यत्न करने पर, जो कुछ भी हो गया है उसमें कोई रद्दोबदल नहीं किया जा सकता? आयशा को असीम चिन्ता सता रही थी।

सहसा उसमान ने कमरे के दरवाजे से पूछा, "आयशा, कैसी हो?"

आयशा ने जवाब दिया, "अच्छी ही हूँ। तुम कमरे में आओ उसमान।"

उसमान ने जरा झिझककर पूछा, "तुम अकेली क्यों बैठी हुई हो आयशा? रहने दो—इस समय नहीं आऊँगा। किसी दूसरे समय तुमसे आकर मुलाकात कर लूँगा।"

आयशा समझ गयी कि वे अकेली हैं इसलिए उसमान कमरे में दाखिल होने में झिझक रहे हैं। आयशा दरवाजे के पास चली आयी और बोली, "भीतर आओ, तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं।"

उसमान अब इनकार न कर सके और कमरे में दाखिल हो गये। आयशा बोली, "खड़े क्यों हो? यहाँ बैठो।"

उस पलंग के अलावा वहाँ बैठने का कोई दूसरा आसन न था। उसमान बोले, "तुम बैठो, मुझे खड़े रहने में कोई तकलीफ न होगी।"

आयशा बोली, "हिचकिचाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं कह रही हूँ कि तुम बिना संकोच के बैठ जाओ।"

उसमान उस पलंग के एक सिरे पर बैठ गये और विस्मय से देखने लगे कि आयशा दूसरे सिरे पर बैठ गयी। उसके बाद वह बोली, "मैं कुछ अरसे के लिए तुमसे दूर थी, लौट कर आने के बाद भी बीमारी के कारण तुमसे बात-चीत करने का मुझे कोई समय न मिला। मैं नारी हूँ—तुम्हारे शासनाधीन रहना ही मेरा कर्त्तव्य है। उससे अन्यथा कर मैंने विशेष अपराध किया है। भाई, उसके लिए क्षमा माँग रही हूँ।"

उसमान ने कहा, "क्यों क्षमा माँग रही हो? मैंने क्या कभी तुम पर असन्तोष प्रकट किया है? तुम कृपाकर जो नवाब-पुरी में आयी हो तो तुम्हारे शुभागमन से मेरे मृत शरीर में प्राण लौट आया है। तुमसे कोई अपराध हुआ है ऐसा मैंने एक दिन के लिए भी नहीं सोचा है। फिर आयशा तुम क्षमा क्यों माँग रही हो?"

आयशा बोली, "मेरी अनुपस्थिति के समय हम लोगों का काफी भाग्य परिवर्तन हो गया है। क्या इसलिए तुम अवसाद से पूर्ण हो गये हो?"

उसमान बोले, "यह बात सच है कि हमारे भाग्य ने जबर्दस्त पलटा खाया है, उससे मेरा हृदय तनिक भी अवसन्न न हुआ हो ऐसा नहीं कह सकता हूँ। तुम अपराध की बात कर रही थीं आयशा। मेरे इस भाग्य परिवर्तन के लिए तुम सचमुच जिम्मेवार हो! तुम उसमान की बाहों में बल, हृदय में साहस, मन में बुद्धि और कर्म में उमंग हो। उसमान का यह सब कुछ चुरा कर तुम चली गयी थीं। ऐसी दशा में भाग्य का पलटना अनिवार्य था।"

आयशा बोली, "जो होने को था सो हो गया है। क्या उसे बनाने का कोई उपाय नहीं है?"

उसमान बोला, "उपाय तो बहुत हैं लेकिन वे उपाय तुम्हारे ही हाथों में हैं। तुम इस नवाबपुरी की कल्याणमयी हो। यदि तुम मेरी कल्याण-कामना से पीछे नहीं हटतीं तो सभी कुछ मंगलमय होगा।"

आयशा बोली, "उसमान! ऐसी बात तुम क्यों कर रहे हो भाई? तुम्हारे इष्टानिष्ट के साथ मेरा सुख-दुख मिला हुआ है क्या यह तुम्हें मालूम नहीं?"

उसमान बोला, "यह मुझे मालूम है और मालूम है इसीलिए आज तक मैं जीवित हूँ। लेकिन एक बात आज ही पूछ लेना बेहतर है। मेरी एकमात्र शुभाकांक्षिणी होने पर भी ऐसे बुरे समय तुम मुझे छोड़ कर क्यों चली गयी थीं? मेरी ऐसी घोर दुर्दशा के समय तुम मुझे छोड़ कर कहाँ चली गयी थीं आयशा?"

आयशा बहुत देर तक सोचती रही, उसके बाद बोली, "जिससे जीवन की

कोई घटना मैंने छुपाई नहीं, उससे यह बात भी नहीं छुपाऊँगी। शायद ये बातें तुम्हारे लिए क्लेशदायक हों, किन्तु यदि तुम मुझसे न पूछते तो मैं कभी न बताती। युवराज जगतसिंह को कारामुक्त करने का अभिप्राय लेकर मैं पहले पटना और बाद में आगरा गयी थी।"

उसमान बोला, "यह खबर मुझसे छुपी हुई नहीं है, भाग्यवान जगतसिंह तुम्हारे हृदय-राज्य का राजा है यह बात तो तुमने कभी छुपाई नहीं, इसलिए उसे छुड़ाने के लिए इच्छा होना तुम्हारे लिए असंगत भी नहीं है। दूसरे ढंग से तुमने इस कार्य से मेरा भला ही किया है।"

आयशा ने पूछा, "सो कैसे?"

उसमान बोले, "जगतसिंह मेरा वध्य है। उसे मारने के लिए मैंने अपना जीवन अभी तक रखा है। वह कारागार में बन्द रहता तो उसकी हत्या करने का मौका मुझे आसानी से न मिलता। तुमने उसे मुक्त करने की जो कोशिश की है उससे मेरा उपकार ही हुआ है।"

आयशा दूसरी ओर मुँह फेर कर सोचने लगी। उसमान बोले, "बात क्यों नहीं करती हो? मेरी बातों से क्या तुम्हें दुख मिला आयशा?"

आयशा बोली, "नहीं।"

उसमान ने कहा, "तो क्या सोच रही हो?"

आयशा बोली, "सोच रही हूँ कि मुझ जैसी अभागिन की सृष्टि कर स्रष्टा को क्या लाभ हुआ? मैं संसार के किसी भले काम में नहीं आ सकी; किसी का कुछ भी भला मेरे द्वारा न हो सका, मेरे लिए केवल कलह-विद्वेष की धारा बेरोक-टोक बहती ही रही, तुम सरीखे महापुरुष को भी मेरे निमित्त निरन्तर अन्तर्ज्वाला से दग्ध होना पड़ा।"

उसमान बोला, "अनन्त ज्वाला में जलते हुए भी उसमान पैर पीछे नहीं हटायेगा। सभी ज्वालाएँ मैं सीना तानकर बरदाश्त करने को समर्थ हूँ और निरन्तर सहता आ रहा हूँ। आयशा, शायद प्यार की इस ज्वाला की जलन में भी सुख का कोई ओर छोर नहीं है। वर्ना इस जलन को जुड़ाने की कोशिश मैं क्यों नहीं करता हूँ? जिसके कारण यह जलन है, वही तुम अगर आँखों की ओट हो जाती हो तो दुनिया मेरे पास सूनी क्यों लगने लगती

है ? तुम्हें भूलने के लिए दयामय भगवान के चरणों में प्रार्थना करने की भी इच्छा मुझे क्यों नहीं होती ? जिस भवन में मेरी ज्वाला का कारण विद्यामान है मैं उसी भवन के एक किनारे रह पाऊँ इसे ही परम सुख क्यों मानता हूँ। तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कोई स्थान नहीं यह जानते हुए भी दिन-रात मेरा मन तुम्हारी चिन्ता में क्यों लगा रहता है ? संसार में सभी वस्तुओं की अपेक्षा इस ज्वाला को ही सर्वश्रेष्ठ क्यों मान लेता हूँ !"

आयशा बोली, "अब समझ रही हूँ उसमान, कि यह ज्वाला-भोग ही तुम्हारे भाग्य में लिखा है। यह अभागिन ही तुम्हारे तुल्य सर्वगुणाधार महात्मा की चिर-यातना का कारण है। इस पिशाचिन को उसमान तुम क्यों बार-बार मौत के मुँह से बचा रहे हो ?"

उसमान बोला, "आयशा, प्यार किसे कहा जाता है वह तुम भली-भाँति जानती हो। जगतसिंह कारागार में बन्द है यह खबर सुनकर व्याकुल होकर पिता का भवन छोड़ तुम विदेश की ओर क्यों दौड़ी थीं ? तुम जिससे प्यार करती हो उसका मामूली कारावास भी अगर तुम्हें बरदाश्त न हो तो तुम्हारी मौत की संभावना से मैं पागल क्यों न बन जाऊँ ?"

आयशा बोली, "मैं तुमसे गिड़गिड़ा कर प्रार्थना करती हूँ, उसमान ! कि तुम अपने दिल को बस में करो। तुम वीर हो, साहसी हो, योद्धा हो; युद्धक्षेत्र में यश कमाने और साम्राज्यलाभ की आशा में तुम उन्मत्त से हो जाते हो। जिनके लिए इतने सुख और सौभाग्य के द्वार खुले हुए हैं, एक तुच्छ नारी की चिन्ता में, एक अयोग्य अभागिन के प्रति प्रेमपिपासा के कारण क्या उसे सब आकांक्षाएँ छोड़ देनी चाहिए।"

उसमान बोले, "मैंने हृदय को काबू में कर लिया है। इतना काबू में कर लिया है कि तुम सुनने पर ताज्जुब करोगी। तुम्हें नहीं पा सकूँगा यह जानकर भी मेरा प्राण जीवित रहना सीख गया है। मेरा हृदय अब तुम्हें प्राप्त नहीं कर सकेगा यह जान कर भी काम करने लगा है। तुम्हारे साथ एक-प्राण नहीं बन सकूँगा यह जानते हुए भी मेरा हृदय इस समय जय-पराजय का सुख-दुख अनुभव करने को तत्पर है इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या हो सकती है आयशा ? रणरंग में मुझे प्रमत्त हो जाने का उपदेश

तुम दे रही हो, आकांक्षाओं के समुद्र में तुम मुझे गोता लगाने की सलाह दे रही हो। ऐसी हालत में वही मेरा एकमात्र कर्त्तव्य है। वही पथ मेरा एकमात्र अवलम्बन रह गया है। लेकिन, आयशा, मेरा एक निवेदन है। यह बात सच है कि मैं हृदय को सम्पूर्णरूप से काबू में कर सका हूँ, लेकिन एक मामले में अब भी मुझ में काफी दुर्बलता रह गयी है। तुम्हें न पाने पर भी अब मैं दुखित नहीं हूँ, तुम किसी की भी हो जाओ उस चिन्ता से भी मैं व्याकुल नहीं हूँ, मैं केवल कभी-कभी तुम्हें दूर से देखने की इच्छा अभी तक नहीं छोड़ सका हूँ कभी-कभी तुम्हारी दो-एक बातें सुनने की अभिलाषा त्याग नहीं सका हूँ। जिस भवन में रहने का गौरव मैं अभी तक परिहार नहीं कर सका हूँ, तुम्हारे कल्याण में सुखी और अकल्याण में व्याकुल होने का अधिकार अभी तक मैं त्याग नहीं कर सका हूँ। आयशा इस दीन अभागे ने अपनी सभी साधें विसर्जित कर दी हैं, क्या उसकी इन क्षुद्र वासनाओं को भी तुम अनुचित समझती हो? भिखारी के रत्नों के समान क्या उसकी इन प्यारी अभिलाषाओं को चूर्ण करना ही तुम्हारा अभिप्रेत है?"

आयशा बोली, "नहीं उसमान, जीवन-मरण में मैं तुम्हारी हमराही हूँ। विवाहरूप अटूट बन्धन हमारे भाग्य में नहीं है। लेकिन यह शरीर अगर तुम्हारे चरणों में न्योछावर करने में मैं असफल रहूँ, अगर विधाता की मर्जी से तुम्हारी सेवा में मैं अपने को न लगा सकूँ, तो उससे क्या नुकसान है? क्यों न हम सुख-दुख, सम्पत्ति-विपत्ति में एक प्राण बन जायें? क्यों न हम एक मन, एक मंत्रणा, एक प्राण हो कर्मसागर में कूद कर अपने जीवनों को कर्ममय बनायें? उसमान, इसके बाद से मैं जीवन और मरण में तुम्हारी अटूट हमराही बनी रहूँगी, तुम्हें सन्तोष पहुँचाना ही अब से मेरे जीवन का ध्येय होगा।"

तब उसमान ने कहा, "आज तुमने इस अभागे के जीवन को सुखमय तथा आनन्दमय बना दिया तुम्हारे अनुग्रह ने मुझे धन्य कर दिया। यह भिखारी किसी वस्तु का भी प्रार्थी नहीं। आयशा मेरी अविचल हितैषिणी है, आयशा मेरी उन्नति-अवनति के लिए चिन्तिता है, आयशा की सलाह से मैं काम करने में लगा हुआ हूँ, यही मेरे लिए परम गौरव और असीम आनन्द का विषय है।"

आयशा बोली, "इस बात के जिक्र की अब कोई जरूरत नहीं है। अब किस ढंग से खोये हुए राज्य को फिर से हम अपने कब्जे में कर सकते हैं इस सिलसिले में मशविरा करना जरूरी है।"

उसमान ने कहा, "उसके लिए अब कोई फिक्र नहीं है। अब की बार युद्ध में मेरी वीरता देखकर लोग दाँतों तले उँगली दबा लेंगे और अपनी बाहों में सादर बाँध लेंगे। मेरी मंगलमयी आयशा की प्रसन्नता से सफलता मेरे कार्यसूत्र के साथ नित्यप्रति पिरोई जायगी।"

आयशा की मा ने दरवाजे के पास से पूछा, "बेटी, दवा पीने का वक्त हो गया है कि नहीं?"

आयशा बोली, "आओ अम्मा, अन्दर आओ, दवा न पीने पर भी शायद अब कोई नुकसान न होगा।"

आयशा और उसमान दोनो आसन छोड़ उठ खड़े हुए। बेगम साहबा ने कमरे में दाखिल होते ही दोनो के चेहरों पर असीम प्रसन्नता के लक्षण देखे। उन्हें बड़ी खुशी हुई। उनलोगों का यह भाव उनको कल्याण-सूचक सा लगा।

——:०:——

(१३)

मुक्ति

जगतसिंह उस अँधेरे कारागार में लोहे की जंजीर से बँधे बड़े ही कष्ट से समय बिता रहे थे। हाय! यह परम दुख के दिन क्या समाप्त नहीं होंगे? फिर क्या कभी स्वतंत्र मनुष्य समाज में घुलमिल कर सुख-दुख भरे कार्यों में अपने को वे नियुक्त नहीं कर सकेंगे? उनकी सभी आशाएँ सारा आनन्द क्या इसी जेलखाने की ठंडी साँसों में ही बदल जायगा?

अभिराम स्वयं जेलखाने में प्रवेश कर उनसे अर्जी पर दस्तखत करा कर ले गये हैं। नवाबनन्दिनी आयशा उनकी मुक्ति के लिए व्याकुल

हैं। वे अपने कुटुम्ब के लोगों को छोड़कर पटना आयी हुई हैं। इन सब लोगों का प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। लेकिन काफी दिन बीत गये अब भी कोई शुभ परिवर्तन तो हुआ नहीं। तो क्या सभी आशाओं पर पानी फिर गया?

जगतसिंह एकान्त कारागार में बैठे आयशा के बारे में कितनी ही चिन्ता कर रहे हैं। ऐसी हितैषिणी, ऐसी मित्र और सहायिका जिसे मिल जाती है वह मानवों में धन्य है। आयशा को मानवी समझना भी अनुचित होगा। स्वर्ग में भी ऐसी देवी नहीं है। लेकिन हाय! ऐसी महानप्राणा महिला ऐसे अयोग्य पात्र से अलौकिक प्रेम कर चिर-विषादमयी बन गयी है। यह अभागा ही उस देवी की यातनाओं का एकमात्र कारण है। यह अभागा उनकी नजरों से न गुजरता तो अवश्य ही वह देवबाला सारे सुखों की मालकिन बन सकती थी। अवश्य ही उस अनुपम रत्न को कोई प्रेम मुग्ध पुरुषश्रेष्ठ सादर अपने वक्ष पर धारण करके अनन्त सुख भोगता। अवश्य ही वह सुन्दर पुष्प अनादर से मलिन और शुष्क न होता। यह अकृतज्ञ नराधम उस देवदुर्लभ प्रेम का प्रतिदान देने में भी अक्षम है। ऐसे व्यक्ति के प्रति भी उस करुणामयी के दिल में दया है। हाय! क्या जीवन में फिर कभी अपने हृदय की कृतज्ञता प्रकट करने का मौका नहीं आयेगा?

कर्तव्य से प्रेरित हो उसके स्नेहमय पिता ने उसे कारागार भेज दिया है। लेकिन पुत्र की दुर्दशा सोचकर क्या पिता का हृदय तनिक भी विचलित नहीं हो रहा है? उसकी कुछ सौतेली माताएँ पटना में हैं। क्या वे भी जगतसिंह की मुक्ति के लिए व्याकुल नहीं हो रही हैं? इतने सगे-सम्बन्धियों के बावजूद क्या जगतसिंह को हमेशा के लिए ऐसे ही दिन बिताने पड़ेंगे?

यह कष्ट असह्य है। लोहे की जंजीरों से कष्ट नहीं, अँधेरे से कष्ट नहीं, बन्धन से कष्ट नहीं है। एकबार—केवल एकबार दूर से प्राण की परमप्रिय वस्तु को देख पाने से ही शायद यह कष्ट सहनीय हो सकता है। क्या दूर से केवल एकबार तिलोत्तमा को देखने का कोई उपाय नहीं हो सकता?

जगतसिंह के मन में आया कि लोहे की जंजीरों को तड़काकर, लोहे का फाटक तोड़ कर, वह अभी गढ़ मन्दारन की ओर भाग जाय।

विकट घरघराहट के साथ कारागार का लौह-द्वार खुल गया। उस खुले दरवाजे से हवा और प्रकाश के आने से जगतसिंह ने देखा कि दरवाजे से कारारक्षक और एक अनुचर अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। अनुचर के हाथों में तरह-तरह के वस्त्र और अलंकार थे।

कारारक्षक ने सामने पहुँचकर बड़े ही सम्मान से युवराज को प्रणाम किया।

युवराज ने पूछा, "क्या समाचार है ?"

कारारक्षक ने सविनय निवेदन किया, "युवराज मुक्त हैं। यह राज-वस्त्र पहनकर कारागार से बाहर निकलें।"

युवराज ने विशेष धैर्य के साथ यह शुभ समाचार सुना,—बोले, "तुम्हारी बातें सच हैं इसका प्रमाण ? शायद कारागार से निकलने पर मुझे राजद्रोही करार दिया जाय।"

कारारक्षक ने कहा, "मेरे पास खास कुछ प्रमाण नहीं। आगरा से स्वयं शहंशाह का नाम-मुहर-युक्त हुक्मनामा महाराज को सिपाही द्वारा भेजा गया है। महाराज के खास सिपाहियों ने हुक्म जारी किया है। वे सिपाही युवराज को साथ ले जाने के लिए इस वक्त फाटक पर इन्तजार कर रहे हैं।"

जगतसिंह बोले, "मैं तुम्हारी किसी बात पर अविश्वास नहीं कर रहा हूँ; लेकिन तुमने ठीक काम नहीं किया। सिपाहियों के पास महाराज का पंजा या उनका नाम-मुहर लगा हुआ हुक्मनामा होना चाहिए था। वह दिखाकर अगर तुम मुझे रिहा करने आते तो तुम अपना कर्त्तव्य पालन करते।"

कारारक्षक ने तनिक सोच कर कहा, "युवराज ने उचित ही आदेश दिया है। मारे खुशी के मैंने सावधानी भुला दी। अब युवराज का क्या हुक्म है !"

जगतसिंह बोले, "सिपाहियों में प्रधान व्यक्ति को तुम बता आओ कि महाराज या बादशाह की आज्ञा न मिलने पर युवराज कारागार छोड़ना नहीं चाहते। प्रधान सिपाही को आम-कचहरी से ऐसा कोई प्रमाण-चिह्न लाने

को कहकर तुम मेरे पास लौट आओ। जितनी देर तक ऐसा कोई आदेश नहीं आता तब तक जंजीर खोलने या पोशाक बदलने की कोई जरूरत नहीं है।"

कारारक्षक युवराज की सावधानी और स्थिरबुद्धि देखकर विस्मित हुआ, किन्तु उसे विरोध करने का साहस न हुआ और आज्ञा पालन करने के लिए उसने प्रस्थान किया! जाते समय उसने कारागार का द्वार बन्द नहीं किया क्योंकि इस आज्ञा की सच्चाई के बारे में उसे कोई सन्देह न था।

थोड़ी ही देर में कारारक्षक के साथ मथुरासिंह कारागार में दाखिल हुए और उसने सादर निवेदन किया, "कुवँर, जो पंजा दिखाकर इस मातहत ने राजपुत्र को गढ़मन्दारन के पास महाराज की आज्ञा सूचित की थी, वही पंजा आज उसके पास है। राजपुत्र की मुक्ति के आनन्द से दास वह दिखाना भूल गया था। गुलाम का कसूर माफ किया जाय।"

मथुरासिंह ने अपनी पगड़ी में से पंजा निकालकर युवराज के सामने रखा। युवराज ने पंजे के प्रति सम्मान दिखाकर कहा, "कारारक्षक मेरी श्रृंखलाएँ खोल दो।"

फौरन बड़ी खुशी से कारारक्षक ने युवराज के हाथ पैरों का बन्धन मुक्त किया। अनुचर के हाथों से वस्त्रादि लेकर मथुरासिंह ने उसे राजपुत्र के हाथ-मुँह धोने का पानी ले आने को कहा। पानी लाये जाने के बाद जगतसिंह ने हाथ-मुँह धोकर कैदी की घृणित पोशाक उतार डाली और राज-वस्त्रों को पहन लिया। सिर पर हीरा जड़ी पगड़ी, कानों में रत्न-कुंडल, और कंठ में मोतियों की माला शोभा पाने लगी। कमर से तलवार लटकने लगी। रत्नों से जड़ा जूता चरणों पर शोभा देने लगा। बहुत दिनों से अंधेरे कारागार में वास, भीषण चिन्ता आदि कारणों से जगतसिंह का चेहरा मलिन पड़ गया था, फिर भी उनकी स्वभाव-सुन्दर कान्ति योग्य वस्त्रों से आवृत हो बड़ी ही शोभामयी लगने लगी।

जगतसिंह यातना के निकेतन उस कारागार से निकले। विभिन्न प्रकार की विभीषिकामयी दुश्चिन्ता से पीड़ित हो जिस स्थान पर उन्होंने इतने दिन बिताये थे उससे उनका सम्बन्ध आज समाप्त हुआ। पहले मथुरासिंह,

काराध्यक्ष और अनुचर बाहर निकले। बाहर के आलोक राज्य और निर्बाध वायु-समुद्र में आकर जगतसिंह को मानो नया जीवन मिला और उन्होंने नये विश्व में पदार्पण किया।

जो पचास घुड़सवार मथुरासिंह के आज्ञाधीन हो जगतसिंह को बन्दी बनाने गये थे वे ही अब कारागार के निकट मैदान में घोड़ों पर प्रतीक्षा कर रहे थे। जगतसिंह का सफेद घोड़ा बहुत दिनों के बाद अपने स्वामी को सवार करने के लिए उपस्थित था। घोड़े के पास छत्रधर मोतियों की झालरवाली विशाल छतरी लिये खड़ा था। कारचोबी किया हुआ गिलाफ चढ़ा बहुत बड़ा पंखा लिये एक व्यक्ति छत्रधर के पास खड़ा था।

युवराज को देखते ही उन पचास घुड़सवारों ने तलवार उठाकर उनको प्रणाम किया और एकस्वर में चिल्ला पड़े, "जय युवराज जगतसिंह की जय।"

युवराज जगतसिंह ने भी तलवार निकालकर उसी प्रकार नमस्कार का उत्तर दिया और बोले, "जय बादशाह अकबर की जय! जय महाराज मानसिंह की जय!"

जगतसिंह घोड़े पर सवार हो गये। बहुत दिनों के बाद स्वामी का दर्शन पा घोड़ा आनन्द से नृत्य करने लगा। कारारक्षक ने सम्मान से युवराज को प्रणाम किया। जगतसिंह बोले, "मेरे कारावास के समय तुमने मेरे साथ हमेशा अच्छा आचरण किया है, तुम्हारे आचरण से मैं प्रसन्न हूँ। तुम किसी अन्य समय मुझसे आकर मिलना। मैं तुम्हें यथायोग्य पुरस्कृत करूँगा।

कारारक्षक ने फिर युवराज को प्रणाम किया। पच्चीस सैनिक राजपुत्र के सामने और पच्चीस पीछे हो गये। युवराज इन दलों के बीच में हो गये। इस बार मथुरासिंह युवराज के बगल में न रहकर पूरे दल के सामने चलने लगे। व्यजनकार और छत्रधर युवराज के दोनो बगल में खड़े हो गये। तब पहले मथुरासिंह ने ऊँची आवाज में नारा लगाया, "जय युवराज जगतसिंह की जय!"

पीछे के पच्चीस सैनिकों ने उसी की प्रतिध्वनि की, "जय युवराज जगतसिंह की जय!"

वह ध्वनि व्योममार्ग में नृत्य करती हुई दूर तक व्याप्त हो गयी। धीरे-धीरे यह टुकड़ी नगर में दाखिल हुई। नगर के राजपथ नकली तोरण, ध्वजा, झंडा, फूल और पत्तों से सजे थे। सड़क के किनारे, भवनों के ऊपर, बरामदे, खिड़कियों पर उत्सुकता से भरी नर-नारियाँ खड़ी थीं। सभी भवन रंगीन कपड़ों, फूल की मालाओं और झंडियों से शोभित थे, दरिद्रों की टूटी-फूटी झोंपड़ियों में भी सजावट की कमी न थी। हर भवन के सम्मुख जलभरा घड़ा और केले का वृक्ष रखा हुआ था।

टुकड़ी के नगरसीमा में प्रवेश करते ही अनगिनत कंठों से ध्वनि हुई, "जय, जगतसिंह की जय!"

वह शब्द प्रति कंठ से, क्रम से प्रतिध्वनित होता हुआ सारे पटना-नगर में व्याप्त हो गया। टुकड़ी धीरे-धीरे राजपथ से आगे बढ़ने लगी। कुलकामिनियाँ गवाक्षों से जगतसिंह के मस्तक पर अक्षत, पुष्प और छोटे सिक्के बरसाने लगीं। शंखध्वनि और आनन्द-सूचक ध्वनियों से दिशाएँ भर गयीं। जगतसिंह सिर झुकाये सभी का आशीर्वाद स्वीकार करते हुए आगे बढ़ने लगे।

धीरे-धीरे यह टुकड़ी महाराज मानसिंह के दरबार गृह के पास पहुँची। दरबार-तोरण पर युवराज घोड़े से उतरे। तत्क्षण बारह मुगल और राजपूत सेनाध्यक्ष और सभासदों ने आकर उन्हें आदर के साथ लेकर दरबार में प्रवेश किया।

——):o:(——

(१४)

नया-सूबेदार

जिस सभा में सभी लोगों के समक्ष जंजीरों से बँधे और घृणित कैदी की पोशाक में जगतसिंह दंडित हुए थे आज बहुत दिनों के बाद उसी सभा में बहुत सम्मान से विभूषित हो और राजकीय वस्त्रों से सुसज्जित हो उन्होंने प्रवेश किया। उस उच्च मंच पर महाराज मानसिंह गम्भीर मुद्रा में आसीन थे;

उनके पारषद व सभासद उनके दोनो बगल के नीचे आसनों को अलंकृत किये बैठे थे। सैनिक राजकर्मचारी और साधारण जनता के समागम से सभा का सारा स्थान भरा हुआ था। अब भी जनता का आना बन्द नहीं हुआ था। जो लोग सड़क के किनारे जगतसिंह का शुभागमन देखने के लिए ठहरे हुए थे अब वे झुंड के झुंड सभा में प्रवेश करने लगे।

सभा में जगतसिंह के प्रवेश करते ही उन अगणित कंठों से शब्द हुआ, "जय ! युवराज जगतसिंह की जय !"

साथ ही साथ जगतसिंह बोल पड़े, "जय बादशाह अकबर की जय ! जय महाराज मानसिंह की जय !"

जगतसिंह धीरे-धीरे महाराज मानसिंह के सिंहासन के पास जा पहुँचे। सिंहासन ऊँचे मंच पर स्थापित था। जगतसिंह नीचे खड़े होकर अपनी पगड़ी महाराज के चरणों पर रखते हुए बोले, "अपराधी पुत्र कातर हो महाराज से क्षमा की भीख माँग रहा है।"

महाराज ने गंभीर स्वर में कहा, "बेटा ! तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये गये हैं। स्वयं बादशाह बहादुर ने कृपा कर तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है और तुम्हें मुक्ति प्रदान की है।"

अनगिनत कंठों से ध्वनि उठी, "जय ! बादशाह अकबर की जय।"

जगतसिंह बोले, "बादशाह का यह अनुग्रह मुझे शिरोधार्य है। लेकिन पिताजी, जो इस संसार में मेरा परम गुरु है, जो हमारे इस संसार और उस संसार दोनो के देवता हैं उसी पितृदेव की प्रसन्नता प्राप्त न कर सकने पर मेरी साधना ही व्यर्थ है। पिता का मनोभाव जानने के लिए अधम पुत्र दुखित हृदय से प्रतीक्षा कर रहा है।"

मानसिंह बोले, "बेटा ! मैंने सरल मन से तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये हैं। तुम पगड़ी उठाकर सिर पर रखो। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम कर्त्तव्यपरायण हो, यशस्वी बनो।"

अगणित कंठोंसे ध्वनित हुआ, "जय महाराज मानसिंह की जय।"

जगतसिंह ने पिता के चरणों से पगड़ी उठाकर सिर पर रख ली। उसके बाद बोले, 'आज से मेरा जीवन-धारण सार्थक हुआ। पिता का

असन्तोष भार सिर पर लिये हुए जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही बेहतर है। मैं इतने दिनों से मृतकल्प हो जीवित था। करुणामय पितृदेव, मेरे अपराध अनगिनत हैं। मेरे कौन-कौन से अपराध क्षमा कर दिये गये हैं, और कौन-कौन से अपराधों का अब भी भागी हूँ क्या यह जानने के लिए प्रार्थना करने का अधिकार मुझे है ?"

मानसिंह बोले, "स्नेहभाजन कुवँर, तुम्हारे पारिवारिक और राजनैतिक सभी अपराध क्षमा कर दिये गये हैं। मुझे यह मालूम हो गया है कि तुमने नवाबनन्दिनी आयशा के हृदय में प्रेमानल प्रज्वलित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया और उस ओर तुमने कोई सहायता भी नहीं दी। यह बात नवाब उसमान खाँ ने मेरे पास स्वयं व्यक्त की है इसलिए उस कारण तुम्हें अपराधी बनाना अनुचित होगा।"

जगतसिंह ने सिर झुकाये हुए कहा, "मेरे और भी बहुत से अपराध हैं।"

मानसिंह बोले, "वीरेन्द्रसिंह की कन्या के साथ तुम्हारा विवाह बहुत संगीन अपराध माना गया था। मुझे ज्ञात हो सका है कि वीरेन्द्रनन्दिनी रूप और गुण में अतुलनीया है; वह तिलोत्तमा वास्तव में राजलक्ष्मीस्वरूपा है। इसलिए उसके साथ विवाह-जन्य तुम्हारा अपराध क्षम्य है।"

जगतसिंह का हृदय आनन्द से नृत्य करने लगा। महाराज मानसिंह बोले, "तुम्हारा राजनैतिक अपराध दुनिया के मालिक ने खुद मुआफ कर दिया है इसलिए उस बारे में अपनी कोई राय देना ही अपराध तुल्य है। हाँ, अब तुम बादशाह के न्याय और मेरी दृष्टि में बिल्कुल निर्दोष हो।"

अनगिनत कंठों से आवाज़ उठी, "जय ! युवराज जगतसिंह की जय।"

जगतसिंह ने पूछा, "मेरे लिए महाराज का अब क्या आदेश है ? कौन सा कर्त्तव्य पालन कर मैं अब महाराज की प्रसन्नता लाभ कर सकता हूँ ?"

महाराज ने एक पार्षद को इशारा किया तो उन्होंने जगतसिंह के हाथों में एक सनद दी। मानसिंह बोले, "युवराज जगतसिंह, बादशाह की कृपा से तुम बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के सूबेदार बना दिये गये हो।

तुम्हारा जैसा सौभाग्य है, मनुष्य के भाग्य में ऐसा उलटफेर विरले ही दिखायी पड़ता है। आशीर्वाद देता हूँ कि कर्त्तव्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, ईमानदारी, साहस आदि के कारण तुम चिरस्थायी कीर्ति और यश कमा सकोगे।"

सभा के सभी लोग ऊँचे स्वर में बोल पड़े, "जय! बादशाह अकबर की जय! जय! महाराज मानसिंह की जय!"

सभा के सभी सभासद आसन छोड़कर खड़े हो गये और सम्मान से जगतसिंह का उन्होंने अभिवादन किया। उनमें से एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर सविनय निवेदन किया, "हमलोग अपने नवीन सूबेदार के समक्ष अपनी अधीनता स्वीकार कर रहे हैं। हमलोग अविचलित रूप से उनकी आज्ञा पालन करने को सम्मत हुए हैं। हमलोग दिल से उनके प्रति अपनी शुभेच्छा जता रहे हैं। हमलोग उनको इस पदोन्नति के हेतु अपना हार्दिक आनन्द प्रकट कर रहे हैं। हमलोग मनसा वचसा कर्मणा उन्हें अडिग सम्मान दे रहे हैं। हम उत्साह भरे दिल से उनकी विजय घोषित कर रहे हैं।

जगतसिंह विस्मय से अभिभूत हो गये! कहाँ तो अन्धेरे कारागार में जंजीरों में बन्दी दशा और कहाँ बंगाल, बिहार, उड़ीसा के सूबेदार पद की प्राप्ति। दोनो में भेद कल्पना से परे है। दोनो दशाओं की तुलना करने पर जी सिहर उठता है। यह परिवर्तन इतना आकस्मिक, इतना अप्रत्याशित रूप से उपस्थित हुआ कि जगतसिंह मानो उसका मतलब समझने में असमर्थ कुछ देर तक मुग्ध बने रहे।

महाराज मानसिंह ने कहा, "कुमार जगतसिंह, तुम्हें आज ही कार्यभार ग्रहण करना होगा। कल से मैं अवकाश ले रहा हूँ।"

जगतसिंह ने पूछा, "क्यों?"

महाराज बोले, "यही बादशाह का हुक्म है। उन्होंने मुझे हुक्म मिलते ही पटना छोड़ जाने के लिए कहा है। खास प्रयोजन से उन्होंने मुझे अविलम्ब आगरा पहुँचने के लिए आदेश दिया है। उस स्थान से मुझे दिल्ली और बाद में अजमेर जाना होगा, यह भी मालूम हो गया है। उसके बाद कहीं और किसी जरूरत से जाना पड़ेगा या नहीं यह अब भी मुझे

नहीं मालूम है। मेरी अनुपस्थिति में बादशाह ने तुम्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार नियुक्त किया है। यह सभी दुनिया के मालिक, बादशाह बहादुर की व्यवस्था है। इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।"

इतनी देर में जगतसिंह को सारा मामला समझ में आ गया। तब धरती पर घुटने टेककर वह बोले, "शहंशाह का आदेश पालन करना इस दास का परम धर्म है। अपने प्रति इस अनुग्रह के लिए मैं बादशाह के निकट और महाराज के चरणों में अपनी अविचलित कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

तब मानसिंह आसन त्याग कर जगतसिंह के पास आए और उनका हाथ पकड़कर बोले, "तो आओ बेटा मसनद पर बैठो। मैं तुम्हारा पिता होने पर भी इस समय तुम्हारा शासनाधीन प्रजामात्र हूँ। जिस क्षण से तुम्हारे हाथों में बादशाह की सनद आ गयी है उसी क्षण से तुम बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार बन गये हो। तुम्हें सूबेदार के आसन पर बिठा देना मेरा कर्त्तव्य है।

जगतसिंह ने पिता के चरणों में प्रणाम किया और उनके चरणों से धूल लेकर सिर से लगा लिया। मानसिंह अपने पुत्र का हाथ पकड़े सिंहासन के समीप गये और ऊँचे स्वर में बोले, "शहंशाह की आज्ञा के अनुसार मैं सब लोगों के समक्ष इस सभा में युवराज जगतसिंह को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार के सिंहासन पर समासीन कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि नये सूबेदार के शासनकाल में उनके अधीन प्रान्तों में शान्ति बिराजेगी, प्रजा हर तरह से अनुशासन में रहेगी और किसी लड़ाई-भिड़ाई के कारण रक्तक्षय न होगा।"

नवीन सूबेदार बोले, "मैं भरसक बादशाह के कल्याण-कार्य में नियुक्त रहूँगा, प्रशासन सम्बन्धी मामलों में मैं पूज्य पिताजी द्वारा अपनायी हुई पद्धति के अनुसरण का प्रयास और हर प्रकार से अधीन व्यक्तियों का पालन करूँगा।"

तब महाराज मानसिंह ने कहा, "जय! नवीन सूबेदार की जय!"

सभासद और पार्षदों ने उसी को दुहराया, "जय! नवीन सूबेदारकी जय!"

सभा में उपस्थित अनगिनत सैनिक और जनता भी एकस्वर में चिल्ला उठी, "जय नवीन सूबेदार की जय।"

उस दिन की सभा समाप्त हुई।

——:o:——

मिलन

बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार युवराज जगतसिंह ने अपने पिता के साथ-साथ सभा से प्रस्थान किया। पिता-पुत्र एकसाथ रनिवास में दाखिल हुए। वहाँ युवराज को अपनी माताओं से मिलने को कहकर महाराज अन्यत्र चले गये।

युवराज ने पहले उर्मिला देवी के मन्दिर में प्रवेश किया। वहाँ उनकी तीनो विमाताएँ उपस्थित थीं। उनके चरणों में जगतसिंह ने भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। उन लोगों ने युवराज को विभिन्न प्रकार का शुभ आशीर्वाद दिया और उनके विगत क्लेशों का उल्लेख कर आन्तरिक दुःख प्रगट करने लगीं।

उर्मिला बोली, "तुम भूख-प्यास से कातर होगे और शायद तुम्हें आराम की भी जरूरत है। तुमसे सुख-दुख की बहुत सी बातें भी करनी हैं। वक्त पर कर ली जायँगी। अब तुम मेरे साथ आओ।"

जगतसिंह चुपचाप उर्मिला देवी के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ दूरी पर एक सुसज्जित कक्ष के दरवाजे पर पहुँच कर उर्मिला देवी ने कहा, "इस कमरे में तुम आराम करो, मैं तुम्हारे भोजनादि का प्रबन्ध करने जा रही हूँ।"

जगतसिंह कमरे में दाखिल हुए। तत्क्षण आँसुओं से भरे नैनोंवाली एक सुन्दरी बगल से उनके सीने पर टूट पड़ी। वह सुन्दरी तिलोत्तमा थी।

युवराज वाक्शून्य हो गये। क्या यह स्वप्न है या सत्य! क्या प्रेताविष्ट मनुष्य की तरह उनको सभी कार्यों में भ्रान्ति हो रही है? सहसा उन्माद-रोग के आक्रमण से उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है ऐसी ही शंका उन्हें हुई। लेकिन सचमुच वह सजलनयना सुन्दरी उनकी प्राणस्वरूपा तिलोत्तमा के अलावा और कोई नहीं है। उनके सीने पर जो आँसू ढरका रही है वह तो सचमुच उनकी हृदय-विनोदिनी ही है। क्या मनुष्य का भाग्य सहसा एक दिन में ऐसा बदल सकता है? अनन्त यातना और दुश्चिन्ता के

चंगुल से छुटकारा पाने के बाद सहसा ऐसा अचिन्त्यपूर्व सर्वसुखऐश्वर्य का क्या सम्मिलन हो सकता है ? असंभव होने पर भी यह घटना हुई है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तिलोत्तमा के नयनो में आँसू और होठों पर हँसी थी। बड़े ही अद्भुत दृश्य का समावेश था। जगतसिंह ने उस प्रेम पुत्तलिका को कस कर बाँहों में बाँध लिया। विस्मय से उन्होंने पूछा, "तिलोत्तमा तुम यहाँ कैसे ?"

तिलोत्तमा हँसते-हँसते बोली, "मुझे तिलोत्तमा नाम से पुकारना तुम्हारे लिए अनुचित होगा। भुवन-प्रसिद्ध अम्बरेश्वर की पुत्रवधू, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के नये सूबेदार की पत्नी का नाम लेकर पुकारने की हिम्मत कोई नहीं करता।"

जगतसिंह बोले, "यह बात ठीक है। अपराध के लिए बाद में समुचित सजा ले लूँगा। पहले तो कृपया यह बताओ कि तुम यहाँ पर कैसे आयीं ?"

तिलोत्तमा ने फिर मुस्कुराते हुए कहा, "श्वसुर के घर पर, पति के आश्रय में मैं कैसे आयी यह तुम क्यों पूछ रहे हो ? स्वयं आकर मैंने अपने स्थान पर अधिकार जमा लिया है।"

तब जगतसिंह ने उस सुशीला का मुख चुम्बन कर पूछा, "सच-सच बताओ, कैसे क्या हुआ ?"

तिलोत्तमा ने हँसते हुए जगतसिंह को वहाँ पर रखे सिंहासन पर बिठाया और कहा, "तुम बहुत थके हुए हो, पहले भोजनादि कर लो, आराम कर निश्चिन्त हो लो, फिर सभी बातें बताऊँगी।"

युवराज बोले, "आज इतनी असंभव घटनाएँ देख रहा हूँ कि सोच कर दंग रह जाता हूँ। सभी बातों का फैसला न हो जाने तक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकता।"

तिलोत्तमा पंखा लेकर युवराज को हवा करने लगी। युवराज उनके हाथों से पंखा लेकर बोले, "अम्बरेश्वर की पुत्रवधू की अवश्य ही बहुत सी दासियाँ हैं। वे ही पंखा झलेंगी। मेरी समझ में आ रहा है कि सभी

भेद तुम्हें मालूम है। कृपया पहले मेरा कुतूहल मिटा कर मुझे स्थिर-चित्त होने दो।"

जगतसिंह ने बड़े ही प्रेम से तिलोत्तमा को निकट खींच कर अपनी गोद में ले लिया। अवरोध के पूर्वदिवस शाम के बाद गढ़मन्दारन में छत के ऊपर जगतसिंह के सीने पर तिलोत्तमा ने जिस ढंग से सिर रखा था, आज बहुत दिनों बाद फिर उसी सुख-भरे तकिये पर उसी ढंग से उन्होंने सिर रखा। लेकिन उस दिन और आज के दिन में कितना फर्क़ था। उस दिन कैसी शंका घिरी हुई थी और कैसी विभीषिकापूर्ण विषाद की छाया थी। आज का आनन्द कितना अतुलनीय था, सुख कितना प्रत्यक्ष और स्थायी था!

ऐसी अवस्था में बैठी-बैठी तिलोत्तमा ने एक-एक कर सभी बातें युवराज से बतायीं! महाराज मानसिंह की श्रीक्षेत्र यात्रा, वहाँ विमाता विमला के साथ उर्मिला के निकट जाना, उस करुणामयी की सहायता पाना, उन्हीं की कृपा से महाराज से परिचय, तिलोत्तमा की सेवा से महाराज को सन्तोष, महारानी की कुशलता से महाराज की क्षमा, पुत्रवधू के रूप में स्वीकारना आदि सभी बातें तिलोत्तमा ने धीरे-धीरे संक्षेप में और मधुर भाव में जगतसिंह से बतायीं।

सभी बातें सुनने के बाद जगतसिंह ने कहा, "समझ गया हूँ तिलोत्तमा, तुम्हारा ही बुद्धि से, तुम्हारी ही कुशलता से मेरा सब शुभ परिवर्तन संभव हो सका है। तुम्हारे प्रेम से मुग्ध हो जिस व्यक्ति ने तुम्हारी दासता मान ली है वह किस प्रकार तुमसे अपने मन का भाव प्रगट करे? क्या कह कर वह तुमसे अपनी कृतज्ञता प्रगट करे? मेरी मुक्ति भी शायद तुम्हारे ही कौशल से सफल हो सकी है।"

तिलोत्तमा बोली, "तुम प्रेम में अन्धे हो इसलिए असली मामला नहीं देख पा रहे हो। मैंने अपने प्रयत्न से अपने स्थान पर अधिकार पा लिया है, अज्ञात एवं हीन जीवन न बिता कर अपने उचित स्थान पर केवल अधिकार मात्र जमा लिया है। इसमें गौरव की कोई बात नहीं। तुम्हारी मुक्ति के लिए मैंने कुछ भी नहीं किया है करने की शक्ति ही कितनी है मुझमें? नवाबनन्दिनी आयशा शक्ति, बुद्धि, कौशल सभी विषयों में बेजोड़ हैं।

उन्होंने ही आगरा जाकर तुम्हारी मुक्ति का प्रबन्ध किया है, शायद तुम्हारी यह पदोन्नति भी उन्हीं के प्रयासों का फल है। मुझे नहीं मालूम कि तुमने सुना है या नहीं, बादशाह का हुक्म आया है कि मुझे एक लाख मुद्रा आमदनी वाली जागीर प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। यह अवश्य ही नवाबनन्दिनी ने कराया है। जो कल्पनातीत सुख हमें मिल रहा है यह सभी आयशा की मेहरबानी का फल है। यदि इन सब के निमित्त किसी का भी आभारी हमें बनना हो तो उह शक्तिमयी आयशा के निकट आजीवन हमें चिर-बिका सा बना रहना होगा।"

जगतसिंह बोले, "उस बारे में कोई भी सन्देह नहीं है। मालूम नहीं, कैसे उस देवी के ऋण का रंचमात्र भी चुका सकूँगा।"

तिलोत्तमा तब प्यार से जगतसिंह का गला बाँहों से बाँधती हुई बोली, "मुझे मालूम है। वादा करो कि तुम इस दासी की बात मानोगे ?"

जगतसिंह बोले, "ऐसी बात क्यों पूछ रही हो तिलोत्तमा? तुम्हारी बातें टाल जाऊँ क्या ऐसा भी संभव है ? तुम्हारा उचित कथन मानने में अगर मुझे असाध्य भी साधना पड़े तो पीछे नहीं हटूँगा।"

तब तिलोत्तमा ने दोनो हाथों में जगतसिंह के हाथ पकड़कर कहा, 'तुम आयशा को पत्नी के रूप में ग्रहण करो।"

युवराज ने कहा, "प्राणेश्वरि, तुम्हारा यह प्रस्ताव सुनकर तुम्हारी सरलता, उदारता और सहृदयता की मैं बार-बार प्रशंसा करता हूँ, लेकिन अफसोस की बात है कि इस बात से तुम्हारी बुद्धि की कोई प्रशंसा नहीं कर सकता। जो नारी केवल अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के निमित्त, उपकार का बदला चुकाने के लिए, ऋण-मुक्त होने की इच्छा से अन्य नारी को सौत का स्थान दे सकती है, उसका हृदय बड़ा ही ऊँचा है इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं तुम्हारे हृदय की महानता का बोध कर बार-बार तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ।"

तिलोत्तमा बोली, "प्रशंसा करो या न करो मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो ?"

जगतसिंह बोले, "निन्दा कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। आयशा

को पत्नी के रूप में स्वीकार करने के बारे में तमने जो प्रस्ताव किया है उससे मैं तुम्हारी बुद्धि की तनिक भी तारीफ नहीं कर सकता हूँ।"

तिलोत्तमा बोली, "क्यों? महाराज की, महारानी जी की तथा दूसरों की भी यही इच्छा है। आयशा से महाराज और महारानी इसलिए बार-बार अनुरोध कर रहे हैं। वे राजी नहीं हुईं। लेकिन हमलोगों का विश्वास है कि अगर तुम चाहो तो उनकी राय बदल सकते हो।"

"बड़े ही मिथ्या विश्वास को तुमलोगों ने दिल में सँजो रखा है।

तुमलोग आयशा के हृदय-समुद्र की एक भी तरंग नहीं देख सके हो। महाराज और महारानी जानते हैं कि विवाह करने पर ही पत्नी आती है और प्यार करने से ही प्रेम होता है। लेकिन प्रेममयी आयशा का इससे कोई परिचय नहीं है। आयशा जानती है कि जहाँ हृदय का लेनदेन नहीं है वहाँ सैकड़ों पुरोहित या मुल्ले इकट्ठे होकर अनन्त मंत्रपाठ के उपरान्त ब्याह करा देने पर भी वह विवाह विवाह नहीं बन सकता। जो प्रेम स्वयं विकसित हो प्राण को बहा नहीं ले जाता वह प्रेम प्रेम नहीं है। आयशा के साथ विवाह नहीं हो सकता क्योंकि इस मामले में हृदय-विनिमय की कोई आशा नहीं। यह मैं जानता हूँ कि आयशा के हृदय में मेरे लिए अथाह प्रेम है लेकिन मेरे हृदय की वीणा उस स्वर में बज नहीं सकती। यह सच है कि मैं आयशा से बहुत प्यार करता हूँ पर वह प्रेम आयशा के प्रेम के अनुरूप नहीं है। इसलिए मैं उसे पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। वह भी मेरी पत्नी बनने को राजी नहीं हो सकती।"

तिलोत्तमा बोली, "क्यों? तुम आयशा को हृदय नहीं दे सकते? क्यों? तुम उसे उसकी नाईं प्यार नहीं कर सकोगे?"

जगतसिंह बोले, "बिल्कुल बच्ची की तरह सवाल किया तुमने। तुम पूछ सकती हो, क्यों दिन में रात नहीं होती? पानी में आग क्यों नहीं होती? सरले, भवितव्य होकर ही रहता है; जिसका सर्जन जिस लिए हुआ हो, वह वही काम करता है।"

तिलोत्तमा बोली, "फिर भी यत्न से, प्रयास से, प्रबल वासना से बहुत से विषयों में परिवर्तन लाया जा सकता है। तुम कोशिश करो तो अवश्य

ही आयशा को अपना हृदय दे सकते हो, अवश्य ही उसके स्वर में अपनी हृदय-वीणा समस्वर कर सकते हो।"

जगतसिंह बोले, "हृदय एक है, जब जी में आया जिस-तिसको यह नहीं दिया जा सकता है। जिस हृदय पर तुम्हारा ही पूर्णतया अधिकार है उसमें किसी और का स्थान नहीं हो सकता। एक आकाश में अनगिनत तारे हो सकते हैं लेकिन उसमें दो सूरज या दो चन्द्रमाओं का स्थान नहीं हो सकता। तुम्हारे ही प्रेम के स्वर में मेरे हृदय के तार बजने लगे हैं, उसमें दूसरा कोई स्वर क्यों बजेगा? आयशा, गगन के किनारे क्षुद्र तारिका सी चमकने वाली नारी नहीं है। जिस स्वर में आयशा के प्यार के गीत गाये जा सकते हैं मेरी वीणा में वह स्वर नहीं है।"

सिर झुकाये तिलोत्तमा बहुत देर तक सोचती रही। राजपुत्र के वाक्य का तात्पर्य वह समझ सकी। ठंडी साँस लेते हुए उसने कहा, "तो क्या तुमने सोच रखा है कि वह शोभामय पुष्प आप ही मुरझा जाय? बेवफा से की हुई मुहब्बत की तीव्र जलन को भोगते हुए वह अतुलनीय ज्योति यों ही बुझ जाय?"

जगतसिंह बोले, "पता नहीं ईश्वर की क्या इच्छा है? लेकिन, शायद, तुम जो कुछ कह रही हो वही आयशा की नियति है। मैं उससे बहुत प्यार करता हूँ, उसके गुणों से मैं मुग्ध हूँ, मेरे विचार से उनका रूप अतुलनीय है और मैं उसके ऋण से बँधा हुआ हूँ। उसे जरूरत पड़े तो मैं बेझिझक प्राण दे सकता हूँ, फिर भी जो प्राप्त होने से वह सुखी हो सकती है वह प्रदान करने से मैं विवश हूँ। क्योंकि वह मेरे पास नहीं है। जिस प्रेम से नर्क भी स्वर्ग बन जाता है, जिस प्रेम से मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है वह प्रेम मैंने अपनी अंकशायिनी इस सुर सुन्दरी को सम्पूर्णरूप से दे दिया है। आयशा उसी प्रेम की प्रार्थी है। उस प्रेम का सब का सब इस देवी के चरणों पर समर्पित है इसलिए उस देवी को देने के योग्य सामग्री मेरे पास नहीं है।"

तिलोत्तमा नीरव थी। बड़ी ही प्रगाढ़ प्रेमपूर्ण बातें हैं। आयशा पूर्णहृदय के पूर्णप्रेम के बिना कभी तृप्त नहीं हो सकती। क्षुद्र नारी की नाईं, महाराज मानसिंह की असंख्य रानियों की तरह प्रेमास्पद को पति कहने भर का

अधिकार पाने से आयशा कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती इस कारण उसके इस क्लेश-मोचन का शायद कोई उपाय नहीं है।

जगतसिंह बोले, "कृतज्ञता की बात कर रही थीं। आयशा के प्रति कृतज्ञता के बारे में सोचने की कोई जरूरत नहीं है। जिसके हृदय में हमारे बारे में अथाह प्रेम हो क्या वह कृतज्ञता की आशा में या आभारी बनाकर प्रेम उद्दीप्त करने की वासना से मेरी भलाई कर रही है ? ऐसा अगर होता, तो एकबार भी वह मुझसे मिलने की इच्छा प्रगट करती, कम से कम एकबार भी वह मुझसे प्रणय के प्रसंग पर चर्चा करती। उस देवी का हृदय अथाह समुद्र सा है और मैंने पहले ही कहा है कि तुम लोग उसकी तरंगों की माला में से एक भी लहर देखने को सफल नहीं हुए हो।"

दरवाजे की दूसरी ओर से महारानी उर्मिला ने पुकारा, "कुवँर।"

तिलोत्तमा दूसरे दरवाजे से तेज कदमों से भाग गयी। युवराज बोले, "आइए मा।"

युवराज आसन छोड़कर खड़े हो गये। तत्क्षण महारानी उर्मिला विविध भोजन सामग्रियों से भरी सोने की थाली लिये कमरे में दाखिल हुई।

——)०(——

(१६)

आशा का अन्त

महाराज मानसिंह अपनी रानी और अन्य साथियों के साथ आगरा चले गये हैं। युवराज जगतसिंह स्वतंत्ररूप से दक्षता के साथ शासनकार्य चला रहे हैं। यात्रा के समय महाराज मानसिंह पुत्र को राजकार्य के बारे में विविध सदुपदेश और अपना आन्तरिक आशीर्वाद देते रहे।

महारानी उर्मिला ने जाते समय राजलक्ष्मी तिलोत्तमा को साथ ले जाने के लिए आग्रह प्रकट किया था और महाराज को तिलोत्तमा के न होने से बड़ा क्लेश होगा ऐसा कहा था। सास-श्वसुर के सन्तोष के लिए मन की इच्छा कुछ और होते हुए भी तिलोत्तमा ने उनके साथ जाने की ही इच्छा

प्रकट की थी। लेकिन युवराज जगतसिंह के अकेला रहने पर उन्हें तरह-तरह की तकलीफें होंगी ऐसा विचार कर महाराज और महारानी ने फिलहाल तिलोत्तमा को अन्यत्र ले जाना ठीक नहीं समझा। जिस दिन महाराज और महारानी आदि चले गये उस दिन के विदा के दृश्य को मैं यहाँ उपस्थित नहीं करूँगा। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि रोती हुई तिलोत्तमा के प्रणाम के उपरान्त आशीर्वाद के समय कठोर हृदय वीरश्रेष्ठ महाराज के गालों पर आँसुओं की धार बह रही थी और महारानी उर्मिला बहू को बाहों में बाँधकर ऐसा रोई थीं कि दर्शकों में अधिकांश व्यथित होकर रह गये थे।

जगतसिंह को अकेले कष्ट होगा ऐसा सोचकर महाराज अपने दूसरे पुत्र कुवँर महासिंह को पटना छोड़ गये थे। महासिंह एक कुशल सेनापति, साहसी योद्धा और यशस्वी राजकर्मचारी थे। जगतसिंह से महासिंह आयु में दो साल छोटे थे।

युवराज जगतसिंह के बहुत से सम्बन्धी चले गये। लेकिन तिलोत्तमा के करीब-करीब सभी रिश्तेदार पटना आ गये। बहुत अरसे तक की विपत्ति के उपरान्त युवराज को देखने के लिए विमला बड़ी व्याकुल हुई। लेकिन उस समय पटना छोड़कर गढ़मन्दारन जाना युवराज के लिए असम्भव होने के कारण बेटी और दामाद को देखने के इरादे से विमला पटना आयीं। इसलिए आसमानी भी आयीं। आसमानी जा रही हैं यह देखकर लछमिनिया ने भी पोटली बाँधी और संग चल पड़ी। इसप्रकार सभी को साथ लेकर अभिराम स्वामी को पटना आना पड़ा। इसलिए गजपति विद्यावाचस्पति भी फिर से पटना आने का लोभ न दबा सके। इसके अलावा बहुत से दासदासी लाव-लश्कर भी उनके साथ आये।

विमला दामाद के घर पर न ठहरीं। इस कारण गंगा के किनारे एक मनोहर कोठी में उनका निवास स्थान निश्चित हुआ। उनके सभी पुरुष साथियों का अलग-अलग निवास तय किया गया। युवराज की सम्मति लेकर तिलोत्तमा भी अपनी विमाता के साथ रहने लगीं। कान पकड़ो तो सिर भी कब्जे में आ जाता है; युवराज जगतसिंह भी अपना महल छोड़कर गंगातट की इसी कोठी में अपना अधिकांश समय बिताने लगे। बड़े ही आनन्द से समय कटने लगा। देखते-देखते एक महीना समाप्त हो गया।

उस भवन के एक कक्ष में प्रभात में अभिराम स्वामी और विमला बातें कर रहे हैं। विमला कह रही हैं, "जो होना था सो हो गया है। जो असह्य पीड़ा आज तक भोगती रही हूँ अब उसे और भोगने की कोई आवश्यकता नहीं है। तिलोत्तमा हरप्रकार से पूर्ण सुख की अधिकारिणी बन गयी है। महाराज उसे अपने पुत्र की दासी के रूप में ग्रहण करें इसकी भी संभावना न थी। मेरे भाग्य से अब वे उसे आदर के सहित अपनी पुत्रवधू के रूप में ग्रहण कर चुके हैं। उसका पति धन, सम्मान और पदमर्यादा में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर चुका है।"

अभिराम स्वामी बोले, "तुम्हारी नासमझी की वजह से सारी दुर्दशा और दुर्घटनाएँ हुई हैं ऐसा जानकर मैंने तुम्हें एक दिन फटकारा था। आज मैं अब तुम्हारी बुद्धि और समझदारी की पर्याप्त प्रशंसा कर रहा हूँ। महारानी उर्मिला सदा से तुम पर कृपादृष्टि रखती हैं। उन्हीं के आश्रय में तुमने बहुत दिन अत्यन्त सुख से गुजारे हैं। उन्हीं की कृपा से तुम्हारे पति मानसिंह की क्रोधाग्नि से बच गये थे और उन्हीं की मध्यस्थता से तुम्हें अपने मन के मुताबिक पति भी प्राप्त हुआ था। वही महारानी पुरुषोत्तम का दर्शन करने पुरी आयी हुई हैं यह जानकर तुम तिलोत्तमा को लेकर उनकी शरण में चली गयीं। ऐसा कर तुमने अपनी बड़ी समझदारी का परिचय दिया है। उसी करुणामयी महारानी के कौशल से आज तिलोत्तमा के भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है।"

विमला बोली, "महारानी उर्मिला देवी के चरणों में मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ। भगवान उन्हें सब सुखों का भागी बनावें। अब महारानी की दया से हम लोगों के सभी अभीष्ट पूर्ण हो गये हैं। पिता जी, अब मुझे इस संसार में रहने की क्या जरूरत है?"

अभिराम स्वामी ने पूछा, "क्या करने का निश्चय किया है?"

विमला बोली, "जिनके लिए यह जीवन है वे ही जब न रहे तब मैं यह जीवन और क्यों रखूँ?"

अभिराम स्वामी बोले, "जीवन त्याग करने में बहुत पाप है और हित किसी का भी नहीं। बच्ची, तुम मेरा उपदेश मानो—तुम जीवन्मृता

बन जाओ, उससे सभी कुछ शुभ और आनन्दमय हो जायगा। सभी वासनाएँ त्याग कर तुम अब पूर्णानन्द की अधिकारिणी बनने का अभ्यास करो यही मेरा परामर्श है।"

विमला बोली, "आपका उपदेश शिरोधार्य है। लेकिन पिता जी इस विषम हृदय-ज्वाला की शान्ति क्या और किसी वस्तु में है?"

अभिराम स्वामी बोले, 'है क्यों नहीं; सुख-दुख के अभेद का ज्ञान होते ही सब यातनाओं का अन्त हो जायगा।"

विमला बोली, "मुझे वह ज्ञान कहाँ? यह तो समझ रही हूँ कि ऐसा बोध होते ही सारे क्लेशों की समाप्ति होगी किन्तु उस ज्ञानलाभ का उपाय क्या है?"

अभिराम स्वामी बोले, "बेटी उसके लिए उपदेश और साधना अपेक्षित है। मैं जिस कारण इतने दिनों से यहाँ बँधा हुआ था वह खत्म हो गया है। अब मैं तुम्हें साधना विषयक उपदेश देकर बिदा लूँगा। शायद हम-लोगों को अब और पटना में रहने की आवश्यकता नहीं है। करीब माह भर बेटी और जवाँई लेकर तुमने खुशी मनाई है। शायद इस लम्बे समय के लौकिक आनन्द के बारे में तुम समझ गयी होगी कि ऐसे आनन्द में भी सुख नहीं है। और इस व्यर्थ निरानन्दमय आनन्द से क्या लाभ? अब अक्षय अनन्त आनन्द का पथ दिखाने की कोशिश मैं करूँगा। क्या अब इस स्थान से बिदा लेने का प्रबन्ध करना ही बेहतर न होगा?"

विमला बोली, "जैसी आपकी आज्ञा हो। आज ही इसकी व्यवस्था करती हूँ। पहले तिलोत्तमा से और बाद में युवराज के पास इसका जिक्र करूँगी। राजपुत्र अभी इस घर से चले गये हैं। शाम से पहले उनसे भेंट होने की संभावना नहीं है। तब तक तिलोत्तमा से बातें कर लूँगी।"

विमला और अभिराम स्वामी कोठी में ये सब बातें कर ही रहे थे कि कोठी के बाहर एक मनोरंजक दृश्य का अभिनय होने लगा। गजपति विद्यादिग्गज भवन के फाटक के पास एक पेड़ के नीचे लछमिनिया का पैर पकड़े रो रहा था। कैसे क्या हुआ, स्पष्ट रूप से समझाने के लिए जरा पूर्वकथा बतानी पड़ेगी।

गजपति को बहुत हार्दिक क्लेश भोगना पड़ा था। वह जानता था कि जिसके नाम के शुरू में 'आ' और अन्त में 'नी' है वही मेरी प्रेमिका है। यही ज्योतिष का कहना है और उसकी भाग्य की रेखा है इसलिए यह बात झूठ नहीं हो सकती। अभिराम स्वामी से पत्र लेकर गजपति एक बार पटना आया था—यह शायद पाठकों को याद हो। उसी समय मथुरासिंह के दल के उस मजाकिया ज्योतिर्विद सैनिक से गजपति की अचानक भेंट हो गयी थी। गजपति ने तो नहीं पहचाना लेकिन उस सैनिक ने गजपति को पहचान लिया था। अच्छा खासा तमाशा होगा ऐसा सोचकर उस सैनिक ने दूसरे एक सैनिक को गुरुदेव बनाकर गजपति को उसके पास ले गया था। गुरुदेव ने गजपति का माथा देखकर कहा था कि वहाँ स्पष्ट रूप में लिखा है कि जिसके नाम के शुरू में 'आ' और अन्त में 'नी' है वही तुम्हारी प्रणयिनी है। जब ललाट-लिपि ही निस्सन्देह ऐसी है तो गजपति का भी जोर बढ़ गया। पर होने से क्या होता, घटना बड़ी ही प्रतिकूल बनने लगी।

अभिराम स्वामी ने प्रसंगवश गजपति से हँसी-मजाक करने के सिलसिले में विमला को काफी डाँटा-फटकारा था। आसमानी भी उस समय वहाँ मौजूद थी। उस घटना के बाद से विमला और आसमानी दोनो बड़ी सावधानी से चलने लगी थीं। यों आसमानी गजपति के सामने नहीं आती और आने पर भी कोई बात नहीं करती और सावधानी से दूसरी ओर खिसक जाती थी। चन्द्र-सूर्य जिस शास्त्र के साक्षी हैं क्या वह शास्त्र भी झूठा है?

गजपति ने निश्चय किया कि आसमानी के इस अन्याय अत्याचार के विरुद्ध शिकायत करने का उसे अधिकार है। सारे मुल्क के जो सर्वमय मालिक हैं उन युवराज जगतसिंह के साथ उसका यथेष्ट परिचय है। इसलिए नालिश उनसे करना चाहिए। जगतसिंह जिस समय गंगा-तट की कोठी में आते थे गजपति भी उसी समय तोरण के पास इन्तजार करता था। युवराज का आना और जाना दोनो वह देखता रहा—लेकिन कोई बात करना तो दरकिनार राजकुँवर के सामने खड़े होने की भी हिम्मत उसकी न पड़ती। राजपुत्र के साथ नंगी तलवार हाथ में लिये सामने और पीछे जा रक्षक होते उन्हें देखकर

ही गजपति के हाथ-पैरों को लकवा मार जाता, इसलिए सिर बचाने की चिन्ता में नालिश का इरादा हवा हो जाता।

ऐसे ही समय एक दिन वह लछमिनिया की आँखों में पड़ गया। युवराज आ रहे हैं देखकर दिग्गज एक पेड़ की आड़ में छुपा हुआ था। राजपुत्र के कोठी से निकलने के बाद दिग्गज छुपी जगह से निकल आया। तभी दूसरी ओर से लछमिनिया ने आकर उसका हाथ पकड़ा। गजपति के साथ ऐसा हँसी-मजाक करना अभिराम स्वामी को पसन्द न था यह लछमिनिया को मालूम न था। इसलिए इस बारे में सावधान होने की जरूरत उसने महसूस नहीं की। अब अचानक गजपति से मुलाकात हो जाने से जरा मजाक करने का लोभ वह न दबा सकी। मुँह लटका कर जरा गुस्से का भाव दिखाकर उसने गजपति का हाथ पकड़ लिया।

अब दिग्गज के शरीर पर वे पुराने वस्त्र नहीं थे। अब वह धोती पहन कर ऊपर से रामनामी ओढ़े था। गले में तुलसी की कंठी थी और नाक तथा माथे पर तिलक था। ऐसे शुद्ध वेशधारी छैला का हाथ पकड़े लछमिनिया ने कहा, "अरे चोर! बहुत दिनों की तलाश के बाद अब तुझे फिर पकड़ सकी हूँ।"

अचानक लछमिनिया से मिलकर गजपति भी खुश हुआ। सोचा, "धूमात् वह्निः", जब लछमिनिया रूपी बादल दिखाई पड़ गया है तो आसमानी रूपी वर्षा भी सुलभ हो सकती है। उस बार भी ऐसा ही हुआ था। लछमिनिया उसकी प्यास का बादल है—जल नहीं। आनेवाली गाड़ी की ध्वनि है—गाड़ी नहीं। श्री राधा के चरणों में पैंजनियों की झंकार है—श्री राधा नहीं। दूर के सुरभियुक्त पुष्पों की सुगन्ध है—पुष्प नहीं। आगे बढ़ते हुए नरपति की समृद्धि की धूल है—नरपति नहीं। इसलिए लछमिनिया को देखकर पूर्णानन्द न होने पर भी गजपति आश्वस्त हुआ। पर्याप्त आनन्द मिला। बोला, "तुम—लछमिनिया—तुम! तो तुम्हारी आसमानी कहाँ है?"

लछमिनिया बोली, "आसमानी कहाँ है, मैं क्या जानूँ? क्यों, क्या मैं पसन्द नहीं आ रही हूँ? अगर इस तरह से ठुकराना ही था तो मुझे

क्यों डुबोया ? मैं तुम्हारे लिए उन्मादिनी बनी भटक रही हूँ—यह क्या तुम्हें मालूम नहीं है ?"

दिग्गज बोला, "मालूम तो खूब है। मैं भी तुम्हारे लिए पागल सा हो गया हूँ। लेकिन दर असल बात क्या है जानती हो—आसमानी से मुझे कुछ खास जरूरत है। उससे बहुत दिनों का प्रेम है। उसे यों ही छोड़ा नहीं जा सकता। क्या तुम एक बार उसे बुलवा सकती हो ?"

लछमिनिया बोली, "मुझे कौन सी गर्ज पड़ी है ? अपने दुश्मन को बुलाकर कौन उसके सामने दूध का कटोरा रख देता है ? मैं उसे कभी न बुलाऊँगी। अब की बार मैं तुम्हें कतई नहीं छोड़ूँगी। तुम मेरे होकर रहोगे या नहीं, यह बताओ।"

दिग्गज बोला, "अवश्य रहूँगा। लेकिन सुन्दरि, आसमानी के साथ एकदम रिश्ता तोड़ने से पहले और तुम्हारा बनकर रहने से पूर्व क्या उससे एकबार बिदा लेना उचित नहीं है ? दुहाई तुम्हारी, एकबार इसका इन्तजाम कर दो।"

लछमिनिया बोली, "कभी नहीं, मैं तुम्हें आसमानी के साथ एक भी बात करने नहीं दूँगी। दूर से खड़े-खड़े एकदफे देखने भी न दूँगी। आसमानी को अगर कभी तुम्हारे पास देख पाऊँ तो मारे झाड़ू के दोनो की ही तबियत हरी कर दूँगी।"

बड़ी विकट समस्या थी ! बहुत देर तक सोचने के बाद दिग्गज बोला, "तो क्या आसमानी के साथ इस जनम में एकदफे भी मुझे मिलने न दोगी ?"

लछमिनिया बोली, "कभी नहीं।"

तब गजपति रोते-रोते लछमिनिया के पैर पकड़ कर बोला, "सुन्दरि ! तब तो मैं मर जाऊँगा। मुझे मार कर तुम्हें कौन सा लाभ होगा ?"

लछमिनिया बड़े कष्ट से हँसी रोककर बोली, "तुम मर जाओ सो भी बेहतर है। तुम्हें यम के घर भेज सकती हूँ फिर भी तुमको आसमानी का नहीं बनने दूँगी।"

जिस समय दिग्गज कातर हो लछमिनिया के पैरों तले रो रहा था,

अभिराम स्वामी वहाँ पहुँच गये। उन्हें देखते ही लछमिनिया तेनी से भाग खड़ी हुई। भागने की इच्छा और शक्ति रहते हुए भी दिग्गज भाग न सका। वह सिर झुकाये खड़ा रहा।

अभिराम बोले, "मूर्ख! ये नारियाँ तुझसे हँसी मजाक करती हैं, यह मामूली बात समझने लायक बुद्धि भी क्या तुझमें नहीं है? मैंने सुना है कि किसी व्यक्ति ने तुझे समझाया है कि तेरे माथे पर प्रेम की बातें लिखी हुई हैं। यह सब झूठ है। मैंने ज्योतिष का सम्पूर्ण अध्ययन किया है। तुम्हारे माथे पर ऐसी कोई बात नहीं लिखी है यह मैं निश्चितरूप से जानता हूँ। यदि मेरा अनुग्रह तुम चाहते हो तो तुम्हें अब से यह सब भद्दा आचरण छोड़ना पड़ेगा। आओ, मेरे साथ चलो।"

हार कर गजपति सिर झुकाये गुरु के पीछे-पीछे चलने लगा।

——:०:——

(१७)

अशान्ति

जगतसिंह के शासनकाल के प्रारम्भ में इस विशाल प्रान्त में कोई भी अशान्ति नहीं दिखाई पड़ी। हर कहीं प्रजा बिना उपद्रव मचाये निश्चिन्त रूप से समय बिताने लगी। तीनो प्रान्तों में किसी प्रकार के असन्तोष का लेश भी न रहा; कहीं पर भी विद्रोह की आग सुलग रही हो ऐसा समाचार न मिला। स्वतंत्ररूप से, प्रेममयी पत्नी का संग-सुख और आनन्द लेते हुए और नवार्जित पद-प्रतिष्ठा का गौरव भोग करते हुए युवराज जगतसिंह परमानन्द से दिन बिताने लगे।

लेकिन शायद, इस संसार में चिरानन्द की कोई व्यवस्था नहीं है। जहाँ आनन्द का कुसुम खिलता है वहीं दुष्ट कीट भी अलक्षितरूप से आकर उस पर धावा बोलता है और उसकी शोभा और सुन्दरता को विकृत और रूपहीन कर देता है। सहसा उड़ीसा से राजा रामचन्द्र देव ने समाचार भेजा कि नवाब उसमान खाँ ने सेना का काफी संग्रह कर लिया है और युद्ध के

लिए सब तरह का प्रबन्ध भी कर रहा है। शायद शीघ्र ही उड़ीसा में बड़ी अशान्ति उत्पन्न होगी।

इस समाचार से नवीन सूबेदार बहुत ही विचलित हुए। कुमार महासिंह से वे इस मामले में परामर्श करने लगे। युद्ध के लिए सभी व्यवस्थाएँ कर सदा तैयार रहना ही आवश्यक है ऐसा ही दोनो भाइयों ने विचार किया। मुगलों की ओर से भी पर्याप्त तैयारियाँ होने लगीं।

जल्द ही फिर खबर आयी, उड़ीसा के पठानों ने नवाब उसमान खाँ के अधीन संचालित हो बड़ी गड़बड़ी कर दी है। पुरी पर फिर से हमला हुआ है और वह पठानों के अधिकार में आ गया है। आज रामचन्द्र दूसरे किसी किले में आश्रय लिये हुए हैं लेकिन आशंका है कि उस किले पर भी जल्द ही हमला होगा।

पठानों का दमन करने के इरादे से कुवँर जगतसिंह पर्याप्त तैयारी कर उड़ीसा के लिए रवाना हुए। भद्रक के निकट के प्रान्त में दोनो पक्षों की मुठभेड़ हुई और वहाँ तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। नवाब उसमान खाँ स्वयं सेना का संचालन करने लगे और बड़े उत्साह से युद्ध करने लगे। युद्ध में विजयलक्ष्मी ने उसमान का साथ दिया। मुगलों की बड़ी ही लज्जा-जनक पराजय हुई। महासिंह की बहुत सेना मारी गयी और जो लोग जीवित भी रहे वे प्राणभय से भाग खड़े हुए। स्वयं महासिंह को भी अन्त में रणक्षेत्र छोड़कर प्रस्थान करना पड़ा।

विजयी पठानों ने सारे उड़ीसा पर अधिकार जमा लिया। लेकिन अदम्य उत्साह और नव-शक्ति से भरे बलवान उसमान केवल उड़ीसा पर कब्जा कर ही शान्त न हुए। बंगाल की ओर भी वे सेना लेकर आगे बढ़ने लगे। हर तरह की कोशिश के बावजूद महासिंह उनका गतिरोध न कर सके।

युवराज जगतसिंह भी लड़ाई के मैदान में उतरे। तब तक बंगाल का अधिकांश भाग पठानों के कब्जे में आ चुका था। बड़े ही कम समय के अन्दर सारा मेदिनीपुर, सारी मल्लभूमि, सारा कोलहान और वीरभूमि, बाँकुड़ा और बर्धमान के बहुत से भाग पठानों के हाथ आ गये। हर लड़ाई में उसमान की

बीत होने लगी। उनका साहस और उनकी शक्ति देखकर शत्रुपक्ष भी मुग्ध होता था। उनकी बाहों में ऐसी अस्वाभाविक शक्ति थी एवं उनके हृदय में इतना अदम्य उत्साह था कि यह स्पष्ट दिखाई देता था कि विजयश्री मानो उनकी नित्यसंगिनी हो गयी है। सभी लोगों ने समझ लिया कि उड़ीसा मुगलों के हाथ से निकल गया, शायद बंगाल और बिहार भी उसमान के कब्जे में जाने के लिए सिर झुकाये प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उसमान के इस जयोल्लास से आयशा के आनन्द की सीमा न रही। सीधे-सीधे हथियार लेकर लड़ाई के मैदान में न उतरने पर भी वह इस लड़ाई के मामले में प्रधान नायिका थी। बहुत सी लड़ाइयों में अपने दास-दासियों को लेकर वह उसमान का अनुसरण करती थी। बहुत सी लड़ाइयों में रणविरति के समय आयशा के शिविर में आकर उसमान उससे सलाह-मशविरा करता था। आयशा की मंत्रणा और बुद्धिकौशल से बड़ी आसानी से ही उसमान विजय प्राप्त करने लगे। आयशा के बीमारी से उठने के बाद उसमान ने उससे अपने भविष्य के बारे में जो जो बातें कही थीं, एक-एक कर वे सभी सच निकलीं। उसमान का उत्साह असीम था। जगतसिंह के आने के बाद भी उसमान की जयश्री में कोई फर्क न आया। अन्त में जगतसिंह ने सम्मुख-युद्ध छोड़ कर कौशल से उसमान के विनाश का उपाय ढूँढ़ना शुरू किया। जल्द ही यह मौका आ गया।

उसमान ने सोच-विचार कर यह निश्चित किया कि बर्दवान पर विजय पाते ही सारे बंगाल पर पूरा-पूरा उनका कब्जा हो जायगा। इस इरादे से उन्होंने पहले गढ़मन्दारन पर हमला करने का निश्चय किया। गढ़मन्दारन पठानों के हाथों में आ जाने पर वहाँ सेना आदि का जमाव कर वर्दवान जीतने में कोई दिक्कत न होगी। ऐसा तय कर नवाब उसमान ने उत्कृष्ट योद्धाओं का एक दस्ता गढ़मन्दारन की ओर भेज दिया। जगतसिंह उस वक्त बर्दवान में थे। यह उसमान को अविदित न था। उस स्थान से कभी ससुराल आना भी उनके लिए असंभव न था। ऐसा अनुमान कर नवाब ने सेना को छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट कर गढ़मन्दारन से सटे जंगलों में रहने का आदेश दिया। वे सहसा कोई लड़ाई न कर यह प्रतीक्षा करने लगे कि जगतसिंह उस ओर

आते हैं या नहीं। अगर मौका मिले तो उन्हें जिन्दा कैद करना है और अगर मुमकिन न हो तो उन्हें मार डालना है। उसके बाद उचित समय पर पहुँचकर उसमान स्वयं स्वर्गीय वीरेन्द्रसिंह के दुर्ग पर आक्रमण करने और लड़ने की व्यवस्था करेंगे।

पठान सेना आदेश के अनुसार गढ़मन्दारन के निकट के प्रान्तों में जगतसिंह पर छुपकर आक्रमण करने के इरादे से उनकी घात में पड़ी रही। पर जगतसिंह एकबार भी गढ़मन्दारन की ओर नहीं आये। वह बर्दवान से थोड़ी सी चुनी हुई सेना लेकर उड़ीसा की ओर चले। खुले राजपथ से वे न गये। सँकरी पगडंडियों के सहारे चलकर सहसा उसमान पर आक्रमण करना ही उनका अभिप्राय था। नवाब उसमान भी जगतसिंह पर सहसा आक्रमण करने का मौका ढूँढ़ रहे थे। दोनो योद्धा ही करीब-करीब एक ही उद्देश्य लेकर चले थे। दोनों वीर यथासमय अल्प संख्यक चुनी हुई सेना अपने साथ लेकर गुप्तरूप से यात्रा करने लगे।

सुवर्णरेखा नदी के तटपर जगतसिंह को खबर मिली कि थोड़ी ही दूरी पर उसमान की टुकड़ी खेमा लगाये पड़ी है। उसमान पर हमला करने का यही उचित मौका है ऐसा युवराज ने सोचा। इसलिए वह धावा बोलने ही वाले थे कि ऐसे समय उसमान ने शत्रु का इरादा समझकर युद्ध-विरति-सूचक एक झंडा देकर एक दूत भेजा।

युवराज के सामने आकर दूत ने ससम्मान निवेदन किया, "आज की लड़ाई में शायद दोनो का ही एक लक्ष्य है। नवाब का वध करना ही शायद युवराज की इच्छा है और युवराज का विनाश करना ही नवाब का इरादा है। ऐसे खंड-युद्ध में दूसरा कोई उद्देश्य रहना संभव नहीं। अगर बात ऐसी हो तो विना कारण कुछ नरहत्याएँ न कर, नवाब और युवराज द्वन्द्वयुद्ध कर लें तो एकपक्ष का उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। इस बारे में युवराज का अभिप्राय क्या है?"

युवराज लड़ाई की तैयारी को रोकने का आदेश देकर बोले, "मैं इस प्रस्ताव से असम्मत नहीं हूँ। तुम नवाब से कहना कि मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ। नवाब को यदि कोई विलम्ब हो तो मुझे समाचार दें।"

दूत अभिवादन कर विदा हो गया। जगतसिंह और उनके अनुचरों ने दूर ही से दूत को शिविर में प्रवेश करते देखा। फौरन ही शिविर से निकलकर उसमान जगतसिंह की ओर बढ़ने लगा। निकट ही युवराज का घोड़ा सजा हुआ खड़ा था; लेकिन उसमान पैदल आ रहा था यह देखकर जगतसिंह घोड़े पर सवार न हो उमंग के साथ उसमान की ओर बढ़ने लगे।

दोनो वीर निकट आ गये। जगतसिंह ने कहा, "आपसे तब मुलाकात हुई थी और अब हुई। उम्मीद है कि यही हम लोगों की आखिरी मुलाक़ात होगी। क्योंकि आज इस जगह से केवल एक ही व्यक्ति के लौटने की संभावना है।"

उसमान बोला, "आपके साथ द्वन्द्वयुद्ध में ही मेरी आपसे आखिरी भेंट हुई थी, इसबार भी हम लोग द्वन्द्वयुद्ध करने को ही मिले हैं! आप मेरे परम शत्रु हैं। अपने हाथों से शत्रु का वध करूँ इसी उद्देश्य से मैंने इस द्वन्द्वयुद्ध का प्रबन्ध किया है। आशा है मेरा यह उद्देश्य सफल होगा।"

जगतसिंह बोला, "हम लोग व्यर्थ बातचीत करने के लिए यहाँ आकर नहीं मिले हैं। आप युद्ध करने के लिए तैयार हो जाइए।"

उसमान ने सगर्व कहा, "मैं तैयार हूँ। आप अपनी जान बचाने का उपाय कीजिए।"

भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। दूर ठहरे दोनो पक्षों के वीर चिन्तित होकर वह भीषण दृश्य देखने लगे। दोनो की दक्षता और क्षिप्रता देखकर दर्शक विस्मय में पड़ गये। सहसा उसमान की तलवार राजपुत्र की तलवार से टकरा कर टूट गयी। उसमान तत्क्षण भाला लेकर जगतसिंह को बेधने का प्रयत्न करने लगे। जगतसिंह ने भी तलवार फेंककर भाला ले लिया।

उसमान का फेंका हुआ भाला युवराज की गर्दन का चमड़ा तनिक छील कर दूर जा पड़ा। अनोखी दक्षता के साथ उसमान तीरगति से घूम कर

वह भाला उठा ले आया। राजपुत्र का फेंका हुआ भाला उसमान के सिर से जा टकराया। हालाँकि हड्डी नहीं टूटी, चमड़ा कट गया और मस्तिष्क पर भी संगीन चोट आयी। कुछ देर के लिए उसमान ने चारो ओर धुवाँ-सा देखा और अकर्मण्य हो खड़ा रहा।

कुमार मौका पा जरा दूर खिसक गया और उसमान के सीने का निशाना कर बड़ी ही शक्ति के साथ उसकी ओर भाला फेंका। उसमान उस समय किसी भी तरह से आत्मरक्षा करने के अयोग्य था इसलिए निकट खड़े दर्शकों ने समझ लिया कि राजपुत्र के फेंके हुए भाले से इसबार नवाब का अवश्य ही प्राणनाश होगा। जगतसिंह ने विपुल शक्ति से भाला फेंका। तत्क्षण मानो धरती फोड़कर उस स्थान पर एक सुन्दरी आविर्भूत हुई। वह सुन्दरी चिन्ता सी सूक्ष्मगामिनी बनी पलभर में उस फेंके हुए भाले और उसमान के बीच में हो गयी। सभी के मुँह से अनजाने ही ओह शब्द निकल पड़ा। उसमान का क्षणिक अवसाद तब तक दूर हो गया था। जगतसिंह भी सिहर उठा और आर्त्त के समान दोनो हाथों को उसने ऊपर उठा लिया। उसका फेंका हुआ भाला तब तक सुन्दरी की पीठ भेदन कर चुका था। तत्क्षण वह सुन्दरी उसमान के वक्ष पर गिरकर मुक्तकंठ से बोली, "उसमान, मेरे गुणी भाई, इस जीवन में मैं तुम्हारी अशेष यातना का हेतु बन गयी थी; प्रार्थना करती हूँ कि अन्य जन्म में मुझे तुम्हारे क्लेश का कारण न बनना पड़े।"

वह सुन्दरी आयशा थी। उस समय लड़ाई-झगड़े में उसकी ओर किसी ने ख्याल न किया था। उसमान ने उस सुन्दरी को वक्ष पर धारण कर उसकी पीठ से भाला निकाला। जगतसिंह ने माथा ठोककर कहा, "हाय! आज मेरे ही भाले से घायल होकर धरती का श्रेष्ठ रत्न—मेरी परम शुभेच्छु देवी महाप्रस्थान कर रही है। क्यों न नवाब के अस्त्राघात से मेरा प्राण पहले ही निकल गया?"

आयशा बोली, "राजपुत्र, नजदीक आइए। उसमान, प्रेममय भाई, मेरे पास अब और समय नहीं है, कहने के लिए कोई खास बात भी नहीं है। राजपुत्र ने स्वेच्छा से मेरी देह पर अस्त्र नहीं चलाया। इसलिए इस

हेतु उन्हें दोषी मत करार देना। भाग्य के फेर से अपने चित्त पर प्रभुत्व खोकर मुझे आजीवन कष्ट मिला, तुम्हें भी मैंने दुःख के सागर में फेंका। अभिन्नहृदय भाई, तुम प्रेममय हो। तुम्हारे प्रेम का कणभर मिलने पर लोग धन्य हो जायेंगे। आशीर्वाद दो कि अन्य जन्म में तुम्हारे इस अलौकिक प्रेम को भोगने से मैं वंचित न रहूँ।"

खेमे के हकीम तत्क्षण वहाँ आ पहुँचे।

आयशा ने कहा, "हकीम की कोई जरूरत नहीं। इस चोट का कोई इलाज नहीं है। राजपुत्र, आपसे मैंने बहुत प्रेम किया था। किसी प्रतिदान की आशा किये बिना ही अपने प्राण का सब प्यार मैंने आपके चरणों पर उँडेल दिया था। जो दिया गया सो लौटाने की शक्ति मुझमें न थी। और एक ओर मेरे लिए प्यार का अथाह समुद्र पड़ा था वह मैंने देखकर भी नहीं देखा। उसी नासमझी और अन्धेपन से बहुतों का हृदय शोक से पूर्ण कर आज मैं चिरविदा ले रही हूँ। राजकुवँर मुझे क्षमा करें। मैं जानती थी कि आपसे इस जीवन में मेरी मुलाकात न होगी, लेकिन मेरे प्राणों के प्राण उसमान के वक्ष में भाला बिंधेगा इस आशंका से मुझे आज आपके सामने आना पड़ा। आयशा अभागिन है। उसका प्राण जितनी जल्द निकले उतना ही कल्याण है।"

जगतसिंह बोला, "जिसके पास मेरा जीवन असंख्य उपकारों का आभारी है, जिसकी तुलना इस संसार में नहीं है, जिसका अहसान कभी खतम होने का नहीं, आज मेरे हाथों उसी आयशा का प्राणान्त हो रहा है, यह असह्य दुख मेरे साथ सदैव रहेगा!"

आयशा बोली, "युवराज भूल जाइये। आयशा के विषादमय जीवन की बातें भूल जाइए। दुआ करती हूँ कि आप परम सुख से दिन बितावें। तिलोत्तमा बहन को इस अभागिन के बारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं। मुझे सदा के लिए बिदा दीजिए।"

राजपुत्र सिर झुकाये रोने लगे। आयशा के घाव से रक्त की धारा फूट पड़ी। उसका स्वर बड़ा ही क्षुब्ध हो उठा। वह बड़े ही क्लेश से बोलने लगी, "उसमान—प्रेममय—तुम्हारा मुखड़ा अब अच्छी तरह से दीख नहीं

पड़ता। शायद अब और देरी नहीं है। जीवन में तुम्हें मैंने बहुतेरे कष्ट पहुँचाये हैं। इसबार तुम्हें परम कष्ट देकर जा रही हूँ। उसमान भाई, इस अन्तिम समय पर मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर मुझे चिर विदा दो।"

उसमान की आँखों में आँसू नहीं, मुँह में कोई शब्द नहीं, हृदय में ठंडी साँस नहीं। योद्धा के वेश में सज्जित वह वीर मानो पत्थर के बुत के समान निश्चल हो बैठा है। उसकी गोद में खून से लथपथ, मृत्यु के चंगुल में पड़ी भुवनमोहिनी है।

जगतसिंह ने कातर भाव से कहा, "नवाब साहब। नवाबनन्दिनी आपसे विदा माँग रही हैं।

उसमान होश में आया। वह बोल पड़ा, "प्राणेश्वरि, तुम विदा माँग रही हो? जिसे क्षणभर न देख पाने पर मेरे लिए विश्व अन्धकारमय हो जाता था, जिसकी प्रसन्नता देखकर जीवन का सारा कार्य मैं करता था, उसे विदा! जीवनसंगिनी, कुछ पहले जाने की इच्छा है तुम्हें? जाओ, तुम्हारा उसमान तुम्हारे पीछे आ रहा है।"

आयशा बोली, "बोला नहीं जाता—बातें खत्म हो गयी हैं। मेरी मा—मेरी दुखियारी मा को तुम ढाढ़स बँधाना उसमान! तुम्हें अपने प्रति चिरकरुणामय जानकर तुम्हारी गोद में मृत्यु—बड़ी सुखमयी है! उसमान! वाह री शोभा! तुम और मैं, सोने के रथ पर, विमान पर—भाई बहन—कितना मधुर—अहा! भाई उसमान—"

आयशा के मुख से कोई और शब्द न निकला। सभी ने देखा वह उज्वल दीपक अचानक बुझ गया। सभी ने समझा कि शोभामय कुसुम असमय ही झर गया।

———*———

अन्त

अत्यन्त रमणीक प्रदेश में एक बड़े ही एकान्त स्थान पर आयशा की नश्वरदेह समाधिस्थ की गयी। बहुत से लोग देखते थे कि एक विषण्ण पुरुष रोज सबेरे और शाम उस समाधि के पास आकर कब्र पर सिर रखे आँसू बहाता है। वह पुरुष उसमान था।

इस दुर्घटना के उपरान्त उमंग और उद्यम उसमान को हमेशा के लिए छोड़कर चले गये। जिसके बल से उसमान शक्तिशाली था वही उसे छोड़कर चली गयी है। दो युद्ध और हुए किन्तु दोनों में ही उसमान आसानी से पराजित हो गया। पठानों का सारा इलाका मुगलों के कब्जे में आ गया। उसमान ने उसके लिए एक भी ठंडी साँस न ली। उड़ीसा में पठानों की धाक खत्म हो गयी। सारे भारतवर्ष से पठानों की प्रधानता उजड़ गयी।

उसमान की मृत्यु हुई। उसी की इच्छा के अनुसार आयशा की समाधि के बगल में उसकी भी मृतदेह रखी गयी।

——):※:(——

समाप्त

हमेशा नये टाइप में

अपने साहित्य को सुन्दर व आकर्षक छपाने के लिये संपर्क स्थापित करें

सदैव नया टाइप, कंपोज़िंग, प्रिंटिंग की अपूर्व सुविधा

वर्णमाला टाइप फाउण्ड्री

रानीकटरा, लखनऊ

संपूर्ण बंकिम-साहित्य

अनुवादक तथा संपादक—साहित्यमनीषी स्व० पं० रूपनारायण पाण्डेय

आनन्दमठ २)	देवी चौधरानी २)	विषवृक्ष २)
मृणालिनी २)	राधारानी ॥)	चन्द्रशेखर २)
दुर्गेशनंदिनी २)	युगलांगुरीय ॥)	राजमोहन की स्त्री २)
इन्दिरा २)	कमलाकांत का पोथा २)	नवाबनंदिनी ३॥)
रजनी २)	वंगशार्दूल सीताराम २)	मृण्मयी ३)
लोक-रहस्य २)	कपालकुण्डला २)	राजसिंह २॥)

कृष्णकांत का वसीयतनामा २)

सम्राट् नीरो—सामन्तवादी युग के रोमन साम्राज्य के अत्याचारों का रोमाञ्चकारी उपन्यास 'को-वाडिस' का हिन्दी रूपान्तर। मूल्य ४॥)

नव-साक्षर-साहित्य

टाम काका की कुटिया—(संक्षिप्त) अफ्रीकी गुलाम-व्यापार की दर्दनाक कहानी। मूल्य १॥)

हरिश्चन्द्र—टीका-सहित सचित्र पद्य-आख्यान। मू० १)

हमारा समाज—व्यंग्यात्मक नाटक (स्त्री-पात्र-रहित); मू० ॥)

सचित्र बाल-साहित्य—चण्ट-चौकड़ी।-) डायन राजरानी।-) महाराज कपालफोड़ ।-) मायावी सँपेरा ।-)

रमणी रत्नावली-सचित्र, राज्यश्री ॥=) गार्गी ॥=) गढ़मण्डल की रानी ॥=)

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २३, श्रीराम रोड, लखनऊ

रामायण कृत्तिवास हिन्दी में

(उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी से कई सौ वर्ष पूर्व बंग की पुनीत भूमि में भक्त-शिरोमणि महासंत कृत्तिवास की मंजुल वाणी से प्रवाहित सलिल मुग्धकारी काव्य 'रामायण-कृत्तिवास' का हिन्दी में सरल दोहा-चौपाई में उत्कृष्ट नूतन रूपांतर हिन्दी-साहित्य के लिए एक अद्भुत नई देन है। कृत्तिवास रामायण में सन्त ने बाल्मीकीय, भागवत, योगवाशिष्ठ, अध्यात्म, आनन्द, महारामायण आदि अनेक रामायणों के आधार पर कुतूहल उत्पन्न करनेवाले नाना कथाप्रसंगों का वर्णन किया है। अनेक नई कथाओं की भरमार है। पाठकों को प्राचीन साहित्य के एक अद्भुत नवीन ग्रन्थ का आनन्द प्राप्त होगा। आ. का.—

मूल्य ६), डाक-खर्च १।)

स्वामी रामतीर्थ-साहित्य

१. यथार्थ समाजवाद २)
२. गृहस्थ-धर्म २)
३. व्यावहारिक वेदान्त २)
४. विश्व-धर्म २)
५. राष्ट्रीय धर्म २)
६. सफलता-सोपान २)
७. नक़द धर्म २)
८. विज्ञान-रहस्य २)
९. विश्व-बन्धुत्व २)
१०. स्वामी रामतीर्थ के पत्र २)

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २३, श्रीराम रोड, लखनऊ

टेक्निकल-साहित्य (सचित्र)

भारतीय कृषि विज्ञान—चार खण्ड सम्पूर्ण, कृषि-संबंधी यन्त्रों, प्रक्रियाओं एवं तालिकाओं के विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन, अगणित चित्रों से युक्त अपूर्व ग्रन्थ। लेखक—श्री चन्द्रनाथ मिश्र। मूल्य ७।।)

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा—सचित्र, गाय-बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, कुत्ता, हाथी आदि पालतू पशुओं की पालन-विधि, रोगों के निदान और चिकित्सा-सूत्र के साथ आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक एवं एलोपैथिक औषधियों के अनुभूत नुस्खे सरल भाषा में अधिकारी विद्वानों द्वारा, इस नवीन पुस्तक में संग्रह किये गये हैं। मूल्य तीन रुपये मात्र।

हमारा भोजन—उत्तरप्रदेश राज्य द्वारा पुरस्कृत। लेखक—डा० ज्ञानेन्द्रनाथ शुक्ल, मूल्य १।।)

लोहारी-शिक्षक—पचासों चित्रों से युक्त। लेखक—मास्टर बाबूलाल विश्वकर्मा, मूल्य १।)

मिट्टी का शिल्प—कुम्हारी-विद्या पर, बहुसंख्यक चित्रों सहित, नवीन पुस्तक। लेखक—श्री चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु, मूल्य १।।)

बाँस-बेत और पत्तों का काम—श्री राजेश दीक्षित द्वारा कुटीर-उद्योग पर लिखित, यह सचित्र पुस्तक अपूर्व है। मूल्य १।)

कागज के हुनर—(सचित्र) कला-अध्यापक श्री राजकुमार सैगल द्वारा लिखित यह पुस्तक अत्यन्त सरल एवं बेजोड़ है। मूल्य १।।)

सा-रे-ग-म—संगीत-शास्त्र पर अनूठी पुस्तक। मूल्य २।।)

कत्थक-नटवरी-नृत्य—नृत्य एवं भाव-मुद्राओं के विविध चित्रों से युक्त अपूर्व पुस्तक, मूल्य ३।।)

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २२, श्रीराम रोड, लखनऊ

अरब एक संक्षिप्त इतिहास—प्रो० हिट्टी मू० ८)

ईरान का सांस्कृतिक इतिहास—डा० बी० एस० समदी, अध्यक्ष, अरबी विभाग, लखनऊ विश्व-विद्यालय, मूल्य ३)

चीन का सांस्कृतिक इतिहास मू० ३)

मेसोपोटामिया का सांस्कृतिक इतिहास मू० ३)

—: हिन्दी में 'इस्लामी साहित्य' :—

तर्जुमा क़ुरान शरीफ़

विश्व के एक बड़े जन-समुदाय का सर्वमान्य ईश्वरीय धर्मग्रन्थ। आज से १४०० वर्ष पूर्व अरब मरु-स्थल की अपौरुषेय क्रान्ति, तत्कालीन समाज का जीता-जागता चित्र, रूढ़ियों को हटाकर सुधार की ओर प्रगति आदि, सभी मुस्लिमों तथा गैर-मुस्लिमों के पढ़ने-देखने योग्य। मूल्य आठ रुपया मात्र। डाक-व्यय अलग।

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

हजरत अबूबकर ०.३७ न० पै०   हजरत उमर ०.३७ न० पै०

,, उस्मान ०.३७ न० पै०   ,, अली ०.३७ न० पै०

बारह अम्म (अरबी-मूल देवनागरी अक्षरों में) ०.३७ न० पै०

कुरान पर एक दृष्टि ०.३१ न०पै०

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

प्रभाकर जंत्री

ज्योतिषाचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी के संपादकत्व में प्रत्येक वर्ष लखनऊ से प्रकाशित गणित-फलित का सच्चा पथ-प्रदर्शक विशुद्ध पंचांग। मू० ।।।)

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २३, श्रीराम रोड, लखनऊ